AL HASANAT BOOKS PVT. LTD.
इस्लामी फ़िक़्ह
भाग-2 समाजिकता
मौलाना मिन्हाजुद्दीन मीनाई

इस्लामी फ़िक़्ह

2

(समाजिकता)

मौलाना मिनहाजुद्दीन मीनाई

मकतबा अल हसनात

सूची

इस्लाम के मुआशरती अहकाम

निकाह का बयान

सिदाक़ (मह्र) का बयान

तलाक़ का बयान

ख़ुलअ़ का बयान

इद्दत का बयान

किताबुल यमीन

नज़्र के मसाईल

विरासत

तरका बाँटने के मसाईल

ज़विलफ़ुरूज़ के हिस्सों का मुख़्तसर नक़्शा

xxx

इस्लाम के मुआशरती (सामाजिक) अहकाम

क़ौमों और मिल्लतों की संस्कृति और उन की सभ्यता समाज की ज़ेहनी और अमली योग्यताओं का अक्स (परछाई) होती है। किसी मुल्क या गिरोह की संस्कृति व सभ्यता की बुलंदी समाज के सुधार और पवित्र ज़िन्दगी गुज़ारने पर निर्भर है। बिगड़ा हुआ समाज संस्कृति व सभ्यता में ज़वाल (पतन) का सबब होता है और नेक व अच्छा समाज पवित्र सदाचार से रिश्ता जोड़ कर और बुराइयों से दूर रह कर बनता है, और यह नेक और अच्छा समाज ही क़ौम व मिल्लत को ऊपर उठाता है और ऊँची संस्कृति और सभ्यता वाला बनाता है।

इस्लाम के समाजी अहकाम सारे के सारे इसी मक़सद के लिये हैं कि इन्सानों में ख़ुशी (स्नेह) और मुहब्बत पैदा की जाये दुश्मनी और बैर के सोतों को बन्द किया जाये, अम्न व शान्ति और दया व कृपा का माहौल पैदा किया जाये, फ़सादात ज़ुल्म व ज़्यादती को ख़त्म किया जाये, अमीरी व ग़रीबी ऊँच नीच के ख़याल को बिल्कुल मिटा दिया जाये, विनय और शालीनता को अपनाया जाये और तकब्बुर व घमंड को बुरा माना जाये, आपस में एक दूसरे का भला चाहने के जज़्बात को उभारा जाये, क्रोध और ख़ुदग़र्ज़ी पैदा करने वाली चीज़ों को दबाया जाये। इस्लाम ने हर शख़्स पर लाज़िम कर दिया कि जब एक दूसरे से मिलें तो सलाम करने में पहल करें क्योंकि ख़ैरख़्वाही (भला चाहना) का तक़ाज़ा है कि एक इन्सान दूसरे इन्सान के लिये सुरक्षा और नुक़सान से बचे रहने की तमन्ना करें। ख़ैरख़्वाही का यह जज़्बा अपने माँ बाप, परिवार और रिश्तेदारों के साथ और भी ज़्यादा हो, ताकि ऐसा मिसाली ख़ानदान वजूद में

आये जिस की तर्तीब मुहब्बत के मज़बूत बन्धनों से की गई हो। इस्लाम की नज़र में ख़ानदान का निज़ाम और ख़ानदान वालों का आपसी संबंध जितना पवित्र और मज़बूत होगा, उतना ही ज़्यादा पवित्र और बेहतर समाज वुजूद में आयेगा। अच्छे समाज के सिलसिले में इस्लामी शरीअत ने जो हिदायतें दी हैं उन को इबादतों की तरह अज्र व सवाब हासिल करने का ज़रिया बताया है। समाजी अहकाम में इस्लाम एक तरफ़ ख़ानदान से बाहर वतन वालों और दीनी भाइयों से भाईचारगी और ख़ैरख़्वाही के रिश्ते को मज़बूत करने की शिक्षा देता है और दूसरी तरफ़ ख़ानदान के अन्दर संबंधो को क़ायम रखने के लिये क़ानून और हुक़ूक़ का निर्धारण करता है।

सलाम को आम करने का बयान

'सलाम' का अर्थ है अम्न व शान्ति। कोई शख़्स किसी को सलाम करता है तो मानो वह उस को नुक़सान पहुंचाने वाली चीज़ों से सुरक्षित रहने की दुआ देता है। सलाम का तरीक़ा तमाम इन्सानों के बीच अम्न व शान्ति का एलान और एक इस्लामी मुआहिदा है जिस में लोग एक दूसरे से यह वादा करते हैं कि हर एक अपने भाई की जान व माल इज़्ज़त व आबरू को सुरक्षित रखेगा और हमेशा अम्न व शान्ति बनाये रखेगा। दोस्ती व मुहब्बत और एक दूसरे से सहयोग का व्यवहार करेगा। सलाम की इन्हीं अच्छाइयों को सामने रखते हुये रसूलुल्लाहﷺ ने बार-बार इस की तरफ़ उभारा है, एक शख़्स ने आप से पूछा 'अय्युल-इस्लामि ख़ैरून' (कौन सी बात इस्लाम की नज़र में अच्छी है?) तो आप ने फ़रमाया:

"تُطعِمُ الطَّعَامَ وَتَقْرأُ السَّلَامَ عَلٰی مَنْ عَرَفْتَ وَمَنْ لَّمْ تعْرِفْ" (بخاری ومسلم)

'तुतइमुत्तआ म वतक़रउस-सला म अला मन अरफ़्ता व मल लम तअ़रिफ़' (बुख़ारी व मुस्लिम)

अनुवाद–यानी खाना खिलाया करो और सलाम किया करो जिस से तुम वाक़िफ़ हो उस को भी और ना वाक़िफ़ को भी।

एक और हदीस में आप ﷺ ने फ़रमाया है कि:

لَنْ تَدْخُلُوا الْجَنَّةَ حَتّٰى تُؤْمِنُوا، وَلَنْ تُؤْمِنُوا حَتّٰى تَحَابُّوْا، اَلَا اَدُلُّكُمْ عَلٰى شَيْءٍ اِذَا فَعَلْتُمُوْهُ تَحَابَبْتُمْ، اَفْشُوا السَّلَامَ بَيْنَكُمْ.

(مسلم)

'लन तदख़ुलुल-जन्न त हत्ता तूमिनू वलन तूमिनू हत्ता तहाब्बू, अला अदुल्लुकुम अला शैइन इज़ा फ़अलतुमूहु तहाबबतुम, अफ़शुस्सला म बैनकुम'

अनुवाद- हरगिज़ जन्नत में न जाओगे जब तक तुम मोमिन न बन जाओ, और ईमान वाले कभी न बनोगे जब तक आपस में मुहब्बत न करो, क्या मै तुम्हें वह बात न बताऊँ कि अगर उस पर अमल करो तो एक दूसरे से मुहब्बत करने लगोगे, वह बात यह है कि आपस में सलाम करना आम कर दो।

सलाम में पहल करना और सलाम का जवाब देना:- सलाम में पहल करना सुन्नते मुअक्कदा है एक शख़्स के लिये, और अगर जमाअत है तो सुन्नते किफ़ाया है, यानी अगर जमाअत में से एक आदमी ने सलाम कर लिया तो सब की तरफ़ से सलाम की सुन्नत अदा हो गई, लेकिन सुन्नत का सवाब हासिल करने के लिये सब का सलाम करना बेहतर है। इमाम अबू हनीफ़ा (र०) के नज़दीक अगर किसी सवार की मुलाक़ात बयाबान में पैदल चलने वाले से हो तो सवार के लिये ज़रूरी है कि वह सलाम करे ताकि पैदल चलने वाला मुतमइन हो जाये।

पहले सलाम करने वाला दो तरह से सलाम के शब्द अदा कर सकता है *'अस्सलामुअलैकुम'* और *'सलामुनअलैकुम'*। पहला तरीक़ा बेहतर और सुन्नत है चाहे वह एक शख़्स हो या एक से ज़्यादा हों, सलाम की शुरूआत अलैकस्सलाम से करना मकरूह है।

सलाम का जवाब देना फ़र्ज़े ऐन है एक शख़्स के लिये, और जमाअत के लिये फ़र्ज़ किफ़ाया है यानी एक का जवाब सब की तरफ़ से काफ़ी है। सलाम का जवाब तुरन्त देना चाहिये, देर करना गुनाह है। जवाब इस तरह दिया जाये कि सलाम करने वाला सुन ले, अगर नहीं सुना तो फ़र्ज़ अदा नहीं हुआ। और अगर वह बहरा है तो वह इशारे या होटों के हिलने से समझ सकेगा तो इसी तरह जवाब देना चाहिये। सलाम के जवाब में सब से बेहतर यह है कि 'वअलैकुम अस्सलाम' कहा जाय। सुन्नत यह है कि जब किसी से मुलाक़ात हो तो कोई बात करने से पहले सलाम करे और ऊँची आवाज़ से बोले। हमेशा घर में दाख़िल होते वक़्त घर वालों को सलाम करना सुन्नत है, ख़ाली घर में जहाँ कोई इन्सान न हो वहाँ भी 'अस्सलामु अलैना वअला इबादिल्लाहिस-सालिहीन' कहना चाहिये। सुन्नत तरीक़ा यह है कि छोटा बड़े को, सवार पैदल चलने वाले को, खड़ा हुआ बैठे हुए को और छोटी जमाअत बड़ी जमाअत को पहले सलाम करे। जब कोई शख़्स किसी को सलाम कहला भेजे तो उस पर सलाम का जवाब देना फ़र्ज़ हो जाता है। मुस्तहब तरीक़ा यह है कि जो शख़्स सलाम लाये उस से शुरूआत की जाये यानी 'व अलैका व अलैहिस्सलाम' कहना चाहिये। ख़त में सलाम लिखा हो तो उस का जवाब देना वाजिब है।

वह सूरतें जिन में सलाम करना मकरूह है:- मर्द किसी जवान औरत को तनहाई में सलाम करे या वह औरत सलाम करे दोनों सूरतें नाजाइज़ हैं, महरम औरतों के अलावा जिन्हें सलाम करना सुन्नत है। गुस्लख़ाने के अन्दर सलाम करना मकरूह है और इस सलाम करने वाले को अगर जवाब न दिया जाये तो गुनाह नहीं होगा। जो शख़्स ऊँची आवाज़ से कुरआन शरीफ़ पढ़ रहा हो या दीनी मसाइल बयान कर रहा हो, अज़ान या तकबीर कहने में मशगूल हो या जो खुत्बा सुन रहा हो या कोई शख़्स तक़रीर कर रहा हो इन सब सूरतों में सलाम करना मकरूह है और अगर कोई सलाम करे तो जवाब देना

लाज़िम नहीं। अगर कोई शख़्स जमाअत में से किसी ख़ास शख़्स का नाम ले कर सलाम करे तो उस पर जवाब देना फ़र्ज़ हो जाता है, जमाअत में से किसी एक शख़्स के जवाब से फ़र्ज़ साकित नहीं होगा। जो शख़्स दर्स देने या इल्म हासिल करने में मशग़ूल हो उसे भी सलाम करना मकरूह है। यही हुक्म तलबिया पढ़ने वाले और सोते हुये इन्सान के बारे में है। जो शख़्स खुले तौर पर फ़िस्क़ व फ़ुजूर (दुराचार) करने वाला हो या शराब के नशे में हो। उसे सलाम करना हराम है।

बच्चों को सलाम करना मकरूह नहीं है बल्कि बेहतर है कि उन्हें सलाम किया जाये ताकि वे अदब सीखें।

छींकने वाले को दुआ देने का बयान:- तशमीत का अर्थ नेकी और बरकत के लिये दुआ करना है, शरीअत की शब्दावली में यह उस दुआ को कहते हैं जब किसी को छींक आये और वह *'अलहमदुलिल्लाह'* कहे तो सुनने वाला कहे 'यरहमुकल्लाह' यानी अल्लाह तुम पर रहम के। इस हुक्म का मक़सद भी अपने मुसलमान भाई से दोस्ती व मुहब्बत का इज़हार है और यह सदाचार की तलक़ीन है जिस के लिये इस्लाम ने हर छोटे बड़े मुआमले में तर्ग़ीब (प्रेरणा) दी है।

तशमीत भी फ़र्ज़े किफ़ाया है उसी तरह जैसे सलाम का जवाब देना। फ़र्ज़ होने की शर्त यह है कि छींकने वाले ने 'अलहमदुलिल्लाह' या 'अलहमदुलिल्लाहि रब्बिल आलमीन' या 'अलहमदुलिल्लाहि अला कुल्लि हाल' कहा हो और यह शब्द सुने गये हों, अगर नहीं सुने गये तो तशमीत भी वाजिब नहीं। इस दुआ यानी यरहमुकल्लाह के जवाब में छींकने वाले को यह कहना फ़र्ज़ है *'यग़फ़िरूल्लाहु लीवलकुम'* (अल्लाह मेरी और तुम्हारी मग़फ़िरत फ़रमाये) या 'यहदीकुमुल्लाहु व युसलिहु बालकुम' (अल्लाह तुम्हारी हिदायत फ़रमाये और तुम्हारी तबीयत ठीक रहे)। अगर बार बार छींक

आये तो पहली दूसरी और तीसरी बार की छींक में यह दुआएँ करनी चाहिए। इस से ज़्यादा हों तो ये वाजिब नहीं हैं।

औरतों के बारे में मसाइल वही हैं जो सलाम के हैं, महरम औरतों को मर्दों की तरह दुआ दी जा सकती है और औरतों को आपस में इसी तरह तशमीत करना चाहिये।

निकाह का बयान

निकाह का अर्थः निकाह का अर्थ आपस में मिलना है। दरख़्त की शाख़ें जब एक दूसरे से मिल जाएं और आपस में पैवस्त हो जाएं तो कहा जाता है- "तनाकहतिल अशजार" यानी दरख़्तों का हुजूम हो गया, आपस में गडमड हो गए। इस को आमतौर से अक़्दे निकाह (विवाह) के लिये बोला जाता है। अक़्दे निकाह एक मुआमला है जिस के द्वारा एक मर्द और एक औरत के बीच संबंध और हुक़ूक़ का निर्धारण होता है। माँ बाप और रिश्तेदारों के साथ अच्छा व्यवहार, औलाद की तर्बियत और इन सब के आपसी संबंध और उन के हुदूद, रहमत व शफ़क़त, हमदर्दी व बहीख़्वाही और शादीशुदा ज़िन्दगी के हुक़ूक़ की अदायगी की शुरूआत होती है। इन ख़ानदानी संबंधों के क़ायम होने से आदमी बेशर्मी और बेहयाई से बचता और ज़ुल्म ज़्यादती करने से रूका रहता है। इस्लामी शरीअत ने जिस जिस रिश्तेदार के जो हुक़ूक़ मुक़र्रर कर दिये हैं उन्हें अदा कर के अज्र व सवाब का मुसतहिक़ होता है।

निकाह का रिश्ताः शुरू ही से ख़ानदान के वजूद और उस में बढ़ोतरी होने का आधार निकाह के रिश्ते पर है। निकाह के ज़रिये ही रिश्तेदारियाँ बनती हैं और ख़ानदान बनता है। यह निकाह का रिश्ता संबंधों को इतना मज़बूत रखता है कि एक बार क़ायम हो जाने के बाद फिर क़ियामत तक नहीं टूटता। इस्लाम में इस रिश्ते की इतनी अहमियत व फ़ज़ीलत है कि इस को सही तरीक़े पर क़ायम रखने और इस की ज़िम्मेदारियों और हुक़ूक़ के अदा करने के अमल को नफ़्ल इबादतों में मशग़ूल रहने से बेहतर और अच्छा माना गया है।

"اِنَّ الْاِشْتِغَالَ بِهٖ اَفْضَلُ مِنَ التَّخَلِّی لِنَوَافِلِ الْعِبَادَاتِ"

"इन्नल इश्तिग़ाला बिही अफ़ज़लु मिनत्तख़ल्ली लिनवाफ़िलिल इबादाति"
'इस में मशग़ूल होना नफ़्ल इबादतों की मशग़ूलियत से बेहतर है'।

(रद्दुलमुख़तार जिल्द 2)

दुर्रे मुख़तार किताबुन-निकाह में उलमा-ए-इस्लाम में से एक आलिम का क़ौल नक़ल किया गया है कि:

لَیْسَ لَنَا عِبَادَةٌ شُرِعَتْ مِنْ عَهْدِ اٰدَمَ اِلَی الْاٰنَ ثُمَّ تَسْتَمِرُّ فِی الْجَنَّةِ اِلَّا النِّکَاحُ وَالْاِیْمَانُ.

लइसा लना इबादतुन शुरिअत मिन अहदि आदम इलल आन सुम्मा तस्तमिरू फ़िल जन्नति इल्लन्निकाहु वल ईमानु।

'जो इबादतें हमारे लिये ज़रूरी क़रार दी गई हैं उन में निकाह और ईमान के अलावा कोइ इबादत ऐसी नहीं हैं जो हज़रत आदम से शुरू होती हो और जन्नत तक साथ रहती हो।'

इसी तअल्लुक़ की बिना पर एक मर्द किसी का बाप और किसी का बेटा बनता है। किसी का दादा और किसी का पोता होता है, किसी का मामूँ किसी का चचा और किसी का भाई किसी का बहनोई होता है, इसी संबंध के ज़रिये एक औरत किसी की माँ किसी की नानी या दादी, किसी की फूफी या चची होती है और किसी की बेटी और किसी की बहन बनती है। मानो सारे संबंध निकाह के ज़रिये पैदा होते हैं, निकाह के ज़रिये एक अजनबी अपना और एक बेगाना यगाना बन जाता है। इन्हीं संबंधों से आदमी बुजुर्गों का अदब छोटों पर दया व हमदर्दी व ग़मगुसारी, सुशीलता व पवित्रता, शर्म व हया, पास व लिहाज़ और उलफ़त व मुहब्बत करना सीखता है, इन्हीं संबंधों से ख़ानदानी निज़ाम की सूरतगरी होती है। अगर निकाह के रिश्ते की पवित्रता का ख़याल न रखा जाये तो फिर जो समाज बनेगा तो उस में न हमदर्दी व ग़मगुसारी होगी न परहेज़गारी व पाकीज़गी न मुहब्बत व उलफ़त और न अच्छी आदतें और अच्छा चाल चलन

बल्कि इन की जगह ज़ुल्म व ज़्यादती बे तवज्जुही व बेवफ़ाई, बुरी आदतें और बुरा चाल चलन, बेशर्मी व बेहयाई जैसी बुरी आदतें पैदा होंगी और पवित्र व ऊँची ख़ूबियों का समाज वजूद में नहीं आ सकेगा जो इस्लाम चाहता है। कुरआन में इस निकाह के रिश्ते को और रिश्तेदाराना संबंधों को क़ायम रखने की ताकीद की गई है। अल्लाह तआला का फ़रमान है-

يَاأَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِنْ نَفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّخَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيْرًا وَّنِسَاءً ۚ وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِىْ تَسَاءَلُوْنَ بِهٖ وَالْاَرْحَامَ ۭ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا. (سورهٔ نسا: ۱)

'या अ"यहन्नासुत- तक़ू रब्बकुमुल्लज़ी ख़लक़कुम मिन नफ़्सिवं-वाहिदतिवं-वख़लक़ा मिनहा ज़ौजहा व बस्स मिनहुमा रिजालन कसीरवं-वनिसाअ, वत्तकुल्लाहल-लज़ी तसाअलूना बिही वल-अरहाम, इन्नल्लाहा काना अलैकुम रक़ीबा।'

अनुवाद-लोगो! अपने रब से डरो जिस ने तुम को एक ज़ात से पैदा किया और उसी की जिन्स से उसका जोड़ा पैदा किया और उन दोनो से बहुत से मर्दो और औरतो को फैलाया। उस ख़ुदा से डरो जिसका वास्ता देकर तुम एक दूसरे से अपना हक़ माँगते हो और रिश्तों के हुकूक़ का ख़्याल रखो, बेशक अल्लाह तुम्हारा हाल देखता और उस पर नज़र रखता है।

नबी अलैहिस्सलाम इन आयतों को निकाह के ख़ुत्बे के मौके़ पर तिलावत फ़रमाया करते थे ताकि निकाह के रिश्ते की ग़र्ज़ और उस से जो ज़िम्मेदारियाँ लागू होती हैं वे ज़ेहन में ताज़ा हो जायें और रिश्तों को जोड़ने, उन के हुकूक़ अदा करने और रिश्तों को ख़त्म करने से बचने के औसाफ़ (गुण) एक मोमिन के अन्दर पैदा हों।

अल्लाह तआला ने अपनी नेमतें जो इन्सान को दी हैं उन की निशानदेही करते हुये फ़रमाया है-

وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا (سورہ روم: ۲۱)

'व मिन आयातिही अन ख़लक़ा लकुम मिन अनफ़ुसिकुम अज़्वाजा।'

अनुवाद:- यानी अल्लाह की निशानियो में से एक यह है कि उस ने तुम्हारी जिन्स से तुम्हारी बीवियां पैदा कीं।

दूसरी जगह सूरह नहल में फ़रमाया-

وَاللّٰهُ جَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا وَّجَعَلَ لَكُمْ مِّنْ اَزْوَاجِكُمْ بَنِيْنَ وَحَفَدَةً. (سورہ نحل : ۷۲)

'वल्लाहु जअल लकुम मिन अन्फ़ुसिकुम अज़्वाजवं वजअल लकुम मिन अज़्वाजिकुम बनीना व हफ़्दतन।' (सूरह: नहल 72)

अनुवाद:- ख़ुदा ही है जिस ने तुम्हारी जिन्स से तुम्हारे जोड़ पैदा किये और उन से तुम्हारे लड़के और पोते बनाये। एक जिन्स से पैदा कर के उल्फ़त व मुहब्बत दिलो मे डाल दी जो अल्लाह की नेमत है और निकाह की बुनियाद है।

कुछ धर्म रूहानी तरक़्क़ी के लिये अकेले ज़िन्दगी गुज़ारने की शिक्षा देते हैं लेकिन कुरआन ने हमें बताया है कि अख़लाक़ी और रूहानी एतबार से सब से ज़्यादा बुलंद अम्बिया और रसूल हैं मगर ख़ुदा ने उन्हें भी यह संबंध क़ायम रखने का हुक्म दिया-

وَلَقَدْ اَرْسَلْنَا رُسُلًا مِّنْ قَبْلِكَ وَجَعَلْنَا لَهُمْ اَزْوَاجًا وَّذُرِّيَّةً.

'वलक़द अरसलना रुसुलम-मिन क़ब्लिका व जअलना लहुम अज़्वाजवं वज़ुर्रियतन।'

अनुवाद:-तुम से पहले हम ने बहुत से रसूल भेजे जिन की बीवियाँ भी थीं और बच्चे भी।

फिर मुसलमानों को यह दुआ सिखाई गई-

رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ. (سورة الفرقان:۷۴)

'रब्बना हब-लना मिन अज़्वाजिना व ज़ुर्रिय्यातिना कुर्रत अअयुनिन।' (सूर:अलफुर्कान-74)

अनुवाद:- ऐ अल्लाह हमे ऐसी बीवियाँ और ऐसी औलाद अता फ़रमा जो आँखों की ठंडक हों।

निकाह आदमी को सुधार, परहेज़गारी, इज़्ज़त और इन्सानों के साथ हमदर्दी और ख़ैरख़्वाही की तरफ़ ले जाता है। फ़िक़ह के आलिमों ने लिखा है-

لِمَافِيْهِ تَهْذِيْبُ الْاَخْلَاقِ وَتَوسِعَةِ الْبَاطِنِ بِالتَّحَمُّلِ فِيْ مُعَاشَرَةِ اَبْنَاءِ النَّوْءِ وَتَرْبِيَةِالْوَلَدِ وَالنَّفْقَةِ عَلَى الْاَقَارِبِ وَالْمُسْتَضعِفِيْنَ وَاِعْفَافِ الْحَرَمِ وَنَفْسِهِ وَدَفْعِ الْفِتْنَةِ عَنْهُ وَعَنْهُنَّ.

लिमा फ़ीहि तहज़ीबुल अख़्लाक़ि व तौसिआतल बातिनि बित्तहम्मुलि फ़ी मुआशरति अबनाइन्नौइ व तरबियतिल वलदि बन्नफ़क़ति अलल अक़ारिबि वल मुसतज़इफ़ीना वइफ़ाफ़ल हरमि वनफ़सिही व दफ़इल फ़ितनति अन्हु व अन्हुन्ना।

'निकाह के रिश्ते से अख़्लाक़ में सुधार और निखार पैदा होता है और अपने परिवार का बोझ बर्दाश्त कर के औलाद की तर्बियत कर के अपने रिश्तेदारों और कमज़ोरों पर माल ख़र्च कर के अपनी बीवी और अपने आप को पवित्रता और इज़्ज़त के साथ हर क़िस्म के फ़ित्ने फ़साद से सुरक्षित रख के उस के अन्दर फैलाव और विकास पैदा होता है।'

राहिबाना (सन्यासी) ज़िन्दगी इस्लाम में पसंदीदा नहीं, आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने एलान फ़रमा दिया *'अन्निकाहु मिन*

सुन्नती फ़मन रग़िब अन सुन्नती फ़लैसा मिन्नी' 'निकाह मेरी सुन्नत है जो शख़्स इस से मुँह मोड़ता और मेरे तरीक़े से हटता है उस से मेरा कोई संबंध नहीं'। मियाँ बीवी का संबंध जितना पाकीज़ा और मज़बूत होगा उतना ही पवित्र ख़ानदान वजूद में आयेगा और वैसा ही पवित्र समाज बनेगा जो एक ऊँचे तमद्दुन (सभ्यता) की बुनियाद है।

इस्लाम ने अख़्लाक़ी हिदायतों और क़ानूनी बंदिशों से इन रिश्तों को खुशगवार और मज़बूत बनाने पर ज़ोर दिया है, हदीस में है 'तुम में वह शख़्स बेहतर है जो अपने घर वालों के लिये बेहतर हो।'

निकाह की फ़िक़ही परिभाषा:- हनफ़ी फ़ुक़हा ने निकाह को ऐसा मुआमला व मुआहिदा कहा है जो इस इरादे से किया जाये कि एक मर्द एक औरत की मिल्के मुतआ का मालिक हो जाये। मिल्के मुतआ का अर्थ एक ख़ास शख़्स का किसी दूसरे के शरीक हुये बग़ैर एक औरत के जिस्म से फ़ायदा उठाने का मालिक होना, इस से यह मुराद नहीं कि क़ुदरती तौर पर वह उस का मालिक हो जाये क्योंकि आज़ाद औरत का कोई मालिक नहीं हो सकता बल्कि उस से मुराद यह है कि सिर्फ़ वही शख़्स उस से फ़ायदा उठाने का हक़ रखता है। फ़ायदा उठाने का हक़ ख़रीदने और बेचने जैसा हक़ नहीं है, फिर यह मुआहिदा गवाहों की मौजूदगी में किया जाता है और जिस चीज़ पर मुआहिदा होता है वह हक़्क़े इस्तिमता है (यानी खुद फ़ायदा उठाना, नफ़ा कमाना नहीं)। अगर पढ़ी लिखी बीवी किसी तालीमी इदारे (शिक्षा संस्थान) में काम कर के या वज़ारत के उहदे (पद) पर बैठ कर उस का मुआवज़ा (बदला) कमाती है तो वह पूरा का पूरा उस का अपना माल है, उस के शौहर का उस में कोई हिस्सा नहीं, न निकाह से उस का कोई संबंध है। निकाह का मक़सद मर्द और औरत दोनों को पवित्र ज़िन्दगी गुज़ारना और इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त करना है, निकाह के ज़रिए इसी सुरक्षा की ज़मानत ली जाती है, चुनाचे क़ुरआन करीम ने बार बार इस की ताकीद की है

'मुह सिनीना ग़ैरा मुसाफ़िहीना' और 'मुहसना तिन ग़ैरा मुसाफ़िहातिन' हिस्न क़िले को कहते हैं यानी हिफ़ाज़त की जगह और सफ़ह का अर्थ बहाने यानी खो देने के हैं मुहसिनीन और मुहसिनात इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त करने वाले या हिफ़ाज़त करने वालियाँ हैं और मुसाफ़िहीन और मुसाफ़िहात इज़्ज़त व आबरू को खोने वाले और खोने वालियाँ हैं। इस्लामी शरीअत मर्द को सिर्फ़ उसी औरत से फ़ायदा उठाने की इजाज़त देती है जो उस के लिये हलाल बना दी गई हो। इसी तरह औरत को भी सिर्फ़ उसी मर्द से फ़ायदा उठाने का हुक्म है जिस ने उस को अपने लिये हलाल बना लिया हो' मर्द को यह ताकीद है कि बीवी को पाकबाज़ (सचरित्र) रखने की और उस की जाइज़ ज़रूरियात को पूरा करने की कोशिश करे और औरत को ताकीद है कि मर्द की ख़्वाहिश पूरी करने के लिये उस के जाइज़ आज्ञा का पालन करे।

अक़्दे निकाह में शरई तौर पर ईजाब व क़ुबूल ज़रूरी है और यह कि निकाह गवाहों की मौजूदगी में हो। अक़्दे मदनिया (सिविल मैरिज) या मुक़र्ररह अरसे के लिये इजारह के तौर पर या इसी तरह का ख़िलाफ़े शरअ निकाह करना सब ज़िना है 'और यह जुर्म सज़ा के क़ाबिल है।'

निकाह की शरई हैसियतः- इस्लाम धर्म के फ़ुक़हा ने निकाह पर पाँचों क़िस्म के शरई अहकाम लागू होने को बताया है यानी (1) वाजिब (2) सुन्नत (3) मुस्तहब या मुबाह (4) मकरूह और (5) हराम। इस बात में सब फ़ुक़हा एक राय रखते हैं कि वह शख़्स जो निकाह करना चाहता हो और उसे यह डर हो कि शादी न की तो गुनाह कर बैठेगा उस के लिये निकाह कर लेना वाजिब है जबकि उसे महर की अदायगी और हलाल रोज़ी हासिल करने की क़ुदरत हो, लेकिन अगर न कर सकता हो और ख़ुद को गुनाह से दूर रखने के लिये दूसरे गुनाह यानी हराम की कमाई की तरफ़ जाना पड़ता हो

तो शादी करना वाजिब नहीं। इस का मतलब यह नहीं है कि अगर एक शख़्स हलाल रोज़ी न कमा सकता हो तो शादी न करे और उस के लिये जाइज़ है कि गुनाह कर ले, हरगिज़ नहीं। बल्कि इस का मतलब यह है कि ऐसी हालत में अपने नफ़्स और ख़्वाहिशे नफ़्सानी (काम वासना) से जंग करे और अल्लाह तआला के इस फ़रमान पर अमल करते हुये अपने नफ़्स को दबाए और ऐसी शादी से बचे जिस की वजह से दूसरों का शोषण और उन पर ज़ुल्म करना पड़े:-

وَلْيَسْتَعْفِفِ الَّذِينَ لَايَجِدُونَ نِكَاحًا حَتّٰى يُغْنِيَهُمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ. (نور : ٣٣)

'वल यसतअफ़िफ़िल्लज़ीना ला यजिदूना निकाहन हत्ता यूग़नियहुमुल्लाहु मिन फ़ज़्लिही।' *(नूर:33)*

अनुवाद:- जो लोग निकाह न कर सकें उन्हें चाहिये कि खुद को गुनाहों से बचाये रखें यहाँ तक कि अल्लाह अपने फ़ज़्ल से उन्हें मालदार कर दे।

हाँ अगर किसी के लिये यह मुम्किन हो कि महर अदा करने और हलाल रोज़ी कमाने के लिये क़र्ज़ ले सकता हो और उसे डर हो कि बग़ैर निकाह के गुनाह कर डालेगा तो उस पर निकाह वाजिब हो जाता है।

निकाह उस सूरत में सुन्नते मुवक्कदा हो जाता है जब कोई शख़्स निकाह की ख़्वाहिश रखता हो लेकिन यह ख़्वाहिश हल्की हो इतनी ज़्यादा न हो कि गुनाह में पड़ने का डर हो, ऐसी हालत में अगर शादी न की जाये तो गुनाह होगा लेकिन वाजिब के छोड़ने से कम, फिर भी यह शर्त तो ज़रूरी है कि हलाल माल से घर चलाये, महर अदा करने और शादी के बाद जो हुक़ूक़ होते हैं उन को पूरा करने की ताक़त रखता हो, अगर उन में से कोई शर्त पूरी न कर सकता हो तो निकाह करना न वाजिब होगा न सुन्नत।

अगर निकाह इस नियत से किया जाये कि अपने और अपनी बीवी के नफ़्स को गुनाह से बचाये तो यह सवाब का काम होगा, सवाब का दारोमदार नियत पर है। जो निकाह करने की ताक़त रखता हो उस के लिये निकाह करना नफ़्ली नमाज़ों से बेहतर है क्योंकि यह अपने नफ़्स और अपनी बीवी के नफ़्स को क़ाबू में रखता है और औलाद हासिल करने का ज़रिया है जिस से उम्मते मुहम्मदी की तादाद में बढ़ोतरी होती है और समाज को बनाने का एक हिस्सा है।

निकाह उस शख़्स के लिये मुबाह है जिसे निकाह की ख़्वाहिश न हो जैसे ज़्यादा उम्र वाला शख़्स और उस के लिये जिस के पास मर्दानगी की कुव्वत न हो जबकि यह निकाह बीवी के अख़लाक़ पर बुरा असर डालने वाला न हो बल्कि उस की इज़्ज़त व आबरू को महफ़ूज़ रखने के लिये हो। लेकिन अगर निकाह फ़ितने का सबब बन सकता हो तो ऐसे लोगों के लिये शादी करना हराम है, औरत के लिये ऐसे मर्द से निकाह हराम है जिस की कमाई हराम की हो।

अगर एक औरत किसी बदकार शख़्स से अपनी इज़्ज़त के बारे में डरती हो कि बग़ैर शादी के वह उस को शरारत से नहीं रोक सकती तो उस पर वाजिब होगा कि वह किसी से निकाह कर ले।

ऐसे शख़्स के लिये शादी करना मकरूह है जो निकाह का ख़्वाहिशमंद न हो और उसे डर हो कि वह शादी के कुछ मुतालबात मांगे पूरा न कर सकेगा और शादी उसे सवाब का काम करने में बाधा डालेगी। इस में चाहे मर्द हो या औरत और औलाद की ख़्वाहिश हो या न हो शादी मकरूह है।

निकाह की बुनियाद तक़वा और परहेज़गारी है, निकाह के रिश्ते में बंधने का मक़सद उन हुदूद के अन्दर पाबन्द रहना है जिन से आगे बढ़ना या कमी करना दोनों इस रिश्ते की पवित्रता को ख़त्म कर देते हैं। अगर इस मक़सद की पूर्ति न हो रही हो तो फिर इस रिश्ते को काट देना ही बेहतर है।

1. इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त :- निकाह का पहला मक़सद उस इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त करना है जो हर मर्द और औरत की फ़ितरत में है, इसी की हिफ़ाज़त के लिये इस्लाम ने ज़िना और ज़िना पर उभारने वाली चीज़ों जैसे बेपर्दगी, बदनिगाही, बेपर्दगी वाली हंसी दिललगी और बेशर्मी की बात-चीत और अजनबी औरतों मर्दों के मेल मिलाप को हराम क़रार दिया है। मर्द व औरत दोनों को पाबन्द किया है कि एक ऐसे क़ानून व ज़ाबते के ज़रिये अपने फ़ितरी संबंध को क़ायम करें कि उन की इज़्ज़त व आबरू को नुक़सान पहुंचने के बजाये वे महफ़ूज़ और सुरक्षित हो जायें। सूरह निसा की इन आयतों में यही हुक्म है:

أُحِلَّ لَكُمْ مَا وَرَاءَ ذَالِكُمْ اَنْ تَبْتَغُوْا بِاَمْوَالِكُمْ مُحْصِنِيْنَ غَيْرَ مُسَافِحِيْنَ ط (نساء: ۲۴)

فَانْكِحُوْهُنَّ بِاِذْنِ اَهْلِهِنَّ وَاٰتُوْهُنَّ اُجُوْرَهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ مُحْصَنٰتٍ غَيْرَ مُسٰفِحٰتٍ وَّلَامُتَّخِذَاتِ اَخْدَانٍ ج (نساء:۲۵)

उहिल्ल लकुम मा वराअ ज़ालिकुम अन तबतग़ू बिअमवालिकुम मुहसिनीना ग़ैरा मुसाफ़िहीना। (निसा: 24)

फ़नकिहू-हुन्ना बिइज़्नि अहलिहिन्ना व आतूहुन्ना उजूरहुन्ना बिलमारूफ़ि मुहसनातिन ग़ैरा मुसाफ़िहातिन वला मुत्तख़िज़ाति अख़दानि। (निसा 25)

अनुवाद:-उन औरतों के अलावा (जिन से निकाह हराम है) तमाम औरतें तुम्हारे लिये हलाल हैं इस शर्त पर कि तुम मह्र दे कर उन्हें निकाह की क़ैद में लाओ, आबरू खोने वाले न हो।

तुम उन के ज़िम्मेदारों की इजाज़त से उन से निकाह करो और उनके मह्र दस्तूर के मुताबिक़ अदा करो ताकि वे निकाह की क़ैद में रहें और न इज़्ज़त लुटायें और न चोरी छुपे किसी से नाजाइज़ संबंध जोड़ें।

नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने नवजवानों (युवाओं) को संबोधित करते हुये फ़रमाया:-

يَامَعْشَرَ الشَّبَابِ مَنِ اسْتَطَاعَ مِنْكُمُ الْبَاءَةَ فَلْيَتَزَوَّجْ فَإِنَّهُ أَغَضُّ لِلْبَصَرِ وَأَحْصَنُ لِلْفَرْجِ وَمَنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ فَعَلَيْهِ بِالصَّوْمِ فَإِنَّهُ لَهُ وِجَاءٌ. (ابن ماجه)

या माशरश्शबाबि मनिस्तताआ मिनकुमुल-बाअता फ़लयतज़व्वज फ़इन्नहू अग़ज़्ज़ु लिलबसरि व अहसनु लिलफ़र्जि व मल्लम यस्ततेअ फ़अलैहि बिस्सौमि फ़इन्नहू लहू विजाउन। (इब्ने माजा)

अनुवाद:- ऐ नवजवानों तुम में से जो निकाह करने की ताक़त रखता है वह निकाह करे इस लिये कि इस से निगाहें नीची और शर्मगाहें महफ़ूज़ रहेंगी और जिन्हें इतनी ताक़त न हो वे रोज़ा रखा करें कि इस से ख़्वाहिशे नफ़सानी दबी रहती है।

इन बातों से ज़ाहिर है कि निकाह का मक़सद इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त, बदनिगाही और बदकारी से बचना है और निकाह की ज़रूरत इसी लिये है कि तक़वा और परहेज़गारी पैदा हो।

2. उलफ़त व मुहब्बत: निकाह की दूसरी ग़र्ज़ ख़्वाहिशे नफ़सानी से हट कर मुहब्बत व लगाव, हमदर्दी व ग़मगुसारी के जज़्बात पैदा करना है ताकि दोनों को सुकून व राहत मिले। क्योंकि निकाह का तअल्लुक़ मुहब्बत का रिश्ता है जिस से दोनों को इत्मीनान व सुकून नसीब होता है और दोनों इस मुहब्बत का हक़ अदा करने के लिये तैयार होते हैं। अल्लाह तआला ने इस मुहब्बत को अपनी निशानी बताया है:

وَمِنْ اٰيٰتِهٖٓ اَنْ خَلَقَ لَكُمْ مِّنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا لِّتَسْكُنُوْٓا اِلَيْهَا وَجَعَلَ بَيْنَكُمْ مَّوَدَّةً وَّرَحْمَةً ط (سوره روم:۲۱)

'वमिन आयातिही अन ख़लक़ा लकुम मिन अनफ़ुसिकुम अज़्वाजल लितसकुनू इलैहा वजअला बैनकुम मवद्दतवं वरहमतन।'

अनुवाद:-उस की निशानियों में से एक यह है कि उस ने तुम्हारी ही जिन्स से तुम्हारे जोड़े पैदा किये ताकि तुम उन के पास सुकून हासिल करो और उसने तुम्हारे बीच उल्फ़त व मुहब्बत पैदा कर दी है।

هُوَالَّذِیْ خَلَقَکُمْ مِنْ نَفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّجَعَلَ مِنْهَا زَوْجَهَا لِیَسْکُنَ اِلَیْهَا. (اعراف:۱۸۹)

'हुवल्लज़ी ख़लक़कुम मिन नफ़सिवं वाहिदतिवं वजअला मिनहा ज़ौजहा लियसकुना इलैहा।'

अनुवाद:- वही ज़ात है जिस ने एक जान से तुमको पैदा किया और उसी की जिन्स से उस का जोड़ा बनाया ताकि वह उस के पास सुकून हासिल कर सके।

मुवद्दत का शब्द हर तरह की मुहब्बत व प्रेम के लिये और रहमत हर तरह की हमदर्दी महरबानी और ग़मगुसारी के लिये बोला जाता है और सुकून का शब्द हर तरह के सुकून के लिये चाहे वह जिन्सी हो या ज़ेहनी व दिली, इस्तेमाल होता है। अब देखिये कि निकाह का हक़ीक़ी तसव्वुर क़ुरआन ने इन तीन शब्दों में पेश किया है, दूसरी जगह इसी संबंध को लिबास के शब्द से परिभाषित किया है-

هُنَّ لِبَاسٌ لَّکُمْ وَاَنْتُمْ لِبَاسٌ لَّهُنَّ. (سوره بقره:۱۸۷)

हुन्ना लिबासुल्लकुम व अन्तुम लिबासुल्लहुन्ना।

(सूरह: बक़रह 187)

अनुवाद:- वे (तुम्हारी बीवियाँ) तुम्हारे लिये लिबास हैं और तुम उन के लिये लिबास हो।

लिबास के मफ़हूम (भावार्थ) पर ग़ौर कीजिये। लिबास जिस्म को छुपाता है, उस को ख़ूबसूरती देता है उस की इ़ज़्ज़त व ख़ूबसूरती में बढ़ोतरी करता है, जिस्म को हर नुक़सान पहुंचाने वाले असरात से सुरक्षित रखता है। जब मियाँ और बीवी का संबंध लिबास व जिस्म की तरह का है तो ज़रूरी है कि दोनों को एक दूसरे का पर्दापोश होना चाहिये, एक दूसरे की ज़ीनत व आराइश (शोभा व सज्जा) होना चाहिये, उन में ऐसा ही मिलाप होना चाहिये जो लिबास और जिस्म के बीच होता है, हर एक को दूसरे की तकलीफ़ दुख का एहसास और आराम व सुकून पहुंचाने का ख़याल होना चाहिये।

3. हुदूदुल्लाह का क़याम:- निकाह की तीसरी ग़र्ज़ यह है कि यह रिश्ता खुदा की मुक़र्रर की हुई हुदूद को क़ायम करने का सबब हो न कि उन को तोड़ने का। चुनाचे जहाँ निकाह का हुक्म दिया गया है वहाँ यह ताकीद भी की गई है:

اَنْ يُّقِيْمَا حُدُوْدَاللّٰهِ ط (بقره: ۲۳۰)

अन्युक़ीमा हुदूदल्लाहि (बक़रह 230)

अनुवाद:-कि दोनों अल्लाह की बांधी हुइ हदों को क़ायम रखें।

निकाह व तलाक़ के अहकाम बयान करने के बाद कहा गया है:

وَمَنْ يَّتَعَدَّ حُدُوْدَ اللّٰهِ فَاُوْلٰئِكَ هُمُ الظّٰلِمُوْنَ. (بقره: ۲۲۹)

वमंय्यतअद्दा हुदूदल्लाहि फ़उलाइका हुमुज़्ज़ालिमून (सूरह बक़रह 229)

अनुवाद:-जो लोग अल्लाह की क़ायम की गई हदों से आगे जायेंगे वे ज़ालिम हैं।

इसी लिये मुसलमानों को काफ़िरों से शादी करना हराम किया गया है क्योंकि काफ़िरों से खुदा की हुदूद क़ायम करने की उम्मीद नहीं की जा सकती, अतः मुश्रिक और मुश्रिका से निकाह को हराम ठहराते हुये कहा गया है कि वे तुम को अच्छे लगें तब भी तुम उन से निकाह न करो क्योंकि-

أُولٰئِكَ يَدْعُونَ اِلَى النَّارِ وَاللّٰهُ يَدْعُوا اِلَى الْجَنَّةِ وَالْمَغْفِرَةِ بِاِذْنِهٖ (سورہ بقرہ:۲۲۱)

उलाइका यदऊना इलन्नारि वल्लाहु यदऊ इलल जन्नति वल मग़्फ़िरति बिइज़्निही। (सूरहः बक़रह 221)

अनुवादः- वे लोग दोज़ख़ की तरफ़ बुलाते हैं और अल्लाह तआला अपने हुक्म के ज़रिए जन्नत और मग़्फ़िरत की दावत देता है।

ग़र्ज़ यह कि इस्लामी निकाह का क़ानून लोगों में इज़्ज़त व पाकबाज़ी, उल्फ़त व मुहब्बत, हमदर्दी व ग़मगुसारी ख़ुदा की लागू की गई हुदूद (सीमाओं) की पाबन्दी और बन्दों के हुकूक़ का ख़याल जैसी सिफ़ात (गुण) पैदा करना चाहता है, ताकि एक अच्छा समाज वजूद में आ सके।

निकाह के अरकानः- निकाह के दो रूक्न हैं जिन के बग़ैर निकाह की तकमील नहीं हो सकती। एक ईजाब, दूसरा कुबूल, यानी किसी बालिग़ औरत या उस के वली (संरक्षक) ने बालिग़ मर्द से या किसी बालिग़ मर्द ने बालिग़ औरत या उस के वली से दो गवाहों की मौजूदगी में बराहेरास्त (प्रत्यक्ष रूप से) या वकील के ज़रिये कहा कि मैं तुम से निकाह करता हूँ और दूसरे ने उसे मंज़ूर कर लिया तो दोनों में निकाह का रिश्ता क़ायम हो गया। अक़्दे निकाह से मुराद ईजाब व कुबूल यानी स्वीकार करना है फिर इस ईजाब व कुबूल का एक दूसरे से जुड़ जाना एक दूसरा मुआमला है जो ज़रूरी है। गोया अक़्दे शरई तीन चीज़ों पर आधारित है जिन में से दो हिस्सी (महसूस की जाने वाली) हैं यानी ईजाब व कुबूल और तीसरी माअनवी है यानी ईजाब का संबंध कुबूल के साथ, इन के अलावा दूसरे मुआमलात जिन पर शरअन निकाह के सही होने का आधार है वे मुआमलात अक़्द की कैफ़ियत से बाहर हैं और निकाह की शर्तें हैं, उस के अरकान (यानी लाज़िमी भाग) नहीं हैं।

निकाह की शर्तों का बयान:- निकाह की शर्तों में से कुछ का संबंध सीग़ा (ईजाब व क़ुबूल के शब्द) से है कुछ का संबंध आक़िदैन (दोनों निकाह करने वाले) और कुछ का संबंध गवाही से है।

सीग़ा (यानी ईजाब व क़ुबूल):- वे शब्द जिन से अक़्दे निकाह होता है दो क़िस्म के हो सकते हैं।

(1)सरीह (स्पष्टत:) जैसे ज़व्वजतु या *तज़व्वजतु* (ज़ौजियत यानी निकाह में दिया या लिया) या निकाह करने वाले मर्द ने औरत से कहा 'ज़व्विजीनी नफ़्सकि' (तुम अपने आप को मेरी ज़ौजियत में दे दो) और जवाब में *ज़व्वजतु* या *क़बिल्तु* या *समअनव ताअतन* (मैं ने ज़ौजियत में दिया, या क़ुबूल कर लिया, या सुना और तस्लीम कर लिया) कहा जाये।

(2) किनाया (संकेत) के शब्द जिन से निकाह का इरादा ज़ाहिर हो और गवाह भी यह मक़सद समझते हों। जैसे औरत कहे कि मैं अपने आप को तुम्हें हिबा करती हूँ, मुराद उस की ज़ौजियत में देना हो और मर्द कहे कि मैं ने क़ुबूल किया या यूँ कहे कि मैं ने अपना नफ़्स का मालिक तुम्हें बना दिया, या लड़की के बाप ने कहा कि मैं ने अपनी बेटी एक हज़ार रूपये (यानी महर) में तुम्हें दी और मर्द ने जवाब में कहा कि मैं ने क़ुबूल किया तो इन सब सूरतों में निकाह हो जायेगा। निकाह के शब्द सीग़ा माज़ी (भूतकाल) में कहे जाना चाहियें, अक़्दे निकाह सीग़ा मुज़ारेअ (वर्तमानकाल) के इस्तेमाल से भी हो जाता है बशर्ते कि उस से निकाह करना मुराद हो न कि निकाह का वादा लेना, जैसे किसी ने कहा आप अपनी बेटी को मेरी ज़ौजियत में दे दें तो उसने जवाब में कहा कि मैं ने ज़ौजियत में दे दिया तो निकाह हो गया लेकिन अगर मक़सद वादा लेना था तो निकाह सही न होगा, अगर किसी शख़्स ने सीग़ा मज़ारेअ (वर्तमानकाल) के साथ कहा कि मैं तुम से शादी करता हूँ

और उस ने जवाब में कहा तुम ने कर ली तो यह सही है सीग़ा इस्तिक़बाल (भविष्यकाल के शब्द) में निकाह सही न होगा।

इमाम शाफ़ई (र०) और इमाम हंबल (र०) का मसलक यह है कि जब तक वह शब्द इस्तेमाल न हों जो मसदर इनकाह या तजवीज़ से बने हैं निकाह सही नहीं लेकिन इमाम मालिक के नज़दीक हिबा के शब्द से निकाह हो जाता है बशर्ते कि इस के साथ मह्र का ज़िक्र कर दिया जाये। जैसे लड़की का वली कहे कि मैं अपनी बेटी को इतने मह्र के बदले में तुम्हें हिबा करता हूँ या कोई शख़्स कहे कि आप अपनी बेटी इतने मह्र के बदले में मुझे हिबा कर दीजिये, इमाम अबू हनीफ़ा (र०) का मसलक ऊपर बयान किया जा चुका है।

ईजाब व कुबूल के लिये दूसरी शर्त यह है कि एक ही नशिस्त (बैठक) में हो वर्ना निकाह सही नहीं होगा। ईजाब व कुबूल एक ही बैठक में लाज़िम होने से यह निकलता है कि अगर मर्द व औरत जानवर पर सवार हों और जानवर चल रहा है और सवार होने की हालत में निकाह करें तो यह निकाह सही नहीं होगा। हवाई जहाज़ और मोटर भी इसी हुक्म में आते हैं क्योंकि हर घड़ी जगह बदल जाती है, इस को एक बैठक नहीं माना जा सकता। हाँ अगर किसी शख़्स ने एक औरत के पास जो दूसरे शहर में है लिखित रूप में भेजा जिस में उस से अक़्द (निकाह) की अपील थी, अब अगर औरत ने उस तहरीर (लिखित दरख़्वास्त) को गवाहों की मौजूदगी में पढ़ा और कहा कि मैं ने अपने नफ़्स को उस की ज़ौजियत में दे दिया तो निकाह हो जायगा क्योंकि इस सूरत में ईजाब व कुबूल एक ही बैठक में हुआ यानी वह तहरीर ईजाब के तौर पर है और उसे पढ़ कर कुबूलियत के शब्द कहे गये हैं, हाँ अगर यह तो कहा कि मैं फ़लाँ शख़्स की ज़ौजियत कुबूल करती हूँ लेकिन तहरीर गवाहों के सामने नहीं पढ़ी तो निकाह नहीं होगा क्योंकि निकाह सही होने

के लिये गवाहों का उस तहरीर को सुनना शर्त है, तहरीर भेजने वाला अगर मौजूद है और निकाह की बैठक में आना मुम्किन है तो तहरीर के ज़रिये निकाह सही नहीं होगी।

तीसरी शर्त ईजाब व कुबूल के लिये यह है कि दोनों बातें अलग अलग न हों, अतः अगर एक शख़्स ने किसी से कहा कि मैं अपनी बेटी का अक़्द तुम्हारे साथ एक हज़ार रूपये महर पर करता हूँ जवाब में उस ने कहा कि निकाह मुझे कुबूल है लेकिन मह्र (इतना) मुझे कुबूल नहीं है तो यह निकाह नहीं होगा हाँ अगर निकाह कुबूल कर लिया और मह्र का ज़िक्र नहीं किया तो निकाह हो जायेगा क्योंकि अब इख़्तिलाफ़ (मतभेद)बाक़ी नहीं रहा।

चौथी शर्त ईजाब व कुबूल के लिये यह है कि दोनों निकाह करने वाले निकाह की मजलिस (सभा) में उन्हें सुन सकें। यह सुनना या तो हक़ीक़ी म़ाअनों में हो या हुक्मी तौर पर, जैसे ग़ैर मौजूद शख़्स की तहरीर जिस को पढ़ कर सुना जा सकता है।

पाँचवीं शर्त यह है कि ईजाब व कुबूल के शब्द में वक़्त मुतअय्यन (नियुक्त) न किया गया हो अगर ऐसा किया गया तो निकाह सही नहीं होगा इस तरह के निकाह को वक़्ती निकाह कहते हैं।

निकाह करने वाले फ़रीक़ैन (पक्ष):- बीवी और शौहर के लिये एक शर्त अक़्ल वाला होना है। अगर कोई मजनून शख़्स या बच्चा जिस में अक़्ल न हो अगर निकाह करे तो नहीं होगा।

एक शर्त बालिग़ और आज़ाद होना है अगर कोई समझदार लड़का या किसी का ग़ुलाम निकाह करे तो हो जायेगा लेकिन लड़के के वली या ग़ुलाम के आक़ा की इजाज़त के बग़ैर लागू नहीं किया जा सकता।

एक शर्त यह है कि निकाह करने वाले पक्ष जिन के आपस में निकाह हो सकें जैसे मुख़न्नस जिसकी जिन्स का पता न हो सके या

वह औरत जो अभी इद्दत में हो या किसी के निकाह में हो ऐसों से निकाह नहीं हो सकता।

एक शर्त यह है कि निकाह करने वाले पक्ष जाने पहचाने लोग हों। अतः अगर किसी ने कहा कि मैं अपनी बेटी का निकाह फ़लाँ के साथ करता हूँ और उस की दो बेटियाँ हैं तो यह निकाह सही न होगा जब तक बेटी का नाम न लिया जाये अगर किसी की बेटी का नाम बचपन में कुछ रहा हो और बड़ी होने के बाद नाम कुछ और हो गया हो तो निकाह के वक़्त उस के मशहूर नाम का ज़िक्र किया जाये बल्कि ज़्यादा सही यह है कि दोनों नाम बताये जायें ताकि कोई शक बाक़ी न रहे।

चूँकि निकाह में मह्र लाज़िमी शर्त है इस लिये ईजाब व क़ुबूल में मह्र का ज़िक्र होना चाहिये। शर्त नम्बर तीन के मुताबिक़ अगर ईजाब व क़ुबूल में मतभेद होगा तो निकाह सही न होगा।

शहादत यानी गवाहों की मौजूदगी:- सब से पहली बात यह है कि गवाही, निकाह के सही होने की एक शर्त है। गवाहों की संख्या कम से कम दो हो, दोनों का मर्द होना ज़रूरी है। एक शख़्स की गवाही से निकाह सही नहीं होगा, दो औरतों की गवाही से भी निकाह सही न होगा, दो औरतों के साथ एक मर्द की गवाही ज़रूरी है। गवाहों के लिये यह पाबन्दी नहीं है कि वे हालते एहराम में न हों बल्कि इस हालत में भी गवाही सही है।

गवाहों के लिये पाँच शर्तें हैं (1) आक़िल होना (2) बालिग़ होना (3) आज़ाद होना (4) मुसलमान होना (5) मियाँ बीवी की बात को सुन सकने के क़ाबिल होना।

गवाहों का ज़ाहिरी तौर पर एतबार के लायक़ होना काफ़ी है। अगर मियाँ बीवी के नज़दीक दोनों गवाह ज़ाहिरी तौर पर विश्वास में मशहूर हैं तो निकाह के वक़्त उनका गवाह बनना सही है।

वकालत के ज़रिये निकाहः- जिस तरह बालिग़ मर्द और बालिग़ औरत खुद दो गवाहों के सामने ईजाब व कुबूल कर सकते हैं उसी तरह किसी वकील यानी नुमाइंदे (प्रतिनिधि) के ज़रिए भी निकाह हो सकता है जबकि बालिग़ मर्द या औरत ने खुद अपनी जुबान से इजाज़त दी हो या नाबालिग़ लड़के या लड़की का वली दो गवाहों के सामने वकील को साफ़ तौर से यह इजाज़त दे कि मेरी लड़की या बहन का निकाह फ़लाँ से कर दो।

वली अगर कुंवारी लड़की से निकाह की इजाज़त ले और वह चुप रहे या रोने लगे तो उस को इजाज़त समझ लिया जायेगा लेकिन वकील को साफ़ तौर से इजाज़त लेना होगी।

बेवा (विधवा) या मुतल्लक़ा (तलाक़शुदा) औरत की इजाज़त निकाह के बारे में साफ़ तौर से होना ज़रूरी है, उस के चुप रहने को राज़ी होना नहीं माना जायेगा। इसी तरह बालिग़ लड़के को जुबानी ईजाब व कुबूल लाज़िम है, उस के चुप रहने से निकाह नहीं हो सकता, नाबालिग़ बच्चे की तरफ़ से वली (संरक्षक) ईजाब व कुबूल कर सकता है।

वली का बयानः- निकाह का वली वह है जिस की मौजूदगी पर निकाह के सही होने का दारोमदार हो उस के बग़ैर निकाह सही नहीं, वली या तो बाप हो सकता है या जिसे बाप वसियत कर दे या अस्बी (ख़ूनी रिश्ते का) रिश्तेदार। इमाम मालिक (र०) ने वली बिल-कफ़ाला की बढ़ोतरी की है यानी वह शख़्स जिस ने किसी लड़की की परवरिश की हो।

वलियों की तर्तीबः- लड़के और लड़की का वली सब से पहले उस का बाप है, अगर बाप न हो तो दादा या परदादा। अगर इन में से कोई न हो तो फिर सगा भाई वली है। अगर सगा भाई न हो तो सौतेला भाई जो उस के बाप का ही लड़का हो और यह भी न हो तो फिर भतीजा, इन सब का बालिग़ होना ज़रूरी है, अगर भाई

भतीजे नाबालिग़ हों या न हों तो फिर सगा चचा वली होगा। वह न हो तो सौतेला चचा अगर वह भी न हों तो सगे चचा का लड़का, फिर सौतेले चचा का लड़का, अगर इन में से कोई न हो तो फिर बाप के सौतेले चचा और उन के लड़के क़राबते क़रीबा (क़रीब का रिश्ता) होने के एतबार से तर्तीबवार वली होंगे। अगर इन लोगों में से कोई न हो तो फिर माँ वली होगी और माँ के न होने की सूरत में नानी फिर दादी फिर नाना फिर हक़ीक़ी बहन फिर सौतेली बहन इस के बाद माँ की तरफ़ से सौतेले भाई बहन फिर फूफी फिर मामू फिर ख़ाला और इस के बाद फूफीज़ाद भाई, मामूंज़ाद भाई और ख़ालाज़ाद भाई तर्तीबवार, इन में से हर एक (जो वली बने) उस को हक़ है कि लड़की को शादी कर लेने पर मजबूर करें और नाबलिग़ लड़के पर भी यही हक़ है लेकिन लड़के के बालिग़ हो जाने के बाद उन्हें वली बनने का हक़ नहीं है लेकिन जुनूनी मर्द या औरत का वली बनना सही है।

वली की क़िस्मों का बयान:- वली की दो क़िस्में हैं (1) वली मुजबिर जिसे यह हक़ है कि अपनी विलायत (संरक्षण) में रहने वाले लोगों में किसी का भी निकाह उस की रज़ामंदी और इजाज़त के बग़ैर कर दे। दूसरा (2) वली ग़ैर मुजबिर जिसे यह हक़ नहीं है लेकिन उस का होना ज़रूरी है। वह अपनी विलायत में रहने वाले लोगों में से किसी की शादी उस की इजाज़त और रज़ामंदी के बग़ैर नहीं कर सकता।

विलायते इजबार के शराइत:- जैसा कि बयान किया जा चुका है नाबालिग़ लड़के और लड़कियों पर बाप दादा को विलायते इजबार हासिल है यानी उन का किया हुआ निकाह लड़के और लड़की बालिग़ होने पर तोड़ नहीं सकते यानी वे उसे मानने पर मजबूर हैं। लेकिन इस की कुछ शर्तें हैं अगर वे शर्तें मुजबिर वली में नहीं पाई गई तो बालिग़ होने के बाद लड़का या लड़की किये हुये निकाह पर मजबूर नहीं हैं (1) बेबाक और बेग़ैरत आदमी जिसे गुनाह करने में

कोई डर न हो (2) ऐसा लालची शख़्स जो लालच में आ कर ग़लत जगह शादी कर दे (3) नशेबाज़ या जुनून के मर्ज़ में मुब्तला जिस के होश व हवास ठीक न हों ऐसे लोगों को अगर विलायत का हक़ पहुंचता भी हो तो उन का कराया हुआ निकाह सही नहीं होगा।

विलायते इजबार की वजह:- बाप दादा चूंकि अपने लड़के और लड़की का बुरा नहीं चाहते इस लिये उन्हें यह इख़्तियार शरीअत ने दिया है लेकिन जो शख़्स ज़्यादा गुनाह करने वाला हो, लालची हो, होश व हवास खो देने वाला हो तो ऐसा आदमी ख़ुद अपना ही ख़ैरख़्वाह नहीं है फिर अपने लड़कों का ख़ैरख़्वाह कब हो सकता है इस लिये विलायते इजबार के सिलसिले में फ़ुक़हा ने वह तीन शर्तें लगा दी हैं, उन में से कोई भी बाप दादा के विलायते इजबार को ख़त्म करने के लिये काफ़ी है।

क़रीबतरीन वली की मौजूदगी में दूसरे वली का इख़्तियार:- अगर दूसरा वली क़रीबी वली की मौजूदगी में निकाह कर दे तो यह निकाह उस वक़्त तक सही न होगा जब तक क़रीबी और असल वली रज़ामंदी न दे दे जैसे किसी लड़के या लड़की का बाप मौजूद था और उस की माँ ने उस से पूछे बग़ैर अपनी मर्ज़ी से नाबालिग़ लड़के या लड़की का निकाह कर दिया या भाई मौजूद था और चचा या बहन ने निकाह कर दिया तो असल वली यानी बाप या भाई की इजाज़त ज़रूरी होगी वर्ना निकाह सही नहीं समझा जायेगा।

अगर क़रीबी वली उस वक़्त मौजूद न हो और उस से राय हासिल करने में देर हो रही हो और यह डर हो कि मुनासिब रिश्ता ख़त्म हो जाएगा तो ऐसी सूरत में दूसरा वली भी निकाह करा सकता है लेकिन अगर उस से राय ली जा सकती हो तो किसी दूसरे वली का निकाह करना उस की मर्ज़ी और इजाज़त पर निर्भर रहेगा अगर नाबालिग़ लड़के या लड़की का मुनासिब रिश्ता लग गया लेकिन क़रीबी वली बग़ैर किसी जाइज़ वजह के या अपनी किसी दुश्मनी

की वजह से इजाज़त नहीं दे रहा है तो उस के बाद के क़रीबी वली उस का निकाह कर सकते हैं इसी तरह अगर क़रीबी वली पागल हो जाये तो दूर के वली को निकाह कर देने का हक़ हासिल होता है।

अगर दो बराबर के वली हों जैसे दो सगे भाई, और दोनों अपनी नाबालिग़ बहन का निकाह अलग अलग करना चाहते हों तो जो पहले निकाह कर देगा वह सही माना जायेगा और अगर दोनों एक ही जगह करना चाहते हों तो दोनों के मशवरे से निकाह सही होगा, बग़ैर मशवरे के किया हुआ निकाह दूसरे की इजाज़त पर निर्भर रहेगा अगर दोनों ने एक ही वक़्त में उस का निकाह दो अलग अलग जगह कर दिया तो दोनों निकाह सही नहीं माने जायेंगे।

वली को यह हक़ है कि निकाह के लिये किसी को अपना क़ायम मक़ाम (वकील) बना दे।

निकाह में कुफ़ु (बराबरी) का लिहाज़:- कफ़ाअत का अर्थ बराबरी का है यानी मियाँ बीवी में दीनी, मआशी और समाजी बराबरी, अगर यह न होगी तो रिश्ते का क़ायम रहना, और मुहब्बत व प्रेम पैदा होना मुश्किल हो जायेगा जो निकाह का असल मक़सद है इस लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस का लिहाज़ रखने का हुक्म दिया है, आप ﷺ ने फ़रमाया कि अच्छे रिश्ते को चुनो और अपनी बराबरी वालों में निकाह करो।

(इब्ने माजा)

एक हदीस में आप ने बराबरी की तफ़सील बताते हुए फ़रमाया-

اِذَا اَتَاكُمْ مَنْ تَرْضَوْنَ دِيْنَهُ وَخُلُقَهُ فَزَوِّجُوْهُ وَاِلَّا تَفْعَلُوا

اَتَكُنْ فِي الْاَرْضِ فِتْنَةٌ وَّ فَسَادٌ عَرِيْضٌ (ابن ماجه وترمذی)

इज़ा अताकुम मन तरज़ौना दीनहु व ख़ुलुक़हु फ़ज़व्विजूहु व इल्ला तफ़अलू तकुन फ़िलअरज़ि फ़ितनतुन व फ़सादुन अरीज़

(इब्न माजा व तिरमिज़ी)

'जब ऐसा रिश्ता आये जिस के दीन व अख़्लाक (सदाचार) से तुम संतुष्ट हो तो उस से निकाह कर लो अगर ऐसा नहीं करोगे तो ज़मीन पर फ़ितना व फ़साद फैलेगा।'

बराबरी किन बातों में होना चाहिये:- पाँच बातों में कफ़ाअत का लिहाज़ किया जाना चाहिये-

(1) इस्लाम यानी मियाँ बीवी दोनों मुसलमान हों (2) तक़्वा और ईमानदारी यानी अख़्लाक़ व चरित्र का अच्छा होना (3) नसब यानी ख़ानदान (4) माल और (5) पेशा। इमाम अबू हनीफ़ा, इमाम शाफ़ई और इमाम हंबल रहमतुल्लाह अलैहिम इन बातों में बराबरी का लिहाज़ रखने का हुक्म देते हैं जबकि इमाम मालिक सिर्फ़ दो चीज़ों में बराबरी ज़रूरी मानते हैं (1) दीने इस्लाम का अक़ीदा और (2) सलाह यानी अख़्लाक़ व चरित्र का पसंदीदा होना, दूसरी चीज़ों का लिहाज़ रखना भी अच्छा है लेकिन असल चीज़ दीन व तक़्वा ही है, इस से हक़ीक़ी बराबरी पैदा होती है और लगाव व संबंध भी। फ़ुक़हा-ए-किराम ने दीन के साथ कुछ दूसरी बातों का लिहाज़ भी इस लिये किया कि आपस में उलफ़त व मुहब्बत का रिश्ता क़ायम रहे। ऐसा नहीं है कि ऊँचे ख़ानदान के पापी व गुनहगार लड़के को दूसरे छोटे व कम दर्जे के ख़ानदान के दीनदार और नेक लड़के पर तरजीह (अधीमान) देते हों। कफ़ाअत में जिन चीज़ों का लिहाज़ किया जाना चाहिये उन का बयान नीचे किया जाता है।

1. **इस्लाम:-** सब से पहली चीज़ यह देखना है कि दोनों अक़ीदे के लिहाज़ से मुसलमान हैं या नहीं, अगर दोनों में इस्लाम का रिश्ता नहीं है तो फिर निकाह का रिश्ता क़ायम नहीं हो सकता, जो शख़्स पहले से मुश्रिक या काफ़िर हो या मुसलमान घर में पैदा होते हुए इस्लामी अक़ीदे का कहने और करने से इन्कार करने वाला हो तो दोनों का मुस्लिम लड़की से रिश्ता नहीं हो सकता बल्कि ऐसा शख़्स निकाह में वकील और गवाह भी नहीं बन सकता।

2. **तक़्वा और ईमानदारी:-** अक़ीदा ठीक होने के बाद यह देखना है कि उस के अख़्लाक़ व आमाल उस के अक़ीदे के ख़िलाफ़ न हों क्योंकि ऐसा शख़्स उस शख़्स का कुफ़ु (बराबर) नहीं हो सकता जिस का अक़ीदा भी सही हो और अमल भी, जो ज़ेहनी एतेबार से भी मुसलमान हो और अमली एतेबार से भी। हिदाया में है-

'अमानत व परहेज़गारी सब से ज़्यादा इज़्ज़त व फ़ख़्र की चीज़ है'

'और औरत के लिय शौहर का छोटे ख़ानदान वाला होना इतनी शर्म की बात नहीं जितना उस का फ़ासिक़ (बदअमल) होना।'

3. **नसब:-** इमाम मालिक को छोड़ कर बाक़ी तीनों इमामों ने नसब में बराबरी का लिहाज़ रखने के लिये मेयार (कसौटी) क़ायम किया है। नसब के एतबार से इन्सान की दो क़िस्में हैं, अरबी और ग़ैर अरबी यानी अजमी, फिर अरबी की दो क़िस्में हैं, क़ुरैशी और ग़ैर क़ुरैशी। क़ुरैश आपस में एक दूसरे के बराबर हैं इस तरह अरबी नज़ाद सिद्दीक़ी, फ़ारूक़ी, उस्मानी, अलवी और अब्बासी ख़ानदान एक दूसरे के बराबर हैं। ग़ैर क़ुरैशी, अरब क़बाइल और मदीना के अनसार सब एक दूसरे के बराबर हैं। अहले अजम (अजम वाले) जैसे तुर्किस्तानी, ईरानी, अफ़ग़ानी वग़ैरा अहले अरब (अरब वाले) के बराबर नहीं। अहले अजम में भी आपस में फ़र्क़ किया जाता है जैसे अहले फ़ारस (फ़ारस वाले) अहले नब्त (नब्त वाले) से और बनी इसराईल क़िब्तियों से अफ़ज़ल (महान) समझे जाते हैं इस लिये अगर औरत ऊँचे नसब की है तो ज़रूरी है कि मर्द भी उसी दर्जे के ख़ानदान से संबंध रखता हो। संबंध का लिहाज़ बाप के एतबार से होता है माँ के एतबार से नहीं होता इस लिये अगर बाप अहले अजम से हो और माँ अरबी हो तो बेटा और बेटी को अहले अजम से समझा जायेगा।

(4) **माल:-** माली बिरादरी देखने का मक़सद यह है कि ख़ुशहाल घराने की लड़की ख़ुशहाल घर में बियाही जाये ताकि उसे महरूमी

की शिकायत न हो, फ़िक़्ही उलमा माल में बराबरी के लिये इस को काफ़ी समझते हैं कि लड़का महर अदा करने और ख़र्च चलाने की क़ुदरत रखता हो। मालिकी फ़क़ीह इब्ने जज़ी का कहना है कि उतना माल उस के पास हो जिस पर वह क़ादिर है, ख़ुशहाली शर्त नहीं है।

फ़तहुल क़दीर में है कि 'अगर वह बीवी को खिलाने पहनाने की ताक़त रखता हो तो वह उस का कुफ़ु है।'

5. **कारोबार:-** कारोबार में बराबरी का मतलब यह है कि लड़के वालों का कारोबार लड़की वालों के कारोबार के बराबर समझा जाता हो, आमतौर पर एक ही तरह का कारोबार करने वाले लोगों का रहन सहन और ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा और रोज़ी कमाने का ज़रिया मिलता जुलता होता है इस लिये निकाह के रिश्ते में इस का एतेबार और लिहाज़ रखने की इजाज़त है। इस्लाम में कारोबार से इज़्ज़त और ज़िल्लत को जोड़ना सही नहीं है। हिदाया में है-

> 'कारोबार किसी के साथ चिमटा नहीं रहता आदमी छोटा कारोबार छोड़ कर दूसरा अच्छा काम कर सकता है।'

नसब, दौलत और कारोबार इज़्ज़त व शराफ़त की बुनियाद नहीं हैं। इस्लाम अगर इन्सान को शराफ़त और इज़्ज़त के लायक़ समझता है तो दीन व तक़वा के लिहाज़ से, सिर्फ़ ख़ानदान माल या कारोबार की वजह से किसी को इज़्ज़तदार और शरीफ़ समझना इस्लाम का तरीक़ा नहीं है-

يَـٰٓأَيُّهَا النَّاسُ إِنَّا خَلَقْنَـٰكُم مِّن ذَكَرٍ وَأُنثَىٰ وَجَعَلْنَـٰكُمْ شُعُوبًا وَقَبَآئِلَ لِتَعَارَفُوٓا۟ إِنَّ أَكْرَمَكُمْ عِندَ اللَّهِ أَتْقَىٰكُمْ ۚ (الحجرات:١٣)

या अय्युहन्नासु इन्ना ख़लक़नाकुम मिन ज़करिवं वउन्सा व जअलनाकुम शुऊबवं वक़ाबाइला लितआरफ़ू इन्ना अकरमकुम इन्दल्लाहि अतक़ाकुम।

अनुवाद:-लोगो! हम ने तुम को एक मर्द और एक औरत से पैदा

किया फिर तुम को मुख़्तलिफ़ क़ौमों और ख़ानदानों में बाँट दिया ताकि एक दूसरे को पहचान सको, तुम में वही ज़्यादा सम्मानित और इज़्ज़तदार है जो ज़्यादा मुत्तक़ी (अल्लाह से डरने वाला) और परहेज़गार हो।

यानी लोगों का विभिन्न तरीक़े से रोज़ी कमाना और ज़ुबान व मक़ाम का अलग अलग होना यह इस लिये है कि इन्सान एक दूसरे को आपस में पहचान सकें, विभिन्न कारोबार करने वालों में तमीज़ कर सकें और ज़िन्दगी की ज़रूरियात एक दूसरे के सहयोग से पूरी कर सके, इसी परिचय की वजह से क़रीब और दूर के रिश्तों का निर्धारण और उन के हुक़ूक़ की अदायगी और हर एक के साथ संबंध की जानकारी होती है कि किस के साथ क्या संबंध है यह तक़सीम ज़िन्दगी की अहम ज़रूरतों को पूरा करने के अलावा इन्सानों को एक दूसरे से जुड़े रखने का ज़रिया भी है यह तक़सीम हरगिज़ इज़्ज़त व अपमान, शराफ़त और बेइज़्ज़ती की बुनियाद नहीं है, न मग़रिब को मश्रिक़ पर तर्जीह (अधिमान) है न अरब को अजम पर, न एशिया को यूरोप पर न गोरे को काले पर। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है-

> 'सब इन्सान बराबर हैं जैसे कंघी के दांत, अरबी को अजमी पर महानता नहीं। वरीयता की बुनियाद सिर्फ़ तक़वा है।'

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने ख़ुद भी ग़ैर क़ुरैश में शादी फ़रमाई, अपनी फूफीज़ाद बहन हज़रत ज़ैनब (र०) को हज़रत ज़ैद (र०) के साथ और फ़ातिमा बिन्ते क़ैस को हज़रत उसामा बिन ज़ैद के साथ बियाहा हालाँकि ये दोनों औरतें क़ुरैशी थीं और ये दोनों बुज़ुर्ग क़ुरैशी नहीं थे और इस के अलावा ग़ुलाम भी रह चुके थे।

इस से मालूम होता है कि शराफ़त की असल बुनियाद दीन व तक़वा पर है नसब पर नहीं। निकाह के रिश्ते के वक़्त दूसरी चीज़ें भी जैसे ख़ानदान, हुस्न व ख़ूबसूरती, माल व दौलत भी देखी जा सकती हैं मगर दीन व तक़वा पर इन चीज़ों को तरजीह नहीं दी जा

सकती। अगर एक मालदार लड़का हो लेकिन ईमानदारी, तक़्वा और दीन का इल्म न हो तो उस के मुक़ाबले में एक ग़रीब लड़का बेहतर है जिस के अन्दर तक़्वा ईमानदारी और दीन का इल्म हो रद्दुलमुख़्तार-में है-

'इल्म रखने वाले की इज़्ज़त ख़ानदान की इज़्ज़त से ज़्यादा बेहतर है। यह बात इस आयत से ज़ाहिर है 'क्या इल्म रखने वाले और इल्म न रखने वाले बराबर हो सकते हैं।'

एक मुसलमान के लिये ज़रूरी है कि दौलत व ख़ूबसूरती और ख़ानदान के मुक़ाबिले में ईमानदारी, तक़्वा और इल्म को तरजीह दे। इसी तरह बीवी को चुनने के बारे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है:

'और से निकाह तीन ख़ूबियाँ देख कर किया जाता है दीन व अख़लाक़, माल व दौलत, हुस्न व ख़ूबसूरती। तुम दीन व अख़लाक़ वाली औरत से ज़रूर निकाह करो, तुम्हे भलाई और ख़ुशनसीबी हासिल हो।'

इस फ़रमान का मतलब यह है कि तीन ख़ूबियों में बेहतरीन ख़ूबी दीन व अख़लाक़ की है और ख़ास तौर से इसी का ध्यान रखा जाये ताकि सुकून व इतमीनान और ख़ुशी हासिल हो। इमाम मालिक (रह०) माल, नसब और कारोबार में बराबरी की शर्त नहीं लगाते, उन के नज़दीक कुफ़ु यह है कि दो बातों में दोनों बराबर हों।

(1) मुसलमान और ईमानदार होना (2) ऐबदार न होना जैसे कोढ़ या पागलपन, उन के नज़रिए के एतबार से अगर एक लड़की ऐसे घर में पली हो जिस में दीन व अख़लाक़ और इल्म व फ़ज़्ल हो और उसी ख़ानदान का एक लड़का ऐसे माहौल में पला हो जिस में दीन व अख़लाक़ और इल्म व फ़ज़्ल न हो तो ख़ानदान एक होने के बावजूद उस लड़की का यह लड़का कुफ़ू नहीं हो सकता। इस के विपरीत अगर दो अलग-अलग ख़ानदानों के लड़का लड़की दीन व

अख़लाक़ इल्म व फ़ज़्ल के एतबार से बराबर हों तो दोनों एक दूसरे के कुफ़ु हो सकते हैं।

नसब में कुफ़ु देखने का तरीक़ा:- इस्लाम में नसब का एतेबार बाप की तरफ़ से होता है माँ की तरफ़ से नहीं। बाप दादा का ख़ानदान लड़का और लड़की का ख़ानदान है, जो लोग नसब की तलाश में ननिहाल को भी देखते हैं वे ग़लत है।

सिदाक़ (मह्र) का बयान

कुरआन में मह्र का शब्द इस्तेमाल नहीं हुआ है बल्कि 'सदुक़ह' इस्तेमाल हुआ है *'वआतु न्निसा असदुक़ातिहिन्ना निहलतन'* इस्दाक़ का अर्थ है दुरूस्त (ठीक) करना, सच्चा करना, दोस्ती करना, इज़्हारे रग़बत के लिये माल ख़र्च करना। महर के लिये सिदाक़ (साद पर ज़बर या ज़ेर) बोला जाता है (जो इस्दाक़ का इस्मे मस्दर है)। इस तरह इस्दाक़ का अर्थ महर देने के और सदाक़ का अर्थ मह्र के हैं। गोया महर को सिदाक़ इस लिये कहते हैं कि यह शौहर और बीवी के संबंधों की दुरूस्ती, सच्चाई और दोस्ती की निशानी है।

मह्र की परिभाषा:- परिभाषा में मह्र उस माल को कहते हैं जो निकाह के बाद औरत से फ़ायदा उठाने के बदले में दिया जाता है। यह माल या तो निकाह के वक़्त औरत को तुरन्त अदा कर दिया जाता है या अदा करने का वादा कर लिया जाता है। पहली सूरत को मह्रे मुअज्जल कहा जाता है और दूसरी सूरत को मह्रे मुवज्जल। मुअज्जल उजलत (जल्दी) से बना है यानी वह चीज़ जो जल्द की जाये और मुवज्जल अजल से बना है जिस का अर्थ वक़्त और मुद्दत के हैं।

मह्र की शर्तें:- पहली शर्त यह है कि मह्र माल की क़िस्म में से हो जिस की क़ीमत लगाई जा सके। इस की कम से कम या ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा की कोई हद तै नहीं है, सुन्नत यह है कि मह्र दस दिर्हम से कम न हो।

दूसरी शर्त यह है कि पाक (पवित्र) चीज़ हो यानी हलाल जिसे

इस्तेमाल में लाना सही हो क्योंकि शरीअते इस्लामी में हराम चीज़ों की कोई क़ीमत नहीं है, चाहे ग़ैर मुस्लिम के नज़दीक उन की क़ीमत हो, जैसे शराब और सुवर वग़ैरा।

तीसरी शर्त यह है कि माल किसी से छीना हुआ या बेईमानी से हासिल किया हुआ न हो अगर ऐसा है तो उस माल को मह्र मानना सही नहीं है, हाँ निकाह तो हो जायेगा और औरत को मह्रे मिस्ल माँगने का हक़ होगा।

चौथी शर्त यह है कि वह (मह्र) नामालूम न हो। यह शर्त नहीं है कि ख़ास तौर से वह चाँदी या सोना हो बल्कि तिजारत का माल, जानवर, ज़मीन, मकान भी मह्र का हक़ हो सकता है और इन चीज़ों के मुनाफ़े (लाभ) को भी मह्र का हक़ माना जा सकता है जैसे मकान या जानवर का किराया 'ज़मीन की पैदावार' क़ुरआन की शिक्षा की मज़दूरी वग़ैरा।

मह्र ऐसी ज़रूरी चीज़ है कि अगर निकाह के वक़्त मह्र का ज़िक्र नहीं किया गया हो तब भी मह्रे मिस्ल अदा करना पड़ेगा। मह्रे मिस्ल का परिचय आगे आयेगा।

मह्र हैसियत से ज़्यादा न होना चाहियेः- मह्र उतना ही मुक़र्रर करना चाहिये जितना पति आसानी से अदा कर सके। आमतौर पर मह्र ज़्यादा मुक़र्रर करने की दो वजहें होती हैं, एक तो इज़्ज़त व फ़ख़्र की नुमाइश, दूसरे यह बात की पति पत्नी को तलाक़ न दे सके, दोनों वजहें शरअन और अक़्लन ग़लत हैं। अगर दोनों के मिज़ाज इतने अलग अलग हों कि दोनों का एक जगह रहना अज़ाब बन जाये तो यह कौन सी अक़्लमंदी होगी कि उस अज़ाब से छुटकारा न हासिल किया जाये। लेकिन अज़ाब तभी दूर हो सकता है जब पति औरत का हक़ दे कर उसे रूख़सत कर दे। शरई एतबार से भी मह्र ज़्यादा मुक़र्रर करने की रोक है। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमायाः-

اَعْظَمُ النِّكَاحِ بَرَكَةً اَيْسَرُهٗ مَؤُنَةً.

'अअज़मन्निकाहि बरकतन ऐसरूहू मऊनतन।'

अनुवादः–ज़्यादा बरकत वाला वह निकाह है जिस में तकलीफ़ व परेशानी सब से कम हो।

खुद आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अपने लिये मह्‌र ज़्यादा मुक़र्रर करना पसन्द नहीं फ़रमाया। हज़रत फ़ातिमा (र०) का मह्‌र आप ने पाँच सौ दिर्हम मुक़र्रर फ़रमाया था एक दिर्हम चौथाई तोले से कुछ ज़्यादा होता है यानी तीन माशा दो रत्ती। कुल मह्‌रे फ़ातिमी 131 तोला तीन माशा चाँदी हुआ। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इस मात्रा से ज़्यादा मह्‌र नहीं मुक़र्रर फ़रमाते थे। इस चाँदी की जो क़ीमत रूपये या दूसरे सिक्कों के एतबार से बने वही मुक़र्रर करना चाहिये।

हज़रत उमर (र०) के ज़माने में जब मालदारी बढ़ी तो लोग बहुत ज़्यादा मह्‌र मुक़र्रर करने लगे थे, आप ने फ़रमाया कि लोगो मह्‌र मुक़र्रर करने में ज़्यादती न करो अगर यह चीज़ दुनिया में इज़्ज़त व फ़ख़्र का सबब होती या आख़िरत में मह्‌र का ज़्यादा सवाब होता तो नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इस को सब से पहले अपनाते।

मह्‌र की कम से कम मात्राः– इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने हदीसे नबवी की रोशनी में कम से कम मह्‌र की मात्रा दस दिर्हम यानी पौने तीन तोला चाँदी मुक़र्रर की है। अब अगर कोई शख़्स इस से कम क़ीमत का मह्‌र मुक़र्रर करता है तो उसे पौने तीन तोला चाँदी की क़ीमत देना पड़ेगी क्योंकि यह कम से कम मात्रा है, इस से कम मह्‌र मुक़र्रर नहीं किया जा सकता।

ज़्यादा मह्‌र की कोई हद मुक़र्रर नहीं है मगर जैसा कि पहले बयान हुआ मह्‌र हैसियत से ज़्यादा न होना चाहिये यानी इतना मह्‌र मुक़र्रर किया जाये जितना वह उस वक़्त या जल्द से जल्द अदा कर

सकता हो। अगर तकब्बुर या घमंड या किसी और ग़ैर शरई आधार पर ज़्यादा मह्र मुक़र्रर कर दिया और दिल में यह ख़याल रहा कि देना तो है नहीं जितना चाहो मुक़र्रर कर दो तो यह सख़्त गुनाह है। यह औरत का हक़ है और हक़ मारने का ख़याल करना बड़ा ज़ुल्म और गुनाह है।

मह्रे मिस्लः- कुछ सूरतें निकाह व तलाक़ के सिलसिले में ऐसी पेश आती हैं जिन में मह्रे मिस्ल देना पड़ता है जैसे किसी ने निकाह के वक़्त मह्र का ज़िक्र नहीं किया तो महर माफ़ न होगा बल्कि औरत को मह्रे मिस्ल मिलेगा। मह्रे मिस्ल से मुराद मह्र की वह मात्रा है जो आमतौर पर उस के घर और ख़ानदान में मुक़र्रर होती है यानी दधियाल में, ननिहाल में नहीं। मिसाल के तौर पर फूफी, सगी बहन या चचाज़ाद बहन और दधियाल की दूसरी बेटियाँ। अगर माँ और ख़ाला बाप के ख़ानदान की हों तो उन के मह्र का एतबार किया जायेगा। किसी लड़की का मह्रे मिस्ल उस औरत के मह्र से तै किया जायेगा जो सूरत, सीरत, इल्म व सलीक़ा और दीनदारी में उस के क़रीब-क़रीब हो। अगर क़रीबी रिश्तेदारों में कोई लड़की इन ख़ूबियों वाली नहीं हो तो दूर के रिश्तेदारों में जो लड़की उस के जैसे ख़ूबियों वाली होगी उस का मह्र, मह्रे मिस्ल क़रार पायेगा।

मह्र से सम्बंधित कुछ ज़रूरी मसाइलः

1. निकाह के वक़्त मह्र का निर्धारण क्या जा चुका हो तो ख़ल्वते सहीहा (सुहाग रात) के बाद पूरा मह्र देना पड़ेगा।

2. अगर निकाह के वक़्त मह्र का ज़िक्र नहीं किया गया, या मर्द ने मह्र न देने की शर्त लगा दी और निकाह हो गया दोनों सूरतों में ख़ल्वते सहीहा के बाद औरत मह्रे मिस्ल पाने की हक़दार होगी और अगर औरत की मृत्यु हो जाये तो उस के वुरसा उस के हक़दार होंगे। यही हुक्म उस वक़्त भी लागू होगा अगर मर्द की मृत्यु हो जाये चाहे ख़ल्वत हुई हो या न हुई हो। (फ़तावा हिन्दिया)

3. अगर कोई शख़्स नक़द रक़म के बजाये ग़ैर मनक़ूला जायदाद (अचल सम्पत्ति) जैसे मकान, ज़मीन, दुकान या मनक़ूला माल (अचल सम्पत्ति) जैसे मोटर, मोटर साईकल या सवारी का जानवर मुक़र्रर करे तो वह कर सकता है। लेकिन यह निर्धारण करना ज़रूरी है कि कौन सी ज़मीन, मकान या सवारी मह्र में दे रहा है अगर छुपाये रखा तो मह्र मुक़र्रर नहीं हुआ। उस के बजाये मह्रे मिस्ल देना पड़ेगा। (रद्दुल मुहतार)

4. अगर किसी सेवा को या ऐसी चीज़ को जो अभी मौजूद नहीं है मह्र ठहराया तो वह मह्र सही न होगा, जैसे यह कहा कि मैं औरत को हज करा दूँगा, या शिक्षा का ख़र्च बर्दाश्त करूँगा या सेवा के लिये एक नौकरानी रख दूँगा तो मह्र का निर्धारण सही न होगा और इन तमाम सूरतों में मह्रे मिस्ल अदा करना पड़ेगा।

5. दो शख़्स अपने लड़कों या लड़कियों का निकाह इस तरीक़े पर कि हर एक दूसरे की लड़की को अपने लड़के से कर दे और यह अदला-बदली ही मह्र समझा जाये तो यह निकाह सही नहीं है, इस को 'निकाहे शिग़ार' कहा जाता है जिस से नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने रोका है, दोनों को मह्रे मिस्ल देना पड़ेगा।

6. अगर निकाह के वक़्त मह्र मुक़र्रर नहीं किया गया, मगर निकाह के बाद मियाँ बीवी दोनों ने अपनी ख़ुशी से मह्र मुक़र्रर कर लिया तो वही वाजिब होगा, मह्रे मिस्ल वाजिब नहीं होगा।

7. निकाह के वक़्त महर मुक़र्रर किया गया एक हज़ार। शौहर (पति) ने निकाह के बाद कहा कि मैं डेढ़ हज़ार दूँगा तो अब उस पर उतना ही वाजिब हो गया, अगर न दे तो औरत उस से और ज़्यादा रक़म माँग सकती है, और अगर वह नहीं अदा करेगा तो गुनहगार होगा। इसी तरह अगर औरत ने मुक़र्ररह मह्र में से कुछ माफ़ कर दिया तो उतना हिस्सा महर का मर्द के सिर से माफ़ हो गया, अब औरत उस माफ़ की हुई रक़म को नहीं माँग सकती।

8. औरत को परेशान कर के, डरा धमका कर अगर मर्द ने मह्र माफ़ करा लिया तो ऐसी माफ़ी सही नहीं है। मह्र औरत की सम्पत्ति है और सम्पत्ति का कोई हिस्सा जब तक ख़ुशी के साथ किसी को न दे दिया जाये वह ख़ुद नहीं ले सकता।

9. पति और पत्नी दोनों बालिग़ हों और दोनों एक जगह रह चुके हैं मगर पति पत्नी के फ़राइज़ किसी जिन्सी ख़राबी की वजह से अदा न कर सका तो इस सूरत में अगर मर्द ने तलाक़ दे दी या औरत ने निकाह ख़त्म करा लिया तो पूरा मह्र अदा करना होगा। हाँ अगर दोनों में से कोई नाबालिग़ है और उसी हालत में निकाह टूट गया या तलाक़ हो गई तो आधा मह्र देना वाजिब होगा।

10. निकाह के शराइत और अरकान पूरे न हुए हों जैसे दो गवाह न रहे हों या वली-ए-जाइज़ के होते हुए किसी दूसरे ने निकाह करा दिया हो या कोई और ख़राबी हो जिस की वजह से निकाह फ़ासिद क़रार दिया गया हो और दोनों में जुदाई करा दी गई हो तो अगर यह जुदाई मुबाशरत (संभोग) के बाद हुई है तो मह्रे मिस्ल देना पड़ेगा, लेकिन अगर मुबाशरत नहीं हुई तो मह्र वाजिब न होगा अगरचे ख़ल्वते सहीहा (सुहागरात) हो चुकी हो।

ख़ल्वते सहीहा की परिभाषा:- मर्द और औरत दोनों बालिग़ हों और उन्हें अकेले में इकटठा होने का ऐसा मौक़ा मिले कि कोई चीज़ मुबाशरत (संभोग) के लिये रोक न बने तो इस अकेले में इकट्ठा होने को ख़ल्वते सहीहा कहते हैं और अगर मुबाशरत से रोकने वाली कोई चीज़ मौजूद हो जिस की तफ़सील नीचे दी जा रही है तो ख़ल्वते सहीहा न होगी, ऐसी तनहाई को ख़ल्वते फ़ासिदा कहेंगे।

मुबाशरत से रोकने वाली चीज़े:- मर्द या औरत में से कोई ऐसा बीमार हो कि मुबाशरत मुम्किन न हो या क़रीब में कोई तीसरा शख़्स मौजूद हो चाहे वह सो ही क्यों न रहा हो, या मर्द और औरत में से कोई एहराम बाँधे हुए हो, या उन में कोई रमज़ान का रोज़ा रखे हुए

हो या औरत हैज़ की हालत में हो या दोनों में कोई नाबालिग़ हो तो इन जैसी सूरतों में अकेले इकटठा होने को ख़ल्वते सहीहा नहीं, ख़ल्वते फ़ासिदा कहा जायेगा।

चढ़ावे और जहेज़ का बयानः- यह रिवाज है कि निकाह का फ़ैसला होने के बाद होने वाला शौहर बीवी को तोहफ़ा भेजता है जिस को पेशकश या चढ़ावा कहते हैं। इसी तरह यह भी रिवाज है कि औरत हैसियत के मुताबिक़ जहेज़ ले कर आती है। सवाल यह पैदा होता है कि क्या मर्द के तोहफ़े को मह्र में गिना जायेगा या नहीं? और क्या मर्द को यह हक़ है कि वह जहेज़ की माँग करे?

हदिया या तोहफ़ा जो मर्द की तरफ़ से औरत को भेजा जाता है वह दो तरह का हो सकता है, खाने पीने की चीजें या बरतने या रख उठा कर इस्तेमाल की चीजें जैसे ज़ेवर या कपड़ा वग़ैरा तो अगर पहली क़िस्म की चीज़ों को मर्द यह गुमान करे कि उसे मह्र में शुमार किया जाये और बीवी कहे कि वह मह्र नहीं है बल्कि हदिया है तो बीवी की बात मानी जायेगी। क्योंकि आम रिवाज में इन चीज़ों को मह्र नहीं कहा जाता। इसी तरह वे चीजें जिन्हें चढ़ावा कहते हैं उस में कंगन या चूड़ियाँ या अंगूठी और उस के साथ मिठाइयाँ और फूलदार कपड़े वग़ैरा होते हैं, आमतौर पर इस को मह्र नहीं कहते बल्कि यह एक पेशकश है जो बीवी को इस लिये भेजी जाती है कि वह किसी और उम्मीदवार को कुबूल न करे। अब अगर मर्द यह दावा करे कि उसे मह्र में शुमार किया जाये और इस दावे की कोई गवाही न हो तो इस बारे में औरत जो बात कहे उसे क़सम खाने पर मान लिया जायेगा। कुछ उलमा कहते हैं कि खाने पीने की चीज़ों के अलावा दूसरे क़िस्म के तोहफ़े और हदियों में शौहर की बात को मान लिया जायेगा अगर कोई और सुबूत न हों तो अगर शौहर क़सम खा ले कि मैं ने यह इसी इरादे से दिया था कि मह्र में दे रहा हूँ तो उस की बात को मान लिया जायेगा। अब अगर उस का तोहफ़ा बाक़ी है तो बीवी को हक़ है कि उसे वापस कर दे और अपना

महर वुसूल कर ले और अगर वह चीज़ ख़त्म हो गई है तो उस की क़ीमत लगा कर महर में से उतना कम कर दिया जायेगा, मगर तरजीह इस राय को हासिल है कि आम रिवाज व दस्तूर को देखा जायेगा। अगर तोहफ़े को महर नहीं माना जाता तो उसी के मुताबिक़ अमलदरामद होगा, अगर कोई और सुबूत पेश न किया जा सके।

रहा जहेज़ का मसला तो इस बात के सही होने में कोई शक नहीं कि जिस चीज़ को महर मान कर निकाह किया जाता है उस का बदल बीवी के सिवा और कुछ नहीं है, इस लिये शौहर को बीवी की ज़ात के अलावा और किसी चीज़ (जहेज़ वग़ैरा) के माँगने का हक़ नहीं है, लेकिन अगर किसी महर पर निकाह तय हो गया फिर शौहर ने (महर के अलावा) और कुछ रक़म दे दी कि उस से वह अपना जहेज़ तै कर ले और बीवी ने वह रक़म ले ली लेकिन बग़ैर जहेज़ के आ गई और शौहर ने ज़्यादा दिनों तक उस पर कुछ न कहा तो यह उस की रज़ामंदी का सुबूत है और अब उसे उस रक़म को माँगने का (जो उस ने जहेज़ के लिये दी थी) हक़ नहीं रहेगा। वर्ना वह उस के माँगने का हक़ रखता था क्योंकि वह ऐसे काम के लिये दिया था जिस का करना खुद उस पर वाजिब था। इस लिये कि बीवी की ज़रूरतों को पूरा करना शौहर का काम है। इसी तरह बाप या माँ ने अगर कोई चीज़ या सामान बेटी को दिया हो और वह उसे क़ुबूल कर चुकी हो तो बाप या माँ को बेटी से वापस माँगने का हक़ नहीं है क्योंकि वह बेटी की मिल्कियत (सम्पत्ति) हो गई।

मुहरिमाते निकाहः- इस्लाम में मर्दों के लिये जिन औरतों से निकाह करना हराम है उन के दो तबक़े (वर्ग) हैं एक वह जिन से हमेशा के लिये निकाह हराम है दूसरा वह जिन से वक़्ती तौर पर निकाह हराम है। जब हुर्मत की वजह दूर हो जाये तो वह हलाल हो जाती है, पहले तबक़े में हुर्मत की वजहें तीन हैं, नसब, शादी, दूध में शरीक होना।

नसबी रिश्ते से तीन क़िस्म की औरतें हराम हैं (1) वह जिन के ऊपर और नीचे की तमाम शाख़ें हुर्मत में शामिल हैं यानी माँ और माँ की माएँ या बाप की माएँ और उन से ऊपर और नीचे की शाख़ में बेटियाँ, नवासियाँ, पोतियाँ और उन से नीचे की औलाद सब हमेशा के लिये हराम हैं (2) माँ बाप की बहनें चाहे हक़ीक़ी हों या अल्लाती या अख़याफ़ी, बहनों की बेटियाँ यानी भांजियाँ और उन के बेटों यानी भांजों की बेटियाँ और भाई की बेटियाँ यानी भतीजियाँ और भतीजियों की बेटियाँ और उन के नीचे की औलाद (3) दादा और नाना की शाख़ाएँ यानी फूफी और ख़ालाएँ चाहे सगी हों या सौतेली। नसबी मुहरिमात की गिनती यहीं तक है इस लिये फूफी और ख़ालाओं की बेटियाँ चचा और मामू की बेटियाँ हराम नहीं हैं। दादी और नानी की शाख़ में भी उन के अलावा जो नसब में पहले दरजे प. हैं और कोई हराम नहीं है।

शादी के रिश्ते से भी तीन क़िस्म की औरतें हराम हैं (1) बीवी की बेटी यानी मर्द की सौतेली बेटी जिस को रबीबा कहते हैं और रबीबा की बेटी और उस की बेटी की बेटी सब हराम हैं (2) निकाह होते ही बीवी की माँ, नानी और दादी यानी सासें हराम हो जाती हैं (3) वे तमाम औरतें जो बाप के हरम में रही हों।

दूध के रिश्ते से वे तमाम औरतें हराम हो जाती हैं जो नसब के रिश्ते से हराम होती हैं। कुछ सूरतें अलग हैं जिन का ज़िक्र रज़ाअत के बयान में आयेगा।

ये वे सूरतें हैं जो हमेशा के लिये औरत को हराम कर देती हैं।

वक़्ती तौर पर निकाह को हराम कर देने वाली सूरतें:- कुछ चीज़ें ऐसी हैं जिनसे वक़्ती तौरपर औरत से निकाह करना हराम हो जाता है-

(1) बीवी के ऐसे रिश्तेदार से शादी जिस को अगर मर्द फ़र्ज़ कर लिया जाये तो बीवी उस से शादी न कर सकती हो। इस की

बहस आगे आ रही है (2) मुश्रिका औरत जो किसी आसमानी दीन (धर्म) की मानने वाली न हो (3) वह औरत जो तलाक़ के ज़रिए हराम हो चुकी हो (4) वह औरत जो किसी के साथ वाबस्ता हो यानी निकाह हुआ हो लेकिन रूख़सती न हुई हो या वह इद्दत में हो (5) वह मर्द जिस की चार बीवियाँ मौजूद हों या चौथी इद्दत में हो उस के लिये भी नई शादी करना जाइज़ नहीं। इन तमाम सूरतों में निकाह जाइज़ न होने के जो कारण हैं अगर वे दूर हो जायें तो निकाह जाइज़ हो जायेगा।

ससुराली रिश्ते की वजह से हुर्मत मुसाहिरहः- यानी शादी के रिश्ते से जो औरतें किसी मर्द पर हराम हो जाती हैं उनमें से एक बहू यानी बेटे की बीवी है जिस का रिश्ता बेटी की तरह होता है। दूसरी, बीवी की बेटी जो पहले शौहर से हो वह भी रिश्ते में अपनी बेटी के बराबर है। तीसरी, बाप की दूसरी बीवी वह भी रिश्ते में अपनी माँ की तरह है। चौथी, बीवी की माँ कि वह अपनी माँ जैसी है।

बहू होने में बेटे की बीवी की तरह पोते, परपोते, नवासे, परनवासे की बीवियाँ शामिल हैं। अगर बाप किसी लड़की से शादी कर ले तो वह बेटे पोते परपोते वग़ैरा सब पर हराम हो जाती है। इसी तरह अगर बेटा किसी औरत से शादी कर ले तो वह उस के बाप, दादा, परदादा वग़ैरा सब पर हराम होगी चाहे ख़लवते सहीहा हुई हो या न हुई हो, लेकिन बाप की बीवी की बेटी जो अपने बाप की बेटी न हो वह हराम नहीं होगी। इसी तरह माँ के दूसरे शौहर की बेटी और उस शौहर की माँ भी हराम नहीं। सौतेली माँ की माँ और बहू की माँ और मुँह बोले बेटे की बीवी (तलाक़ के बाद) हराम नहीं हैं।

अगर एक शख़्स ने एक औरत से शादी की जिस का एक बेटा दूसरे शौहर से हो और वह बेटा अपनी बीवी को तलाक़ दे दे तो उस से यह शख़्स (यानी माँ का शौहर) निकाह कर सकता है। अगर

एक शख़्स ने किसी औरत से निकाह किया तो उस औरत की माँ और नानी सब हराम हो जायेंगी चाहे ख़ल्वत हुई हो या न हुई हो। लेकिन उस औरत की बेटी जब ही हराम होगी जब ख़ल्वत हुई हो।

शादी के रिश्ते से जो औरतें हराम हो जाती हैं उन का ज़िक्र हुआ लेकिन अगर बाक़ायदा निकाह के ज़रिये रिश्ता न हुआ हो तो बुरी नियत से किसी औरत को हाथ लगाना हराम है और जो यह हराम काम कर बैठे तो उस औरत की माँ उस मर्द के लिये और मर्द का बाप उस औरत के लिये हराम हो गया।

मर्द और औरत का संबंध ससुराली रिश्ते की हुर्मत के लिये तभी सही होगा जब औरत की उम्र 9 वर्ष या उस से ज़्यादा हो, अगर इस से कम उम्र हो तो फिर हुर्मत क़ायम नहीं होगी।

एक से ज़्यादा बीवियाँ:- इस्लाम ने कुछ शर्तों के साथ एक वक़्त में एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की इजाज़त दी है जिस की हद चार बीवियों तक है। साथ ही यह हुक्म भी दे दिया *"फ़इन ख़िफ़्तुम अल्ला-तअदिलू फ़वाहिदतन "*'अगर तुम्हें यह डर हो कि तुम उन सब के साथ बराबर का बर्ताव (व्यवहार) न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी रखना' चार की मौजूदगी में पाँचवीं से निकाह क़तई हराम है।

किन औरतों को निकाह में जमा करना हराम है:- ऐसी दो औरतों का निकाह में जमा करना हराम है कि उन दोनों में से अगर किसी को मर्द मान लिया जाये तो उन दोनों का आपस में निकाह हराम हो। इस लिये दो बहनों का एक शख़्स की बीवी बन कर रहना हराम है क्योंकि अगर उन में से एक को मर्द मान लिया जाये तो दोनों भाई बहन हो जायेंगे जिन का आपस में निकाह जाइज़ नहीं है। इसी तरह एक लड़की और उस की फूफी या ख़ाला जमा नहीं हो सकतीं। अगर फूफी या ख़ाला को मर्द मान लिया जाये तो वह उस का चचा या मामू होगा और भतीजी या भांजी के साथ निकाह जाइज़ नहीं है। जिस तरह सगी बहनें एक ही शख़्स से निकाह कर

के नहीं रह सकतीं इसी तरह रिज़ाई (दूध शरीक)बहनें भी एक ही शख़्स से निकाह नहीं कर सकतीं क्योंकि उन में भी अगर एक को मर्द मान लें तो भाई बहन का रिश्ता क़ायम हो जाता है।

अगर बीवी की मृत्यु हो जाये या उस को तलाक़ हो जाये और इद्दत का ज़माना गुज़र जाये तो उस की बहन से या ख़ाला से या फूफी से अगर निकाह करना चाहे तो वह निकाह जाइज़ होगा। एक वक़्त में दोनों का जमा करना हराम होगा। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है-

"कोई औरत अपनी फूफी पर (उस के शौहर से) शादी न करे और न कोई फूफी अपनी भतीजी पर (उस के शौहर से) शादी करे। न बड़े रिश्ते वाली छोटी पर और न छोटी रिश्ते वाली बड़े रिश्ते वाली पर।" (तिर्मिज़ी)

इस लिये जिन को निकाह में जमा करना हलाल नहीं है अगर ऐसी औरतों को किसी ने जमा किया तो वह निकाह तोड़ दिया जायेगा। नसब के रिश्ते से जो शादी हराम है वही दूध के रिश्ते से भी हराम है कुछ सूरतों के अलावा जिन का ज़िक्र रज़ाअत के बयान में आयेगा।

दूसरे धर्म की औरतों से निकाहः- मुसलमानों से अक़ीदे का इख़्तिलाफ़ (मतभेद)तीन सूरतों में ज़ाहिर होता है (1) वे लोग जो मूर्तियों या तस्वीरों की इबादत (पूजा) करते हों (2) वे लोग जो इस बात का दावा करते हैं कि उन के नबी पर एक किताब उतारी गई है लेकिन उस का पता मौजूदा आसमानी किताबों से नहीं चलता जैसे मजूसी जो आग की पूजा करते हैं और इस बात का दावा करते हैं कि ज़रतुश्त पर एक किताब उतरी है मगर लोगों ने उस को बदल दिया तो वह किताब उठा ली गई (3) वे लोग जो आसमानी किताबों पर ईमान लाये जिन का पता कुरआन मजीद से चलता है। तो पहली दो क़िस्म के धर्म वालों से निकाह किसी मुसलमान का

हलाल नहीं है। तीसरी क़िस्म के धर्म वाले यहूदी और नसरानी हैं जो तौरेत, ज़बूर और इंजील पर ईमान रखते हैं तो मुसलमान मर्द के लिये हलाल है कि वह किताबिया (यानी यहूदी या नसरानी औरत) के साथ निकाह कर ले लेकिन मुसलमान औरत के लिये किताबी (यानी यहूदी या नसरानी मर्द) से निकाह हलाल नहीं है, ग़र्ज़ मुसलमान औरत का निकाह सही होने की शर्त यह है कि मर्द मुसलमान हो। इन तमाम ज़िक्र की गई बातों का सुबूत कुरआन से मिलता है अल्लाह तआला का फ़रमान है 'वला तनकिहुल-मुश्रिकाति हत्ता यूमिन्ना' (मुश्रिक औरतों से निकाह न करो जब तक कि वह ईमान न लाएँ) और फ़रमाया ''वला तनकिहुल-मुश्रिकीना हत्ता यूमिन'' (मुश्रिक मर्दों से 'औरतों का' निकाह न करो जब तक कि वे ईमान न लायें) इस से साबित हुआ कि किसी तरह भी मर्द का निकाह मुश्रिका से और मुसलमान औरत का निकाह मुश्रिक से हलाल नहीं, सिवाये इसके कि वे ईमान लायें और मुसलमानों में दाख़िल हो जायें।

किताबिया औरत से मुसलमान मर्द को निकाह करने की इजाज़त इन शब्दों में दी गई है:

وَالْمُحْصَنٰتُ مِنَ الَّذِيْنَ اُوْتُوا الْكِتٰبَ مِنْ قَبْلِكُمْ. (مائده:٥)

'वलमुहसनाति मिनल्लज़ीना ऊतुल-किताबा मिन क़ब्लिकुम'

(सूरः मायदा, 5)

अनुवाद:-नेक औरतें उन में से जिन्हें तुम से पहले किताब दी गई तुम पर हलाल हैं।

नेक औरतों की सराहत के साथ किताबिया के साथ निकाह हलाल होना साबित है। कुरआन ने दो बातों की क़ैद लगाई *'मिनल्लज़ीना ऊतुल-किताबा'* यानी वे वाक़ई अपने नबी और उन पर उतरी हुई किताब पर ईमान रखती हों। दूसरी यह कि वे मुहसनात अपने आप को निकाह की क़ैद में रखने वाली यानी पाकदामन

(पवित्र चरित्र वाली) हों। जहाँ ये दोनों शर्तें नहीं पाई जायेंगी या इन के पाये जाने में शक होगा वहाँ निकाह की इजाज़त नहीं दी जायेगी जिस की मिसालें अहदे नबवी और अहदे ख़ुलफ़ा-ए-राशिदीन में मिलती हैं।

अगर मियाँ बीवी में से कोई शख़्स ख़ुदा न करे कि वह इस्लाम से फिर जाये या कोई दूसरा धर्म अपना ले तो निकाह का रिश्ता टूट जाता है।

अगर कोई मुशिरक जोड़ा (मियाँ बीवी) साथ ही मुसलमान हो जायें तो उन को नया निकाह करने की ज़रूरत नहीं है।

तीन तलाक़ वाली औरत की हुर्मतः- अगर एक शख़्स ने अपनी बीवी को तीन बार तलाक़ दे दी तो वह उस के लिये हलाल नहीं हो सकती जब तक कि वह इद्दत गुज़रने के बाद किसी और से निकाह न कर ले। अब अगर दूसरा शौहर ख़ल्वते सहीहा और मुबाशरत के बाद उस को तलाक़ दे दे तो इद्दत गुज़ारने के बाद वह पहले शौहर के लिये हलाल हो जायेगी। यह दूसरा शौहर जिस ने औरत को पहले शौहर के लिये हलाल कर दिया मुहल्लिल कहा जाता है।

वक़्ती निकाह या मुतआः- वक़्ती निकाह और किसी ख़ास समय पर ठहराया हुआ निकाह एक ही है। इस बारे में चारों इमामों के नज़दीक इख़्तिलाफ़ नहीं। बुनियाद इस निकाह की यह है कि इस्लाम के शुरू में मुसलमानों की संख्या थोड़ी थी और उन्हें दुश्मनों का मुक़ाबिला करने के लिये लगातार मशग़ूल रहना पड़ता था। इस्लाम लाने से पहले जिन हालात में अरब के लोग पले थे वह औरतों में मशग़ूल रहने का दौर था। शादी करने पर कोई पाबन्दी नहीं थी, हर शख़्स जितनी चाहे औरतें कर सकता था ऐसे लोगों को जब जंग का सामना करना पड़ा तो मजबूरन उन्हें उन तमाम तक़ाज़ों को पूरा करने से दूर रहना पड़ा जिन की आज़ादी उन्हें हासिल थी फिर दीन में दाख़िल होने के बाद एक मुसलमान अपने फ़ितरी और माली तक़ाज़ों

(माँग) को शरीअत के अन्दर रहते हुए पूरे करने का पाबन्द हो गया। शरीअत ने ज़िना को बिल्कुल हराम कर दिया इस लिये ज़रूरी था कि जंग की हालत में वक़्ती तक़ाज़ों के मुताबिक़ शरई अहकाम होते ताकि फ़ितरी तक़ाज़ों को उन से समायोजित किया जा सकता। निकाहे मुतआ या वक़्ती निकाह की नौइयत उन वक़्ती अहकाम की है जो हालते जंग में मसलहतन दिये जाते हैं। तो यह थी बुनियाद निकाहे मुतआ की शरई इजाज़त की। जैसा कि मुस्लिम शरीफ़ की हदीस से जो सबरह (र०) से मरवी है साबित होता है, वह कहते हैं कि जिस साल हम को फ़तेह (विजय) हासिल हुई और हम मक्के में दाख़िल हुए उसी साल हमें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने निकाहे मुतआ की इजाज़त दी थी फिर अभी हम वहाँ से निकले न थे कि हमें इस से रोक दिया गया। इस रिवायत में यह बात मौजूद है कि वह हुक्म वक़्ती और जंग के हालात की ज़रूरत को सामने रखते हुये दिया गया था। और इब्ने माजा में यह हदीस है कि आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया-

يٰاَيُّهَا النَّاسُ اِنِّي كُنْتُ اَذِنْتُ فِي الْاِسْتِمْتَاعِ اَلَا وَاِنَّ اللّٰهَ حَرَّمَهَا اِلٰى يَوْمِ الْقِيَامَةِ.

'या अय्युहन्नासु इन्नी कुन्तु आज़न्तु फ़िल इस्तिमताइ अला व इन्नल्लाहा हर्रमहा इला यौमिल-क़ियामति।

अनुवादः-ऐ लोगो! यक़ीनन मैं ने मुतआ की इजाज़त दी थी लेकिन अल्लाह तआला ने अब उसे क़ियामत तक के लिये हराम कर दिया है।

और यह बिल्कुल अक़्ल के मुताबिक़ है। शरीअत ने ज़िना को बहुत ही बुरे जराइम में से एक जुर्म ठहराया है और ऐसे कामों से रोका है जिनमें उस का शुबहा भी पाया जाये।

وَلَا تَقْرَبُوا الزِّنٰى اِنَّهٗ كَانَ فَاحِشَةً ط وَّسَاءَ سَبِيْلًا. (بنی اسرائیل: ۳۲)

'वला तक़रबूज़्ज़िना इन्नहू काना फ़ाहिशतन, वसाआ सबीला।'

अनुवादः- ज़िना के क़रीब भी न जाओ यह साफ़ तौर से बुराई और बुरा रास्ता है।

अल्लाह तआला का यह फ़रमान अपने विषय पर काफ़ी है इस तरह अगर किसी औरत से एक मुक़र्ररह समय के लिये निकाह किया गया जैसे एक महीना, एक साल या दो चार या दस वर्ष की क़ैद लगा कर तो यह निकाह हराम होगा। इस औरत से मुबाशरत (संभोग) करने वाला ज़िना करने वाले की तरह होगा और उसी सज़ा का हक़दार होगा जो शरीअत ने मुक़र्रर की है।

रज़ाअत की वजह से निकाह का हराम होनाः- ऊपर यह बयान किया जा चुका है कि नसब के रिश्ते से जिन से निकाह हराम है उन से रज़ाअत के रिश्ते से भी निकाह हराम है। लुग़त/डिक्शनरी में रज़ा का अर्थ पिस्तान से दूध चूसना है, तो जिस किसी ने औरत, गाय, बकरी, के पिस्तान से दूध पिया तो अरबी में कहते हैं '*रज़अतहा*' (उस ने उसे दूध पिलाया) अगर जानवर का दूध दुहा और फिर किसी ने उसे पिया तो यह नहीं कहा जा सकता कि उस ने दूध पिलाया। जहाँ तक अर्थ का संबंध है उस में यह शर्त नहीं है कि पिस्तान चूसने वाला बच्ची या बच्चा हो।

रज़ाअत का पारिभाषिक अर्थः- शरीअत की परिभाषा में इस शब्द का अर्थ किसी औरत के दूध का ऐसे इन्सानी बच्चे के पेट में जाना है जिस की उम्र दो साल यानी 24 महीने से ज़्यादा न हो। इस परिभाषा से उन बच्चों में जिन्होंने किसी जानवर का दूध पिया हो रज़ाअत साबित नहीं होगी और वह बच्चा जिस ने 24 महीने की उम्र हो जाने के बाद किसी औरत का दूध पिया हो उस की रज़ाअत दूसरे बच्चों के साथ नहीं होगी। यह राय तमाम फ़ुक़हा की और साहिबैन यानी इमाम अबू हनीफ़ा के दोनो शागिर्दों की है। अगरचे इमाम साहब ने रज़ाअत की मुद्दत ढाई साल यानी 30 महीने बताई है लेकिन साहिबैन की राय के बारे में एक ठोस दलील मौजूद है जिस

की तफ़सील यह है कि रज़ाअत की मुद्दत के बारे में अल्लाह तआला का फ़रमान है-

وَالْوَالِدَاتُ يُرْضِعْنَ اَوْلَادَهُنَّ حَوْلَيْنِ كَامِلَيْنِ.

'वलवालिदातु युर्ज़िअना औलादहुन्ना हौलैनि कामिलैनि।'

अनुवादः-माएँ अपनी औलाद को पूरे दो साल दूध पिलायें।

दूसरी जगह अल्लाह पाक फ़रमाता है:

وَحَمْلُهٗ وَفِصٰلُهٗ ثَلٰثُوْنَ شَهْرًا.

'व हमलुहु व फ़िसालुहु सलासू ना शहरन।'

अनुवादः- पेट में रहने और दूध छुड़ाने तक की मुद्दत 30 महीने है।

दोनों आयतों की ततबीक़ (समानता) इस तरह होती है कि दूध पीने की मुद्दत दो साल और हमल की कम से कम मुद्दत छः महीने है। हज़रत अली (र०) ने हज़रत उस्मान को यही मतलब इस आयत का बताया था और हज़रत उस्मान (र०) ने इसी तफ़सीर (व्याख्या) को कुबूल फ़रमाया। लेकिन इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) ने इस आयत का एक दूसरी तरह से मतलब निकाला है कि हमल की मुद्दत और दूध छुड़ाने की मुद्दत दोनों अलग अलग 30-30 महीने है। गोया अल्लाह तआला का मक़सद ज़्यादा से ज़्यादा मुद्दत का मुक़र्रर करना है कम से कम मुद्दत मुराद नहीं इमाम साहब के नज़दीक हमल की मुद्दत भी ज़्यादा से ज़्यादा 30 महीने तक हो सकती है, और दूध पीने की मुद्दत भी 30 महीने तक मानी जा सकती है। इस तरह अगर ढाई साल की उम्र तक का बच्चा भी किसी औरत का दूध पिये तो वह उस औरत का दूध पीने वाले तमाम बच्चों का भाई हो जायेगा।

दूध में शरीक होने से निकाह का हराम होनाः- कुरआन में मुहरमात का बयान सूरह निसा में करते हुये फ़रमाया गया है-

وَاُمَّهٰتُكُمُ الّٰتِيْٓ اَرْضَعْنَكُمْ وَاَخَوٰتُكُمْ مِّنَ الرَّضَاعَةِ. (سورة نساء: ٢٣)

'व उम्महातुकुमुल्लाती अरज़अनकुम व अख़ावातुकुम मिनर्रज़ाअति।'

अनुवादः- तुम्हारी वे माएँ जिन्होंने तुम्हें दूध पिलाया और तुम्हारी रज़ाई बहनें तुम पर हराम की गई हैं।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है '(जितने रिश्ते नसब की वजह से हराम हैं वे रज़ाअत की वजह से भी हराम हो जाते हैं)' यानी (1) माँ, दादी, नानी (2) बेटी और नवासियाँ (3) बहनें सगी और सौतेली (4) बहन की बेटियाँ (5) भाई सगे या सौतेले की बेटियाँ (6) फूफियाँ (7) ख़ालाएँ।

रज़ाअत की मुद्दत और उस का हुक्मः- रज़ाअत की मुद्दत दो वर्ष है दो वर्ष से ज़्यादा दूध पिलाना जाइज़ नहीं। लेकिन अगर किसी औरत ने किसी कमज़ोर और कम ताक़त वाले बच्चे को ढाई वर्ष दूध पिला दिया तो वह भी रिज़ाई माँ मान ली जायेगी। उस का शौहर रिज़ाई बाप और उस के लड़के लड़कियाँ दूध पीने वाले बच्चे के भाई बहन हो जाएँगे। रज़ाअत का यह रिश्ता उसी वक़्त क़ायम होगा जब बच्चे ने किसी औरत का दूध ढाई वर्ष की उम्र के अन्दर पी लिया हो चाहे वह लगातार पिया हो या सिर्फ़ एक बार ही, दूध की कुछ बूंद ही उस के हलक़ (गले) के अन्दर गई हों सब का हुक्म बराबर है। लेकिन ढाई साल के बाद दूध पीने से रज़ाअत साबित न होगी। ढाई साल के अन्दर अगर बच्चे ने औरत की छाती से मुंह लगा कर नहीं पिया बल्कि औरत ने अपना दूध निकाल कर उस के मुंह में डाल दिया यहाँ तक कि उस के मुंह के बजाये नाक में भी दूध डाल दिया जब भी रज़ाअत का रिश्ता क़ायम हो जायेगा।

मुंह और नाक के अलावा किसी और ज़रिये से दूध पहुंचने का हुक्मः- किसी औरत का दूध बच्चे के कान या आँख में टपकाया या इंजेकशन के ज़रिये दिमाग़ में पहुंचाया, या हुक़ने से मेदे में पहुंच

गया या ऐसे ही किसी और ग़ैर फ़ितरी तरीक़े से अगर दूध पहुंच जाये तो रज़ाअत का रिश्ता क़ायम न होगा।

किसी औरत का दूध पानी या दवा में मिला कर किसी बच्चे को पिलाया गया तो अगर दूध की मात्रा पानी या दवा से कम थी तो रिज़ाअत साबित नहीं होगी। लेकिन अगर दूध की मात्रा ज़्यादा थी और पानी या दवा कम तो रज़ाअत साबित हो जायेगी। इसी तरह अगर औरत का दूध बकरी या गाय के दूध में मिला कर पिलाया गया तो भी मात्रा को देखा जायेगा अगर औरत का दूध ज़्यादा था तो वह उस बच्चे की रिज़ाई माँ हो जायेगी और उस के बच्चे उस के रिज़ाई भाई बहन हो जायेंगे।

औरत का दूध दवा में मिलाना जाइज़ नहीं और ऐसी दवा का खाना और लगाना हराम है। कान और आँख में भी औरत का दूध डालना जाइज़ नहीं है।

कुंवारी लड़की जिस की उम्र 9 वर्ष से ज़्यादा हो अगर उस का दूध निकल आये और वह दो वर्ष से कम उम्र वाले बच्चे को पिला दे तो यह लड़की उस बच्चे की रिज़ाई माँ हो जायेगी और उस के तमाम रिश्ते उस के लिये हराम हो जायेंगे।

रज़ाअत का सुबूतः- दूध का रिश्ता या तो गवाही से साबित होता है या मियाँ बीवी के इक़रार से। अगर निकाह होने से पहले यह गवाही मिल जाये कि मर्द और औरत ने किसी एक औरत का दूध रज़ाअत की मुद्दत के अन्दर पिया था तो उन का निकाह हराम हो जायेगा। लेकिन अगर निकाह हो जाने के बाद यह गवाही मिलती है तो मसाइल पैदा होते हैं। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक दो विश्वस्त मर्दों की गवाही या फिर एक विश्वस्त मर्द और दो विश्वस्त औरतों की गवाही दोनों को एक दूसरे से अलग करने के लिये काफ़ी होगी। एक शख़्स की गवाही काफ़ी नहीं है और चार औरतों की गवाही भी काफ़ी नहीं है। गवाहों में एक मर्द होना ज़रूरी है। गवाही

देने वाले मियाँ बीवी के सामने गवाही दें कि दोनों में रज़ाई रिश्ता है तो उन पर वाजिब होगा कि खुद एक दूसरे से अलग हो जायें, चाहे मुबाशरत हुई हो या न हुई हो। अगर हो चुकी हो तो वाजिब यह है कि ज़ुबान से कह कर निकाह को तोड़ दें जैसे शौहर गवाहों के सामने कहे कि इस निकाह को जो हम ने किया था मैं ने तोड़ दिया, या वह औरत ऐसा ही कहे, अलग हो जाने के बाद फिर इकटठा होना गुनाह होगा। इस ख़ास सूरत में मुबाशरत कर लेने से हद (सज़ा) जारी नहीं किया जायेगा क्योंकि रज़ाअत का सुबूत पहुंचने से निकाह फ़ासिद हो जाता है और निकाह फ़ासिद हो जाने की सूरत में हद जारी (लागू) नहीं होती। फिर भी मियाँ बीवी पर लाज़िम है कि वह खुद निकाह को तोड़ कर अलग हो जायें, अगर वे ऐसा नहीं करें तो उस वक़्त का हाकिम उन के बीच जुदाई करा दे तो निकाह जाता रहेगा। अब अगर वह दोनों मुबाशरत करते हैं तो वे जुर्म होगा और इस जुर्म की उन को सज़ा दी जायेगी।

अगर विश्वस्त गवाह से सिर्फ़ औरत को यह पता चल गया कि उस का शौहर उस का रिज़ाई भाई है और शौहर बाहर गया हुआ है तो जब वह वापस आये तो औरत पर यह ज़रूरी है कि उस से अलग रहे, यहाँ तक कि वह बिल्कुल निकाह तोड़ लें या क़ाज़ी तुड़वा दे। औरत के लिये यह भी हलाल नहीं है कि रज़ाअत का फ़ैसला होने से पहले किसी और से शादी कर ले।

अगर दूध की शिर्कत की ख़बर शौहर को हो गई और बीवी को नहीं हुई तो शौहर पर वाजिब है कि वह बीवी से अलग रहे क्योंकि अब मुबाशरत (संभोग) गुनाह है।

अगर किसी एक विश्वस्त औरत ने मर्द और औरत को बताया कि दोनों ने एक औरत का दूध पिया है तो चार सूरतें हो सकती हैं-

1. दोनों मियाँ और बीवी उस की बात को सच मान लें तो निकाह टूट जायेगा, अब अगर मुबाशरत नहीं हुई है तो बग़ैर कुछ एलान

किये अलग हो जाना काफ़ी है, औरत इस सूरत में महर की हक़दार नहीं होगी और अगर मुबाशरत हो चुकी है तो एलान कर के अलग होना वाजिब है, अगर ख़ुद ही जुदा न हो तो क़ाज़ी पर वाजिब है कि उन में जुदाई करा दे, क्योंकि उस औरत की बात को सच मान लेना इस बात का इक़रार है कि निकाह टूट गया।

2. अगर दोनों उस औरत की बात को झुठला दें तो इस सूरत में निकाह नहीं टूटेगा लेकिन एहतियात इस में है कि दोनों एक दूसरे से अलग रहें जब तक कि कोई यक़ीनी फ़ैसला न हो जाये, फिर अगर यह ख़बर उन्हें मुबाशरत से पहले हुई है तो शौहर पर किसी महर की अदायगी वाजिब नहीं है। फिर भी बेहतर यही है कि आधा महर दे दे और औरत के लिये बेहतर यह है कि उस में से कुछ न ले, और अगर यह बात मुबाशरत के बाद मालूम हुई तो तै किया हुआ महर और महरे मिस्ल में से जो कम हो उस का अदा करना ज़रूरी है, इद्दत के दिन गुज़ारना और दूसरे ख़र्च अदा करना ज़रूरी नहीं लेकिन बेहतर और अफ़ज़ल यह है कि वह भी अदा कर दिये जायें।

3. अगर उस औरत के ख़बर देने को शौहर सही मान ले लेकिन बीवी उस को न माने तो निकाह टूट जायेगा लेकिन शौहर पर मह्र अदा करना ज़रूरी होगा चाहे ख़बर मुबाशरत से पहले हुई हो या बाद में लेकिन जुदाई शौहर की तरफ़ से होगी।

4. तीसरी सूरत के विपरीत अगर बीवी उस ख़बर को सच मान ले लेकिन शौहर उसे झूठ बताये तो निकाह नहीं टूटेगा। हाँ बीवी को यह हक़ होगा कि इस के लिये शौहर को क़सम दिलाये अगर वह क़सम खाने से इन्कार करे तो उन को अलग कर दिया जायेगा।

ये मसाइल इस सूरत में हैं कि जब ख़बर देने वाली औरत भरोसे के क़ाबिल हो। लेकिन अगर वह विश्वस्त न हो तो उस के कहने से कुछ नहीं होता, फिर भी अगर मियाँ और बीवी ग़ैर विश्वस्त गवाहों की बातों को मान लें या सिर्फ़ शौहर मान ले तो निकाह टूट जायेगा

और मुआमला शक वाला हो जायेगा इस लिये एहतियात का तक़ाज़ा यह है कि अलग हो जायें।

ऊपर ज़िक्र किये गये मसाइल गवाही से संबंधित हैं। रहा मुआमला इक़रार का तो अगर मियाँ बीवी दोनों ने रज़ाअत का इक़रार कर लिया, चाहे रिज़ाई बहन भाई होने का या इस बात का कि दूध पिलाने वाली एक दूसरे की माँ या फूफी या ख़ाला वग़ैरा है तो उन का निकाह टूट जायेगा चाहे यह इक़रार मुबाशरत से पहले करें या बाद में।

अगर इक़रार सिर्फ़ शौहर करता है तो उस के इक़रार पर अमल किया जायेगा जब तक वह उस से रूजू (लौटना) न करे। रूजू तभी कर सकता है जब उस ने बहुत ज़्यादा ज़ोर दे कर इक़रार न किया हो यानी यह न कहा हो कि यह सच है यह पक्की बात है या यह बात साबित हो गई है कि वह औरत मेरी दूध शरीक बहन है। अगर उस ने इस तरह नहीं कहा और जो कुछ कहा था उस से पलट गया या यह कहा कि मैं ने जिस बात का इक़रार किया था वह ग़लती से किया था तो ऐसी सूरत में रूजू कर लेना सही होगा और ज़ौजियत (पति पत्नी का रिश्ता) बाक़ी रहेगी।

अगर यह इक़रार सिर्फ़ बीवी की तरफ़ से हो जैसे यह कहे कि मैं उस की दूध शरीक बहन हूँ तो उस का कहना एतबार के क़ाबिल नहीं है। अगर उस ने ज़ोर दे कर इक़रार किया और शौहर ने उस को तलाक़ दे दी तो इमाम मालिक के नज़दीक वह महर की हक़दार न होगी क्योंकि उस ने खुद निकाह के ख़त्म होने का इक़रार किया।

दूध पिलाने वाली की गवाही:- इमाम शाफ़ई (रह०) के नज़दीक रज़ाअत की गवाही दूध पिलाने वाली की कुबूल कर ली जायेगी, जबकि वह दूध पिलाने की मज़दूरी न माँगे ताकि ख़ुदग़र्ज़ी का इल्ज़ाम लागू न हो, और उस की गवाही दुरूस्त न होगी जब तक ये शर्तें न पाई जायें:-

1. रज़ाअत का वक़्त बताये कि उस ने फ़लाँ वक़्त दूध पिया था क्योंकि मुम्किन है कि उस ने उस को दो साल की उम्र के बाद दूध पिलाया हो या ख़ुद उस की उम्र 9 साल से कम हो।

2. वह यह भी बताये कि उस ने कितनी बार दूध पिलाया है।

3. वह दर्मियानी फ़ासले भी बयान करे कि उस के और उस के दूध पीने के बीच कितने वक़्त का वक़्फ़ा है।

4. वह यह भी बताये कि दूध छातियों से उतरा और बच्चे को देखा कि वह उसे चूस रहा या घूंट ले रहा है और दूध हक़ीक़त में बच्चे के पेट में पहुंचा।

रज़ाअत के इक़रार की गवाही के लिए यह ज़रूरी नहीं कि पहले यह मालूम किया जाये कि वह औरत दूध वाली है।

रज़ाअत के बारे में मियाँ और बीवी के इक़रार को क़ुबूल करने की एक शर्त यह है कि जिस बात का वह इक़रार करते हैं उस का होना मुम्किन हो। अगर कोई शख़्स दूध के रिश्ते से बीवी को बेटी कह दे और वह उम्र में उस से बड़ी है तो यह ग़लत बात होगी।

रज़ीअ (दूध पीने वाले) के हक़ीक़ी भाई बहन का हुक्मः- रज़ीअ यानी जिसने दूध पिया है उस का निकाह मुर्ज़िआ (दूध पिलाने वाली) और उस के शौहर और उस के ख़ूनी रिश्तेदारों से जाइज़ न होगा, लेकिन रज़ीअ के दूसरे भाई बहन जिन्होंने उस ख़ास मुर्ज़िआ का दूध नहीं पिया चाहे वे हक़ीक़ी हों या सौतेले या रिज़ाई उनकी उस मुर्ज़िआ के लड़के और लड़कियों से शादी हो सकती है।

रज़ीअ के लड़के लड़कियाँ मुर्ज़िआ और उस के शौहर के लिये हराम हैं क्योंकि रज़ीअ के बच्चे मुर्ज़िआ और उस के शौहर के पोते पोतियाँ और उस की बीवी बहू हो गई। इसी तरह रज़ीआ (दूध पीने वाली) के बच्चे मुर्ज़िआ और उस के शौहर के नवासे नवासियाँ और उस का शौहर दामाद हो गया और इन सब से शादी हराम है।

बेवा और मुतल्लक़ा से निकाहः- इस्लाम औरतों को निकाह के रिश्ते में बंधा रखना चाहता है क्योंकि यह बात उन की इज़्ज़त व आबरू को सुरक्षित रखती है। नबी ﷺ के ज़माने में सहाबए किराम की बीवियाँ जब बेवा हो जातीं तो दूसरे सहाबा और खुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम इस का ख़ास लिहाज़ रखते थे कि वे बग़ैर किसी मर्द के न रहने पाएँ जो उन की इज़्ज़त व आबरू की सुरक्षा करने वाला हो। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और सहाबए किराम की सीरत में इस की मिसालें बहुत ज़्यादा मिलती हैं। कुरआन के इस फ़रमान के मुताबिक़ 'व अनकिहुल अयामा मिनकुम' (अपनी क़ौम की बेवाओं से निकाह करो) इस का बहुत लिहाज़ रखा जाता कि कोई औरत बग़ैर किसी निगराँ के ज़िन्दगी न गुज़ारे। बेवा के लिये इद्दत चार महीने दस दिन, मुतल्लक़ा की इद्दत तीन हैज़ और हामला बेवा या मुतल्लक़ा की इद्दत बच्चे की पैदाइश है यानी उस के बाद वह दूसरा निकाह कर सकती है। इस मुक़र्ररह मुद्दत के ख़त्म होने से पहले निकाह करना हराम है।

ज़ानी और ज़ानिया के निकाह का हुक्मः- अल्लाह तआला का फ़रमान है 'अज़्ज़ानी ला यनकिहु इल्ला ज़ानियतन अव *'मुश्रिकतन'*(ज़िना करने वाला ज़ानिया और मुश्रिका औरत के अलावा किसी से निकाह न करे) इस्लामी शरीअत ने जो तरीक़े एक मर्द को किसी औरत से फ़ायदा उठाने के मुक़र्रर कर दिये हैं उन के अलावा किसी और तरीक़े से यानी मुक़र्रर हुदूद को तोड़ कर यह संबंध क़ायम करना शरीअत की परिभाषा में ज़िना कहलाता है। और इस को इतना बुरा माना जाता है कि इस्लामी समाज ऐसे मर्द औरत को कुबूल करने से दूर रहता है। जो लोग शरीअत के क़ानून के पाबन्द न हों उन को शरीअत इस्लाम से ख़ारिज (निकला हुआ) समझती है और उन्हें वही हैसियत देती है जो एक मुश्रिक की हैसियत हो। अतः ज़ानिया के लिये कोई इद्दत नहीं, अगर उस को हमल रह गया है तो उसी के साथ निकाह हो सकता है जिस का

हमल है लेकिन अगर कोई दूसरा शख़्स उस से निकाह करे तो उसे मुबाशरत न करना चाहिये ताकि हमल में मिलावट न हो।

निकाह के बारे में मुस्तहब काम:- कफ़ाअत (बराबरी) और महर के बयानात में बहुत सी बातों का ज़िक्र किया जा चुका है जो आदमी की मआशी (आर्थिक) और मुआशरती (सामाजिक) हैसियत के लिहाज़ से निकाह का रिश्ता क़ायम करते वक़्त सामने रखना चाहिये। अख़लाक़ और दयानतदारी का तक़ाज़ा है कि शादी के मौक़ों पर फ़ुज़ूल ख़र्ची से बचा जाये क्योंकि हैसियत से ज़्यादा जो काम किया जायेगा वह परेशानी और बोझ बढ़ाने वाला होगा और निकाह की बरकतों को घटाने वाला होगा और ख़ुशी के बजाये दुख और ग़म में इज़ाफ़ा करेगा। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया 'सब से ज़्यादा मुबारक निकाह वह है जो ज़्यादा आसान हो' यानी माली परेशानी और बोझ न हो। आप ने फ़रमाया कि जिस लड़के के दीन व अख़लाक़ से संतुष्ट हो जाओ उस से अपनी लड़कियों का निकाह कर दो। अगर ऐसा न करोगे तो 'ज़मीन में बड़ी ख़राबी पैदा हो जायेगी' नबी ﷺ के इन फ़रमानों से यह बात स्पष्ट हो गई कि शादी विवाह की तक़रीब पार्टियों को बहुत ही सादा कम ख़र्च और अख़लाक़ की हद के अन्दर होना चाहिये। बहुत से रस्म व रिवाज और ग़ैर ज़रूरी जहेज़ जो सिर्फ़ माद्दी ख़्वाहिशों के पैदा किए हुए हैं दीन व अख़लाक़ से उन का कोई संबंध नहीं बल्कि तबाह करने वाले हैं।

ख़ित्बा (मंगनी):- यह बेहतर है कि जब रिश्ता तै किया जा रहा हो तो होने वाली बीवी को देख लिया जाये। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि चार ख़ूबियों में से किसी न किसी ख़ूबी की बिना पर एक मर्द किसी औरत से निकाह करता है, हुस्न व ख़ूबसूरती, माल व दौलत, ख़ानदानी शान व शौकत, दीन व अख़लाक़, फिर फ़रमाया 'तुम दीन वाली को हासिल कर के कामयाब हो जाओ ताकि भलाई से महरूम (वंचित) न रहो' हक़ीक़त

में यही चारों बातें देखी जाती हैं और देखना भी चाहिये। जिस औरत में ये चारों ख़ूबियाँ मौजूद हों तो बहुत ख़ूब है, मगर तरजीह उसी को देनी चाहिये जिस के अन्दर चौथी ख़ूबी मौजूद हो जो हमेशा बाक़ी रहने वाली है। दूसरी ख़ूबियाँ वक़्ती और जल्द ख़त्म होने वाली हैं। इस के अलावा वे ऐसी हैं कि अगर दीन व अख़लाक़ न हो तो वे अज़ाब का सबब हैं दुनिया में भी और आख़िरत में भी। आप ﷺ ने फ़रमाया 'पूरी दुनिया ऐसी दौलत है जिस की लज़्ज़त जल्द ख़त्म हो जाने वाली है, दुनिया की बेहतरीन दौलत नेक बीवी है' इस फ़रमान से दीनदार, नेक बीवी का दुनिया की बेहतरीन दौलत होना साबित है और सिर्फ़ हुस्न व ख़ूबसूरती और माल व दौलत वाली औरत को यह दर्जा हासिल नहीं, और न इसकी कोई ज़िम्मेदारी है कि हुस्न व जमाल कितने दिन बाक़ी रहेगा जबकि नेकी और सलाह कभी ख़त्म होने वाली चीज़े नहीं हैं बल्कि वे ज़मानत हैं ग़रीबी और इफ़लास को दूर करने की। अल्लाह का वादा है अगर वे निर्धन हैं तो अल्लाह तआला उन को धनी कर देगा' जिस औरत के साथ मंगनी हुई हो उसे देखना मर्द के लिये जाइज़ है जिस से सिर्फ़ निकाह की चाहत और दो तरफ़ से रज़ामंदी का इज़हार हो। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्ल ने फ़रमाया 'जब किसी औरत से मंगनी हो जाये तो वह मर्द औरत को इस लिये देख सकता है कि उस के अन्दर उस से निकाह करने की ख़्वाहिश पैदा हो' इस से ज़ाहिर हुआ कि जिस के साथ मंगनी न हुई हो उस औरत को सिर्फ़ शौक़िया देखना सही नहीं है।

शादी के सिलसिले में राय देनाः- लड़के या लड़की के बारे में सही मालूमात उन के ऐब व हुनर के बारे में करना और मशवरा लेना बेहतर है और जिस से मशवरा किया जाये उसे सही राय देना लाज़िम है। क्योंकि हदीस में है 'जिस से मशवरा किया जाता है वह अमानतदार होता है' ऐसी सूरत में वाक़ई ऐबों का ज़ाहिर कर देना ग़ीबत नहीं है।

किसी के पैग़ाम पर पैग़ाम देना जाइज़ नहीं है:- अगर किसी मुसलमान मर्द ने किसी मुसलमान औरत से शादी करने की बातचीत शुरू कर दी हो तो किसी दूसरे मुसलमान को उस जगह पैग़ाम नहीं देना चाहिये, जब तक उन की बातचीत ख़त्म न हो जाये। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है 'कोई मर्द अपने भाई के पैग़ाम पर उस वक़्त तक पैग़ाम न दे जब तक निकाह कर लेने या न करने की बात तै न हो जाये।'

मंगनी की रस्म अदा करने का जो दस्तूर है जैसे मिठाई, सब्ज़ी, फल और नक़द रूपया या ज़ेवर का लेना देना, इस की कोई असल नहीं है बल्कि यह फ़ुज़ूल ख़र्ची है जिस में कुछ रस्में मकरूहे तहरीमी हैं और कुछ मकरूहे तंज़ीही। इस लिये इन से बचे रहना चाहिये। औरत का पढ़ी लिखी होना बहुत अच्छी ख़ूबी है जबकि इस का मक़सद हालात का सुधार और बच्चों में अख़लाक़ी ख़ूबियाँ और संबंध का एहतिराम पैदा करना हो। दफ़्तर और सियासत की कुर्सी पर बिठाना और मआशी ज़िम्मेदारियाँ औरत पर डालना ग़ैर फ़ितरी काम हैं जिस का कभी कोई अच्छा नतीजा नहीं निकला। औरत के काम करने की हद घर के बाहर तक नहीं फैलनी चाहिये, हाँ अगर इल्म वाली औरत हो तो जिस तरह औरतें उस से इल्म (शिक्षा) हासिल कर सकती हैं मर्द भी शरई हुदूद की पाबन्दी करते हुये इल्म हासिल कर सकते हैं।

निकाह के लिये एलान:- रिश्ता तय हो जाने के बाद निकाह के लिये दिन, तारीख़, वक़्त और जगह का एलान कर देना चाहिये। निकाह के लिये एलान करना मुस्तहब है। ऐसे मौक़े पर ढोल या नक़्क़ारा बजा कर या झंडा ऊँचा कर के एलान किया जा सकता है। रात के वक़्त ज़्यादा रोशनी हासिल कर के भी यह मक़सद हासिल हो सकता है। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है 'निकाह एलान कर के करो और उस की बेहतरीन जगह मस्जिद है।'(तिर्मिज़ी)

मुस्तहब यह है कि निकाह जुमे के दिन हो, इसी तरह यह भी मुस्तहब है कि औरत ख़ुद निकाह में शरीक न हो बल्कि उस का वली हो जो आक़िल, अच्छे चरित्र वाला और क़रीबी रिश्तेदार हो और गवाह भी विश्वस्त और नेक हों। यह चीज़ भी मुस्तहब्बात में से है कि औरत ऐसे शख़्स को पसन्द करे जो दीन पर क़ायम हो, किसी फ़ासिक़ (दुर्जन) या बेदीन से शादी न करे। सुहूलत पसन्द, ख़ुश अख़लाक़ और दानी शख़्स को चुने। ऐसा मालदार जो बख़ील (कुंजूस) या लालची हो या ऐसा ग़रीब जो ख़र्च न चला सके दोनों चुने जाने के क़ाबिल नहीं हैं।

निकाह की जगहः- जैसा कि अभी हदीस का हवाला दिया जा चुका है, निकाह की बेहतरीन जगह मस्जिद है घर पर भी निकाह हो सकता है चाहे लड़की का घर हो या लड़के का, लड़की के घर बारात ले जाने की रस्म, सेहरे और जोड़े की रस्म, सोने की अंगूठी मर्द को पहनाने की रस्म, और बाजा बजाने की रस्म, ये तमाम रस्में मकरूह या हराम हैं इस लिये इन से बचना चाहिये।

निकाह के लिये बुलावाः- निकाह के वक़्त अपने क़रीबी रिश्तेदारों और दोस्तों वग़ैरा को बुला लेना पसंदीदा है लेकिन ज़रूरी नहीं है। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत फ़ातिमा के निकाह के मौक़े पर हज़रत अनस (र०) को भेजा कि जाओ अबू बक्र, उमर, उस्मान, तलहा, ज़ुबैर रज़िअल्लाहु अनहुम अजमईन को और अनसार के कुछ लोगों को बुला लाओ। चुनांचे इन्हीं के सामने आप ने हज़रत फ़ातिमा का निकाह हज़रत अली (र०) से कर दिया यह नमूना है हमारे लिये। इस में न तो बुलाने वाले को कुछ करना ज़रूरी होता है और न आने वालों को ज़हमत (परेशानी) होती है इस से ज़्यादा अगर कुछ किया जायेगा तो उस में ज़हमत भी होगी और उसवए हसना की पैरवी न हो पायेगी।

वली को लड़की से इजाज़त लेने का तरीक़ाः- बालिग़ा लड़की

का वली दो गवाहों के सामने इन शब्दों के साथ इजाज़त ले कि 'मैं तुम्हारा निकाह फ़लाँ लड़के से इतने मह्र मुअज्जल या मुवज्जल पर पढ़ाना चाहता हूँ 'तुम इजाज़त देती हो या तुम ने इजाज़त दी' अगर लड़के के बारे में लड़की को पहले नहीं बताया जा चुका है तो इजाज़त लेते वक़्त पूरा परिचय करा देना चाहिये ताकि वह अच्छी तरह समझ ले कि कौन और कैसा आदमी है। कुंवारी लड़की का चुप हो जाना, आँसू बहा देना या हाँ हूँ कर देना उस की इजाज़त समझी जायेगी। और अगर कुंवारी नहीं है यानी एक शादी बुलूग़(प्रौढ़ता) की हालत में पहले हो चुकी थी तो फिर उसे ज़ुबान से इक़रार करना होगा, यानी वह ज़ुबान से कहेगी कि मुझे मंज़ूर है या मैं इजाज़त देती हूँ। नाबालिग़ लड़की से वली को पूछने की ज़रूरत नहीं है, वली जहाँ बेहतर समझे वहाँ निकाह पढ़ा सकता है।

वकील के ज़रिए इजाज़त लेनाः- वली अगर किसी आदमी को वकील बना दे कि तुम इजाज़त ले कर निकाह पढ़ा दो तो वकील को भी दो गवाहों के सामने इन्हीं शब्दों के साथ इजाज़त लेना चाहिये जैसे ऊपर बयान हुए, और बालिग़ लड़की से साफ़ तौर से इजाज़त ले लेना चाहिये चुप रहना या रो देना काफ़ी नहीं है।

वली या वकील के साथ गवाहों को भी इजाज़त के शब्द सुनना चाहिये।

आमतौर पर पहले लड़की से इजाज़त ली जाती है और फिर लड़के से कुबूल करवाया जाता है लेकिन अगर कहीं इस का उल्टा मुआमला पेश आ जाये यानी लड़के से पहले इजाज़त ली जाये तो बालिग़ और समझदार लड़के से साफ़ शब्दों में इजाज़त लेने को माना जायेगा वर्ना नहीं हाँ अगर लड़का नाबालिग़ और ना समझ है तो वली की इजाज़त काफ़ी है।

कुबूल करने का तरीक़ाः- जिस तरह दो गवाहों के सामने इजाज़त ली गई है उसी तरह दो गवाहों की मौजूदगी में कुबूल भी होना

चाहिये। क़ुबूल का तरीक़ा यह है कि लड़के या लड़की से यह कहा जाये कि मैं फ़ुलाँ लड़के या लड़की का निकाह इतने महर पर तुम्हारे साथ कर रहा हूँ, तुम ने उसे क़ुबूल किया? जवाब में साफ़ साफ़ कहना चाहिये कि मैं ने क़ुबूल किया। तीन बार क़ुबूल करवाना ज़रूरी नहीं है, एक ही बार काफ़ी है।

महर् का ज़िक्र करते वक़्त मुअज्जल (तुरन्त अदा होने वाला) या मुवज्जल (बाद में अदा होने वाला) और सिक्के का नाम यानी इतने रूपये, इतने डालर, या इतने रियाल या इतना सोना या इतनी चाँदी का ज़िक्र कर देना चाहिये।

निकाह का ख़ुत्बा:- इजाज़त के बाद और क़ुबूल से पहले या निकाह होने से पहले ख़ुत्बा पढ़ना सुन्नत है। सब से बेहतर वह ख़ुत्बा है जो आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से हदीस की किताबों में रिवायत किया गया है:

(۱) اَلْحَمْدُ لِلّٰهِ نَحْمَدُهٗ وَنَسْتَعِيْنُ بِهٖ وَنَسْتَغْفِرُهٗ وَنَعُوْذُ بِاللّٰهِ مِنْ شُرُوْرِ اَنْفُسِنَا وَمِنْ سَيِّئَاتِ اَعْمَالِنَا مَنْ يَّهْدِى اللّٰهُ فَلَا مُضِلَّ لَهٗ وَمَنْ يُّضْلِلْ فَلَا هَادِىَ لَهٗ وَاَشْهَدُ اَنْ لَّآ اِلٰهَ اِلَّا اللّٰهُ وَحْدَهٗ لَاشَرِيْكَ لَهٗ وَاَشْهَدُ اَنَّ مُحَمَّدًا عَبْدُهٗ وَرَسُوْلُهٗ.

(۲) يٰاَيُّهَا النَّاسُ اتَّقُوْا رَبَّكُمُ الَّذِىْ خَلَقَكُمْ مِّنْ نَّفْسٍ وَّاحِدَةٍ وَّ خَلَقَ مِنْهَا زَوْجَهَا وَبَثَّ مِنْهُمَا رِجَالًا كَثِيْرًا وَّنِسَاءً وَاتَّقُوا اللّٰهَ الَّذِىْ تَسَاءَلُوْنَ بِهٖ وَالْاَرْحَامَ اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلَيْكُمْ رَقِيْبًا.

(۳) يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ حَقَّ تُقَاتِهٖ وَلَا تَمُوْتُنَّ اِلَّا وَاَنْتُمْ مُّسْلِمُوْنَ.

(۴) يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوا اتَّقُوا اللّٰهَ وَقُوْلُوْا قَوْلًا سَدِيْدًا يُّصْلِحْ لَكُمْ اَعْمَالَكُمْ وَيَغْفِرْ لَكُمْ ذُنُوْبَكُمْ وَمَنْ يُّطِعِ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهٗ فَقَدْ فَازَ فَوْزًا عَظِيْمًا.

(1) अल्ह़म्दु लिल्लाहि ऩहमदुहू, व नस्तअ़ीनु बिही, वनस्तग़फ़िरूहू, वनऊज़ु बिल्लाहि मिन शुरूरि अनफ़ुसिना, व मिन सय्यिआति अअ़मालिना, मय्यहदिल्लाहु फ़ला मुज़िल्ललहू, व मय्य युज़लिल फ़ला हादिया लहू, व अश्हदु अल ला इला-ह इल्लल्लाहु वहदहु लाशरीकलहु व अश्हदु अन्ना मुह़म्मदन अ़ब्दुहू वरसूलुहु।

(2) या अय्युहन्नासुत्तकू रब्बकुमुल्लज़ी ख़लक़कुम मिन नफ़सिवं वाहि़दतिनः वख़लक़ मिन्हा ज़ौजहा व बस्स मिन्हुमा रिजालन कसीरवं वनिसाआ वत्तकुल्लाहल्लज़ी तसाअलून बिही वलअर्ह़ाम इन्नल्लाहा काना अ़लैकुम रक़ीबा।

(3) या अय्यूहल्लज़ीना आमनूत्तकुल्लाहा,हक़्क़ा तुक़ातिही वला तमूतुन्ना इल्ला व अन्तुम मुस्लिमून।

(4) या अय्युहल्लज़ीना आमनुत्तकुल्लाह वक़ूलू क़ौलन सदीदंय युस्लिह़ लकुम अअ़मालकुम वयग़फ़िरलकुम ज़ुनूबकुम व मय्युतिइल्लाहा व रसूलहू फ़क़द फ़ाज़ा फ़ौज़न अ़ज़ीमा ।'

अनुवादः- सारी प्रशंसाएँ अल्लाह के लिये हैं तो हम उसकी प्रशंसा करते हैं और उसी से मदद चाहने वाले और बख़्शिश माँगने वाले हैं और अपने अन्दर की बुराईयों और बुरे कामों से उसकी पनाह माँगते हैं जिसे वह सीधे रास्ते पर डाल दे उसे गुमराह करने वाला कोई नहीं और जिसे गुमराह कर दे उसे हिदायत करने वाला कोई नहीं। मैं इस बात की गवाही देता हूँ कि अल्लाह के अलावा कोई इबादत के लायक़ नहीं है, वह यकता है जिस का कोई शरीक नहीं मैं इसकी भी गवाही देता हूँ कि मुहम्मद ﷺ उसके बन्दे और रसूल हैं।

(2) लोगो! अपने परवरदिगार से डरो जिसने तुम्हें एक जान से पैदा किया और उसी जान से उसका जोड़ा पैदा किया और उन दोनों से बहुत से मर्द और औरतें दुनिया में फैला दिये, तुम उस अल्लाह की नाफ़रमानी से डरो जिसे तुम अपनी ज़रूरते पूरी करने वाला जानते हो

और रिश्तेदारों के साथ बुरा व्यवहार करने से डरो। यक़ीन जानों कि अल्लाह तुम पर निगराँ है।

(3) ऐ ईमान वालो! अल्लाह से डरो जैसा कि उससे डरने का हक़ है और मरते दम तक इस्लाम पर क़ायम रहो।

(4) ऐ ईमान वालो! अल्लाह से डरते हुए ठीक बात कहा करो ताकि अल्लाह तुम्हारे काम बना दे और तुम्हारे गुनाह माफ़ कर दे और जिस शख़्स ने अल्लाह और उसके रसूल की इताअत (आज्ञापालन) की उसने बड़ी कामयाबी पाई।

इस खुत्बे के बाद नबी ﷺ के फ़रमान जो निकाह के बारे में हैं, पढ़ना भी निकाह की महफ़िल में बरकत व हिदायत का सबब है और उन फ़रमानों की इताअत करना ज़रूरी है:

اَلنِّكَاحُ مِنْ سُنَّتِىْ فَمَنْ رَغِبَ عَنْ سُنَّتِىْ فَلَيْسَ مِنِّى.

'अन्निकाहु मिन सुन्नती फ़मन रग़िबा अ़न सुन्नती फ़लैसा मिन्नी।'

अनुवादः-निकाह मेरी सुन्नत है जो इस से बचेगा वह मेरा उम्मती नहीं है।

اِنَّ اَعْظَمَ النِّكَاحِ بَرَكَةً اَيْسَرُهٗ مَئُوْنَةً.

'इन्ना अअज़मन्निकाहि बरकतन ऐसरुहू मऊनतन'।

अनुवादः- सब से बरकत वाला निकाह वह है जिसमें कम से कम परेशानी और कम से कम ख़र्च हो।

दुआः- निकाह हो जाने के तुरन्त बाद बैठे या खड़े हुए लोगों को दुआ माँगना चाहिये कि ऐ अल्लाह इन को बरकत दे, इन पर अपना फ़ज़्ल फ़रमा और भलाई के कामों में इत्तिहाद व इत्तिफ़ाक़ की तौफ़ीक़ अता कर। सुन्त यह है कि दोनों मियाँ बीवी का रिश्ता क़ायम हो जाने के बाद मुबारकबाद इस तरह दी जाये-

بَارَكَ اللّٰهُ لَكُمَا وَعَلَيْكُمَا وَجَمَعَ بَيْنَكُمَا فِيْ خَيْرٍ وَّعَافِيَةٍ.

"बारकल्लाहु लकुमा व अलैकुमा व जमआ बैनकुमा फ़ी ख़ैरिवं व आफ़ियतिन।"

अनुवादः- अल्लाह तआला तुम दोनों को मुबारक करे और तुम पर बरकत उतारे और दोनों ख़ैर व आफ़ियत से रहो।

वलीमे की दावतः- वलीमा उस खाने की दावत को कहते हैं जो निकाह की खुशी में की जाये, यह एक सुन्नते मुअक्किदा है। यह सुन्नत इस तरह पूरी की जाती है कि जिस मर्द का निकाह हुआ है वह अपनी हैसियत के मुताबिक़ रिश्तेदारों और दोस्तों को खिलाता पिलाता है। अगर जानवर ज़बह करने की हैसियत है तो सुन्नत यह है कि एक बकरी से कम न हो, जिस की हैसियत हो उस से यह कम से कम माँग है, जैसा कि आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत अब्दुल्लाह बिन औफ़ को फ़रमायाः-

'औलिम वलौ बिशातिन' (वलीमा करो चाहे एक बकरी ही से क्यों न हो)।

अगर हैसियत न हो तो अपनी हैसियत के मुताबिक़ जो भी हो सके काफ़ी है। अतः हज़रत अनस (र०) से रिवायत है कि आँहज़रत ﷺ ने हज़रत सफ़िया से निकाह के बाद यह दावते वलीमा दीः-

'उस में न तो रोटी थी और न गोश्त था बल्कि आप ﷺ ने चमड़े का दस्तरख़्वान बिछाने का हुक्म दिया उस पर खुजूरें और पनीर और मस्का रख दिया गया (जिसे लोगों ने खाया)।' (बुख़ारी व मुस्लिम)

लड़की वालों के यहाँ किसी तरह की दावत वग़ैरा का एहतिमाम ग़ैर मसनून है। यह बात अलग है कि लड़के की तरफ़ से निकाह में आये हुये लोगों की आवभगत बग़ैर किसी ज़हमत व तकलीफ़ के कर दी जाये, लेकिन इस को दस्तूर बना लेना सही नहीं है क्योंकि

नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और सहाबा किराम ने ऐसा नहीं किया है।

वलीमे की दावत तआमुल उर्स का नाम है 'उर्स' निकाह और ज़ुफ़ाफ़ (सुहागरात) के लिये बोला जाता है। यानी सुहागरात और निकाह की ख़ुशी में खाने की दावत करना, इस के अलावा दूसरी खुशी के मौक़ों पर भी खाने की दावतें दी जाती हैं उन के नाम दूसरे हैं जैसे दावते इमलाक, इमलाक का अर्थ है ज़ौजियत में देना, यह निकाह से पहले बीवी बनने वाली की तरफ़ से दी जाती है। 'दावते खुस' यह जन्म की ख़ुशी में दी जाती है। 'दावते अक़ीक़ा' मूंडन की तक़रीब में खाना खिलाने को कहते हैं। ख़त्ना की तक़रीब में जो दावत होती है उस को एअज़ार और बच्चे के कुरआन ख़त्म करने की तक़रीब में जो दावत हो उस को हिज़ाक़ कहते हैं। यह शब्द हिज़्क़ से बना है जिसका अर्थ इल्मी महारत है। सफ़र से वापस आने की तक़रीब में जो दावत होती है उस को नक़ीआ कहते हैं, यह शब्द नक़आ से बना है जिस का अर्थ गर्द व गुबार है। किसी मकान का निर्माण करने की ख़ुशी में जो दावत दी जाती है उसे वकीरह कहते हैं यह वकर से बना है जिस का अर्थ है पंछी का अपने घोसले में आना। इस के अलावा वह खाना जो ग़म के मौक़े पर दिया जाये उस को वज़ीमा कहते हैं यानी मय्यत का खाना। यह पड़ोसी या किसी रिश्तेदार की तरफ़ से दिया जाता है।

इन तमाम दावतों में सुन्नत सिर्फ़ दावते वलीमा है। बाक़ी रहीं दूसरी ज़ियाफ़तें तो वे सिर्फ़ जाइज़ हैं इस शर्त पर कि उस में कोई दीनी बुराई न पैदा की जाये। वज़ीमा सिर्फ़ ग़रीबों के लिये हो तो सवाब का सबब है, जबकि वारिसों से माल न लिया गया हो। हनफ़ी मसलक के लिहाज़ से यह तमाम बातें लिखी गई हैं। इमाम हंबल (रह०) के नज़दीक ग़म के मौक़े पर खाने की दावत मकरूह है। ख़त्ने के सिलसिले में एक राय यह है कि यह सुन्नत है।

दावते वलीमा का वक़्तः- आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान अबूदाऊद और इब्ने माजा वग़ैरा में इस तरह रिवायत किया गया हैः

'वलीमा पहले दिन खिलाना हक़ को पूरा करना है, दूसरे दिन का वलीमा नेकी है, तीसरे दिन दिखावा है।'

फ़ुक़हा के नज़दीक वलीमे का वक़्त निकाह होने के साथ ही शुरू हो जाता है। नबी ﷺ के फ़रमान के मुताबिक़ बीवी को घर लाने के बाद पहले दिन वलीमा सब से बेहतर है, दूसरे दिन भी कोई हर्ज नहीं। बहतर यह है कि वलीमा की दावत एक बार हो, दुबारा भी दावत करना सही है इस शर्त पर कि दूसरी बार जो लोग बुलाये जायें वे पहली बार न बुलाये गये हों।

वलीमे की दावत में लोगों को बुलानाः- वलीमे की दावत में बड़े लोगों को बुलाना और ग़रीब रिश्तेदारों को न बुलाना बहुत ही नापसंदीदा काम है। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान हैः

'सब से नापसंदीदा खाना उस वलीमे का खाना है जिस में मालदार लोग बुलाये जायें और ग़रीब व मोहताज लोग छोड़ दिये जायें।'

फिर आप ने एक दूसरी हदीस में फ़रमाया

'सब से बुरा वलीमे का खाना वह है जिसमें उन लोगों को रोका जाये जो आना चाहें और उन्हें बुलाया जाये जो आने से रुकते हों।'

वलीमे की दावत क़ुबूल करनाः- दावत का क़ुबूल करना सुन्नत है और वलीमे की दावत का क़ुबूल करना वाजिब है। दूसरी दावतों का क़ुबूल करना मुस्तहब या मुबाह है जैसे दोस्ताना दावत जिसे मादुबा कहते हैं। अक़ीक़ह, नक़ीआ, वकीरह, ख़ुर्स या एअज़ार की दावतें दी

जायें तो उन का कुबूल करना मुबाह है यानी इंकार से बेहतर है। वह दावत जो फ़ख़्र ज़ाहिर करने के लिये या नाम पैदा करने के लिये दी जाये उस को कुबूल करना मकरूह है और हराम दावत वह है जो किसी ऐसे शख़्स को दी जाये जिस को तोहफ़ा कुबूल करना हराम है जैसे दो शख़्स मुक़दमा ले कर किसी के पास इंसाफ़ के लिये आयें तो उन में से कोई एक शख़्स इंसाफ़ करने वाले को दावत दे।

दावत कुबूल करने की शर्तें:- पहली शर्त यह है कि जिस को दावत दी गई हो वह तैशुदा शख़्स हो। अगर किसी ने आम दावत दे दी कि लोगो खाना खाने को चलो या किसी ने अपने किसी आदमी से कहा कि जो मिल जाये उसे खाने को बुला लाओ तो ऐसी दावत का कुबूल करना किसी पर वाजिब नहीं है। दूसरी शर्त यह है कि दावत करने वाला किसी बुराई को करने वाला न हो। बुरा काम करने वाले, ज़ालिम और हराम की कमाई करने वाले की दावत कुबूल करना मसनून नहीं है। तीसरी शर्त यह है कि वलीमे की दावत वग़ैरा में कोई काम शरीअत के ख़िलाफ़ न हो रहा हो, जैसे शराब की मौजूदगी या और कोई ग़ैर इस्लामी काम जैसे नाच गाना और नामुनासिब गाना, बाजा, रिकार्डिंग वग़ैरा, ऐसी सूरत में तुरन्त दावत से उठ जाना चाहिये, और अगर पहले से मालूम हो तो जाना ही नहीं चाहिए। चौथी शर्त यह है कि जिस को दावत दी गई है वह दावत में शरीक होने से मजबूर न हो जैसे मरीज़ या रोज़ेदार न हो। नफ़्ल रोज़ेदार को अगर वलीमे में बुलाया गया हो तो वह वहाँ जाये और दावत करने वाले को बताए कि वह रोज़ेदार है और फिर उस के हक़ में दुआ-ए-ख़ैर कर के वापस आ जाये।

अगर दो जगह से एक ही वक़्त में दावत आ जाये तो जिस की दावत पहले आई हो उस के यहाँ जाना चाहिये।

हज़रत अली (र०) फ़रमाते हैं कि एक बार मैंने नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को खाने की दावत दी। आप ﷺ घर के अंदर

आये तो देखा कि घर के पर्दे पर कुछ तसवीरें हैं, आप उसी वक़्त वापस चले गये और खाना नहीं खाया।

तसवीर के अहकामः- वलीमे की दावत कुबूल करने के सिलसिले में तसवीर का मसला भी आ जाता है। सवाल यह है कि अगर दावत में जाने वाले को यह मालूम हो कि जिस जगह दावत में जाना है वहाँ तसवीर भी है तो दावत कुबूल करने का हुक्म बाक़ी रहेगा या नहीं रहेगा? जवाब यह है कि अगर वहाँ पर ऐसी तसवीरें हों जिन का देखना जाइज़ हैं तो दावत कुबूल करने का हुक्म बाक़ी रहेगा, इस लिये कि बेजान चीज़ों की तसवीरें जैसे पेड़, मस्जिद व मीनार चाँद और तारे वग़ैरा की तसवीरें देखना जाइज़ हैं। हाँ जानदार, अक़्ल वाली या ग़ैर अक़्ल वाली चीज़ों की तसवीरें शरई एतबार से हराम हैं अगरचे वे किसी ग़लत मक़सद के लिये बनाई गई हों। मूर्तियाँ जो अल्लाह के अलावा दूसरे माबूदों की पूजा के लिये बनाई जाती हैं इन को बिल्कुल हराम ठहराया गया है इन मूर्तियों की तसवीरें या ख़्वाहिशात को उभारने वाली तसवीरें रखना, बनाना, देखना नाजाइज़ है जिस दावत के मौक़े पर ऐसी मूर्तियाँ या तसवीरें हों वहाँ दावत कुबूल करने का हुक्म ख़त्म हो जायेगा। हाँ अगर इन तसवीरों का मक़सद शिक्षा देना हो तो जाइज़ है जैसे जिस्म के अंगों के बारे में जानकारी हासिल करना या दूसरों को सिखाना या लड़कियों को गुड़िया खेलने की इजाज़त जिस का मक़सद बच्चों के अन्दर सूझ बूझ पैदा करना हो। ये तमाम मक़ासिद जाइज़ होने के लिये काफ़ी हैं। अगर फ़र्श पर, बिस्तर पर और तकियों पर तसवीर बनी हो तो भी जाइज़ है क्योंकि इस तरह की तसवीर का इस्तेमाल उस की तौहीन है, और शरीअते इस्लामी का मक़सद सूरत बनाने या बुतों की पूजा करने की मुख़ालिफ़त और उस के निशान को मिटाना है। इस लिये हर वह चीज जो बुतों की पूजा करने के क़रीब हो या उस का ज़िक्र बाक़ी रखे उस के अलावा सब तरह की तसवीर जाइज़ है। ऐसी तसवीर भी जाइज़ है जिस में कोई ऐसा अंग कटा हुआ दिखाया

गया हो जिस के बग़ैर ज़िन्दगी मुम्किन नहीं। फिर भी अगर उसे इज़्ज़त व सम्मान के साथ रखा गया हो या तमाम अंग सही सालिम हों तो वह हलाल न होगी।

गाने के मसाइलः- वलीमे की दावत से संबंधित यह सवाल भी उठाया जाता है कि कुछ घरों में ऐसे मौक़े पर गाने और तमाशे का भी इन्तिज़ाम होता है तो क्या ऐसी सूरत में दावत क़ुबूल करने का हुक्म ख़त्म हो जाता है।

जवाब यह है कि दावत क़ुबूल करने का हुक्म ख़त्म नहीं होता जब तक वह गाना और खेल तमाशा ऐसा न हो जो शरीअत में जाइज़ नहीं है अगर मामूली खेल तमाशा और जाइज़ गाना हो तो उस से वलीमे के जाइज़ होने में कोई चीज़ नहीं रोकती। शरीअते इस्लामिया में रवादारी के साथ अख़्लाक़ को संवारना और आदात को बुरी ख़्वाहिशात की गंदगी और गुनाह से बचाने का ख़ास लिहाज़ रखा गया है। इस लिये इन्सान के हर ऐसे काम को जिस में ख़राबी का शक हो हराम क़रार दिया गया है चाहे वह ज़ाहिर में अच्छा मालूम होता हो, अतः गाना इस अर्थ में कि वह सुरीली आवाज़ के साथ आवाज़ को दुहराने का नाम है जाइज़ है और उस में कोई बुराई नहीं, लेकिन इस के साथ कुछ और बातें भी शामिल हो कर उसे मकरूह बना देती हैं। यही हाल खेल तमाशे का है चुनांचे ऐसे गाने से मना किया गया है जिन में किसी औरत नौजवान लड़के के चेहरे बालों, आंखों और छुपे हुए जिस्म के अंगों की अच्छाई व बुराई की जाये ताकि सुनने वाले फ़ितने में पड़ें। इसी तरह ऐसे गानों से भी रोका गया है जिस में शराब पीने की तरफ़ उभारा गया हो या वक़्त बरबाद करने का सबब हो और ज़रूरी कामों के करने में रूकावट पैदा करे, लेकिन अगर गाने में ऐसी कोई बुराई न हो तो सही है। इस लिये ऐसा गाना जो ख़्वाहिशे नफ़्सानी को भड़काने वाला हो हलाल नहीं है। हाँ अगर किसी मर जाने वाली औरत की बेहतरीन ख़ूबियों को बयान किया जाये तो कोई हर्ज नहीं। इसी तरह किसी नवजवान

की बहादुरी को बयान किया जाये तो भी सही है क्योंकि इस सम्मान का हासिल करना हर इन्सान के बस में नहीं होता। वह गाना भी हलाल नहीं जिस में शराब की तारीफ़ और उस के पीने की तरफ़ लोगों को उभारा गया हो। ये बातें शरई एतबार से हराम हैं। यही हुक्म उस गाने का भी है जिनमें किसी इन्सान का मज़ाक़ उड़ाया गया हो या उसकी बुराई की गई हो चाहे वह मुसलमान हो या ज़िम्मी। ऐसा करना इस्लाम में हराम है, ऐसा गाना और उसका सुनना जाइज़ नहीं। हाँ ऐसे गाने जिस में हिकमत व नसीहत हो या वे गाने जो गुल व गुंचा, सब्ज़ा व रंग की दरियाओं और झरनों के बहने की और ऐसे ही कुदरत के दृश्य की तारीफ़ हो या जिस में किसी ख़ास शख़्स के हुस्न व ख़ूबसूरती की तारीफ़ न हो और किसी हराम काम में फंस जाने का डर न हो जाइज़ है और उन में कोई हर्ज नहीं है।

ऐसा खेल तमाशा जिस में गंदी और झूठी बातें हों या औरत के जिस्म के अंगों की नुमाइश हो जिन्हें दिखाने से शरीअत ने मना किया है या लोगों के साथ हंसी मज़ाक़ हो और नामहरम मर्दों के सामने औरत का नाचना गाना हो ये सब बातें हराम हैं ऐसे वलीमे में न तो शरीक होना हलाल है और न वलीमे की दावत का कुबूल करना जाइज़ है।

यह जो कुछ बयान किया गया वह दीन के तक़ाज़ों के मुताबिक़ और उलमा की लिखी हुई बातों से लिया गया है।

इमाम ग़ज़ाली अपनी किताब 'एहयाउ उलूमुद्दीन' में फ़रमाते हैं कि नुसूस यानी दीनी तसरीहात से साबित है कि गाना, नाचना, दफ़ बजाना, और ख़ुशी में ढाल और नेज़े के साथ ज़ंगियों और हबशियों का नाच देखना जाइज़ है। यह हुक्म ईद के दिन के लिये है क्योंकि यह ख़ुशी का मौक़ा होता है। इस में शादी की पार्टी, वलीमा, अक़ीक़ा, ख़तना और सफ़र से वापसी और ऐसी तमाम ख़ुशियाँ आ गई जिन में शरअन ख़ुशी का इज़हार करना जाइज़ है। अतः अपने भाइयों से मुलाक़ात करना, उन को देखना और एक जगह मिल बैठ

कर खाना और बात चीत कर के ख़ुश होना जाइज़ है और यही मौक़े हैं जिन में आम तौर से गाना बजाना होता है।

इमाम ग़ज़ाली (रह०) की यह राय उस गाने के बारे में है जिस में कोई ख़राबी या शरीअत के ख़िलाफ़ बात या दीनी एतबार से घटिया क़िस्म का विषय न हो, क्योंकि ऐसे गाने जिन में ऐसी कमियाँ पाई जायें उन के बारे में फ़रमाया है कि वे हराम हैं। जिस नाच को उन्हों ने जाइज़ कहा है उस से मुराद मर्दों की वे हरकतें हैं जो ख़ुशी को ज़ाहिर करने के लिये करते हैं, उनमें न किसी नफ़्सानी ख़्वाहिश का तसव्वुर होता है और जिन के सामने वे अपना यह फ़न पेश करते हैं वे भी बुरे ख़यालात से पाक होते हैं, लेकिन औरत का नाच और वह भी नामहरम मर्दों के सामने सब के नज़दीक हराम है, क्योंकि इस में ख़्वाहिशात को उभारने वाली चीज़ होती है और फ़ितना पैदा होता है और शर्म व हया के ख़िलाफ़ है। यही ख़राबी बेदाढ़ी मूंछ के लड़कों के नाच वग़ैरा में है जबकि यह ऐसे लोगों के सामने किया जाये जिन की नफ़्सानी ख़्वाहिशात भड़कती हों।

इमाम ग़ज़ाली ने नाच को इस लिये जाइज़ क़रार दिया है क्योंकि हबशी लोग एक बार ईद के दिन मस्जिदे नबवी के सहन में नाच रहे थे और वहाँ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम भी थे और उस नाच को हज़रत आयशा (र०) भी देख रही थीं और आप ख़ुद उन पर आड़ किये हुये थे। ज़ाहिर है इस से कोई बुरा ख़याल नहीं पैदा होता, वह नाच जिस में बुरे ख़यालात न पैदा हों जाइज़ है। एहयाउल उलूम में इमाम शाफ़ई (रह०) का यह क़ौल भी है कि 'मैं ने हिजाज़ के उलमा में से कोई आलिम ऐसा नहीं देखा जिस ने गाने को मकरूह बताया हो, उन गानों के अलावा जिन में सूरत की ख़ूबसूरती वग़ैरा का बयान हो, 'अतः हुदी की आवाज़, आसार व इमारत का ज़िक्र और अशआर का सुरीली आवाज़ के साथ पढ़ना जाइज़ है।

हनफ़ी मसलक में नाजाइज़ गाना वह है जिस में नाजाइज़ बेशर्मी वाले विषय हों और शराब पीने को उभारा गया हो या मयकदों की तारीफ़ या किसी मुसलमान या ग़ैर मुस्लिम शहरी की बुराई बयान की गई हो लेकिन अगर ऐसे गाने से मुराद किसी बात की दलील पेश करनी हो या खुशबयानी का ज़ाहिर करना हो तो हराम न होगा। इसी तरह अगर गाना ख़ूबसूरती के विषय पर हो, चश्मों, झरनों, पहाड़ों, नदी नालों, बादलों की तसवीर खींची गई हो तो ऐसे गानों से रोकने की कोई वजह नहीं है। (फ़तहुल क़दीर)

मालिकी फ़ुक़हा निकाह के एलान के लिये दफ़ और ढोल वग़ैरा का इस्तेमाल जिस में घुंगरू न हों जाइज़ कहते हैं, लेकिन गाना वही जाइज़ है जो अन्सारी लड़कियों के इस गाने की तरह हो-

اَتَيْنَاكُمْ اَتَيْنَاكُمْ فَحَيُّوْنَا نُحَيِّيْكُمْ
وَلَوْلَا الْحَبَّةُ السَّمْرَاءُ لَمْ تَحْلُلْ بِوَادِيْكُمْ

अतैनाकुम अतैनाकुम फ़हय्यूना नुहिय्यीकुम
वलौ लल हब्बतुस-समराओ लम तहलुल बिवादीकुम

अनुवादः- हम तुम्हारे पास आये, हम तुम्हारे पास आये। तुम हमें मुबारकबाद दो हम तुम्हें मुबारकबाद देते हैं। अगर गंदुमी रंग के दाने न होते तो हम तुम्हारी वादी में न आते।

गाने को अच्छी लय और स्वर के साथ हंबली फ़ुक़हा जाइज़ क़रार देते हैं। उन का कहना है कि क़ुरआन को पढ़ने में स्वर और अच्छी आवाज़ के साथ पढ़ना बेहतर है।

बाल को रंगने यानी ख़िज़ाब का बयानः- ख़िज़ाब के बारे में हनफ़ी फ़ुक़हा का मसलक यह है कि मर्द को दाढ़ी और सिर में ख़िज़ाब लगाना मुस्तहब है लेकिन हाथ और पैर का रंगना मकरूह है क्योंकि ऐसा करना अपने आप को औरतों की तरह बनाना है। इसी तरह बग़ैर किसी शरई मक़सद के बालों को काले रंग से रंगना

मकरूह है जैसे दुश्मन पर रोब जमाने के लिये हो तो मुबाह है लेकिन औरतों के सामने अपने आप को बच्चा बना कर पेश करना मक़सद हो तो इस में दो बातें हैं एक यह कि ऐसा करना मकरूह है, दूसरा क़ौल इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) का यह है कि जिस तरह मर्द यह पसंद करता है कि उस की बीवी उस के लिये सिंगार करे ऐसे ही उस की बीवी अपने शौहर के लिये इस बात को चाहती हो तो मर्द के लिये ख़िज़ाब करना जाइज़ है।

ज़िफ़ाफ़ सुन्नत की रोशनी में:- निकाह हो जाने के बाद पहली रात को औरतें लड़की को उस के शौहर के कमरे तक पहुंचाती हैं, यह तरीक़ा नबी ﷺ के ज़माने में भी था। जब दोनों मियाँ बीवी पहली बार इकटठा हों तो सब से पहले शौहर को चाहिये कि अपनी बीवी का माथा पकड़ कर यह दुआ पढ़े -

اَللّٰهُمَّ اِنِّیۡ اَسْئَلُکَ مِنۡ خَيۡرِهَا وَخَيۡرِمَا جَبَلۡتَهَا عَلَيۡهِ وَاَعُوۡذُبِکَ
مِنۡ شَرِّهَا وَشَرِّمَاجَبَلۡتَهَا عَلَيۡهِ. (ابن ماجه)

'अल्लाहुम्मा इन्नी असअलुका मिन ख़ौरिहा वख़ौरि मा जबलतहा अलैहि वअऊज़ु बिका मिन शर्रिहा व शर्रि मा जबलतहा अलैहि।' (इब्नेमाजा)

अनुवाद:- ऐ अल्लाह मैं तुझ से इस की भलाई और वह भलाई चाहता हूँ जो तूने इसकी फ़ितरत मे रखी है और मैं तुझ से पनाह चाहता हूँ इस की बुराइ और उस बुराई से जो इस की फ़ितरत में है।

फिर संभोग करते वक़्त यह दुआ पढ़े:-

بِسۡمِ اللّٰهِ اَللّٰهُمَّ جَنِّبۡنَا الشَّيۡطَانَ وَجَنِّبِ الشَّيۡطَانَ مَارَزَقۡتَنَا.

'बिस्मिल्लाहि अल्लाहुम्मा जन्निबनश्शैताना व जन्निबिश्शैताना मा रज़क़्तना।'

अनुवाद:- ऐ अल्लाह हम को शैतान से सुरक्षित रख और जो सन्तान तू दे उस से शैतान को दूर रख।

इस मौक़े पर जो दुआ बताई गई और जो हिदायतें दी गई हैं उन का मक़सद इन्सान को हैवानी पस्ती से निकाल कर ऊपर उठाना है ताकि वह इन्सानियत से नीचे न गिरने पाये। जहाँ तक जिन्सी जज़्बे का संबंध है इन्सान और हैवान में यह समान रूप से मौजूद है लेकिन इस जज़्बे की तसकीन की राहें अलग अलग हैं। कोई इन्सान हैवान की तरह मकान व ज़मान और शर्म व हया की क़ैद से आज़ाद हो कर अपने इस जज़्बे की तसकीन करना पसंद नहीं करता। इब्ने माजा ने अपनी सही में रिवायत की है कि आँहज़रत ﷺ ने फ़रमाया 'जब कोई शख़्स अपने नफ़्स को तसकीन देने के लिये अपनी बीवी के पास जाये तो उसे बिल्कुल नंगा न होना चाहिये जैसे बकरी और बकरे होते हैं। आप ने फ़रमाया फ़रिश्ते दो वक़्त आदमी से जुदा होते हैं (1) बैतुल-ख़ला में जाते वक़्त (2) मुबाशरत (संभोग) के वक़्त, तो तुम उन से शर्माया करो और उन का लिहाज़ किया करो।

शौहर और बीवी के हुकूक़ और फ़राइज़ः- शरीअते इस्लामिया ने निकाह के रिश्ते को क़ायम करने के लिये जो हिदायतें दी हैं उन का मक़सद उस तक़द्दुस (पवित्रता) और पाकीज़गी को यक़ीनी बनाना है जिस पर एक अच्छे ख़ानदान की बुनियाद क़ायम होना चाहिये। इस रिश्ते को खुशगवार बनाने और क़ायम रखने के लिये शौहर और बीवी के हुकूक़ व फ़राइज़ और उन के काम करने की हद (सीमा) और इख़्तियार भी तै कर दिये हैं। क्योंकि यही ऐसा संबंध है जो एक मर्द और एक औरत को इतना क़रीब ले आता है जैसे जिस्म और उस जिस्म का वस्त्र (जो एक दूसरे के लिये आवश्यक हैं) इस संबंध को खुशगवार बनाने और बाक़ी रखने के लिये दोनों ज़िम्मेदार बनाये गये हैं ताकि यह रिश्ता न टूटने पाये और न इस में कमज़ोरी आये, फिर चूंकि एक मर्द और एक औरत मिल कर एक ख़ानदान की बुनियाद डालते हैं और समाज वजूद में आता है जिस का प्रबंध क़ायम रखने के लिये एक सरबराह (संचालक)

का होना ज़रूरी है जो ख़ानदान का ज़िम्मेदार और निगराँ हो और तितर बितर होने और बदनज़्मी से सुरक्षित रख सके, तो यह उहदा सिर्फ़ मर्द को अता किया गया है क्योंकि औरत और मर्द की मख़सूस फ़ितरत को सामने रखते हुए मर्द ही में क़व्वाम (मुखिया, संरक्षक) बनने की योग्यता है। क़ुरआन ने इस फ़ितरी योग्यता की तरफ़ इशारा करते हुये फ़रमाया है:-

اَلرِّجَالُ قَوّٰمُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ.

(نساء:٣٤)

'अर्रिजालु क़व्वामूना अलन्निसाइ बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बअज़हुम अला बअज़िन।'

(सूर: निसा 34)

अनुवाद:- मर्दों को औरतो पर क़व्वाम इस लिये बनाया गया है कि फ़ितरी तौर पर अल्लाह ने एक को दूसरे पर फ़ज़ीलत दी है।

क़व्वाम का अर्थ:- संरक्षक और देख भाल करने वाला, ज़िम्मेदार और क़ायम रखने वाला, ये क़व्वाम के अर्थ हैं। मियाँ और बीवी के बुनियादी हुकूक़ बराबर हैं मगर मर्द को क़व्वाम का उहदा उस की मख़सूस फ़ितरत के सबब दिया गया है क्योंकि औरत फ़ितरतन इस ज़िम्मेदारी को उस तरह नहीं पूरा कर सकती जिस तरह मर्द पूरा कर सकता है। यह मतलब है 'बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बअज़हुम अला बअज़' का। इस प्रमुखता का ज़िक्र करने के बाद यह भी ज़ाहिर कर दिया गया है कि औरतों के हुकूक़ मर्दों पर उसी तरह हैं जिस तरह उन पर मर्दों के हुकूक़ हैं।

وَلَهُنَّ مِثْلُ الَّذِىْ عَلَيْهِنَّ بِالْمَعْرُوْفِ وَلِلرِّجَالِ عَلَيْهِنَّ دَرَجَةٌ ط

(بقره:٢٢٨)

'व लहुन्ना मिस्लुल्लज़ी अलैहिन्ना बिल मअरूफ़ि व लिर्रिजालि अलैहिन्ना दरजतुन।'

अनुवादः–औरतों का हक़ मर्दो पर उसी तरह है जिस तरह उन का हक़ औरतों पर और मर्दो को कुछ बरतरी हासिल है।

औरतों के हुकूक़ जिन का पूरा करना मर्दों पर वाजिब है:- क़व्वाम और ज़िम्मेदार होने की हैसियत से मर्द पर नीचे लिखे गए फ़राइज़ लागू किये गये हैं:-

(1) **महर:-** इस को पहले विस्तार के साथ बयान किया जा चुका है, यह ऐसा हक़ है कि अगर निकाह के वक़्त इस का ज़िक्र न आये तब भी शरीअत ने मर्द पर इस की अदायगी ज़रूरी क़रार दी है। आमतौर पर निकाह करते वक़्त महर का निर्धारण कर दिया जाता है जो मर्द को निकाह के वक़्त दे देना चाहिये लेकिन अगर उस वक़्त न दे सकता हो तो बीवी से मुहलत ले लेना ज़रूरी है वर्ना औरत को यह हक़ होगा कि शौहर को अपने क़रीब आने से रोक दे। इस हक़ के अदा होने की दो ही सूरतें हैं या तो मर्द उसे अदा कर दे या औरत अपनी ख़्वाहिश से या मर्द के अच्छे व्यवहार से प्रभावित हो कर उस को माफ़ कर दे। अगर औरत पर महर को माफ़ करने के लिये दबाव डाला गया तो अख़लाक़न व क़ानूनी तौर पर इस माफ़ी का कोई एतबार नहीं है।

(2) **नफ़्क़ा:-** ज़िन्दगी गुज़ारने के लिये सामान का इन्तिज़ाम करने का हक़। नफ़्क़ा उन चीज़ों को कहते हैं जो ख़र्च की जाती हैं, यानी खाने पहनने और दूसरी ज़रूरतों को पूरा करने के लिये मर्द को ख़र्च उठाना जो उस पर क़व्वाम होने की वजह से फ़र्ज़ है। नफ़्क़े के बारे में तफ़सील आगे आ रही है।

(3) **सुकना:-** मकान जिस में सुकून से रहा जाये। बीवी का यह हक़ पूरा करना शौहर पर वाजिब है ताकि वह आराम से ज़िन्दगी गुज़ार सके, इस के बारे में भी बयान आगे आ रहा है।

(4) **अच्छा व्यवहार:-** खाने कपड़े और मकान की ज़रूरत पूरी

करने के बाद बीवी का अपने शौहर पर हक़ है कि वह अच्छे व्यवहार की उस से माँग करे और मर्द पर वाजिब है कि वह अच्छा व्यवहार उस के साथ करे। इस बारे में शरीअत की हिदायतें आगे बयान की जायेंगी।

(5) **ज़ुल्म और तकलीफ़ पहुंचाने से बचनाः-** यानी बीवी का यह हक़ है कि उस का शौहर उस के हुकूक़ इस तरह पूरा करे जो न्याय और इंसाफ़ पर आधारित हो और तकलीफ़ का सबब न बनें। इस सिलसिले में जो मसाइल पेश आ सकते हैं उन को आगे बयान किया जायेगा।

नफ़्क़ा कितना होः- कुरआन मजीद में नफ़्क़े का ज़िक्र करते हुए उस की मात्रा यह बताई गई है कि शौहर की ताक़त से ज़्यादा न हो सूरः बक़र में हैः-

عَلَى الْمُوْسِعِ قَدَرُهٗ وَعَلَى الْمُقْتِرِ قَدَرُهٗ. (بقرہ:۲۳۶)

'अललमुसिइ क़दरूहू व अललमुक़तिरि क़दरूहू' (सूरः बक़रः 236)

अनुवादः- खुशहाल पर उस की ताक़त के मुताबिक़ और तंगहाल पर उस की ताक़त के मुताबिक़ नफ़्क़ा वाजिब है।

सूरः तलाक़ में फ़रमाया गयाः

لِيُنْفِقْ ذُوْسَعَةٍ مِّنْ سَعَتِهٖ ط وَمَنْ قُدِرَ عَلَيْهِ رِزْقُهٗ فَلْيُنْفِقْ مِمَّا اٰتٰهُ اللّٰهُ ط (سورہ طلاق:۷)

'लियुनफ़िक़ ज़ू सअतिम मिन सअतिही, वमन क़ुदिरा अलैहि रिज़्क़ुहू फ़लयुनफ़िक़ मिम्मा आताहुल्लाहु' (सूरः तलाक़:7)

अनुवादः- ताक़त वाले को अपने बीवी बच्चों पर अपनी ताक़त भर ख़र्च करना चाहिये और जिस को नपा तुला मिले उसे जो कुछ अल्लाह ने दिया है उस में से ख़र्च करना चाहिये (यानी कंजूसी न करना चाहिये)।

मतलब यह है कि औरत की ज़रूरतें उस की हैसियत और मर्ज़ी के मुताबिक़ पूरी करने की कोशिश उस के शौहर को करना चाहिये जहाँ तक उस की ताक़त इजाज़त दे। हदीस में है कि एक सहाबी ने रसूल अल्लाह ﷺ से उन हुक़ूक़ के बारे में पूछा जो बीवियों के शौहरों पर हैं तो आप ﷺ ने फ़रमायाः

اَنْ تُطْعِمَهَا اِذَا طَعِمْتَ وَ تَكْسُوْهَا اِذَا كْتَسَيْتَ وَلَا تَضْرِبِ الْوَجْهَ وَلَا تَقْبَحْ وَلَا تَهْجَرْ اِلَّا فِى الْبَيْتِ.

'अन तुतइमहा इज़ा तअमता व तकसूहा इज़्कतसैता वला तज़्रिबिल वजहा वला तक़्बह वला तहजर इल्ला फ़िलबैति'

अनुवादः- जब तुम खाओ तो उन्हें भी खिलाओ, जब तुम पहनो तो उन्हें भी पहनाओ, चेहरे पर न मारो, न बुरे नाम रखो, और अगर ना पसंद हो तो अपने से अलग कर दो मगर घर के अन्दर।

हज्जतुल विदा के मौक़े पर जो अहम बुनियादी बातें आप ने फ़रमाई हैं उन में यह भी है कि 'व इन्ना लहुन्ना अलैकुम नफ़क़तहुन्ना व किस्वतुहुन्ना बिलमअरूफ़ि' उनके खाने पीने और उनके पहनने की ज़िम्मेदारी तुम्हारे ऊपर है दस्तूर के मुताबिक़ फ़ुक़हा ने क़ुरआन व हदीस के मुताबिक़ जो तय फ़रमाया है वह यह है-

(1) शौहर अच्छी तरीक़े से ज़िन्दगी गुज़ारता है और आमदनी अच्छी है और बीवी का घराना भी उसी हैसियत का है तो नफ़क़ा भी उसी हिसाब से देना पड़ेगा। यह नहीं हो सकता कि अपने घर वह अच्छा खाती और अच्छा पहनती हो और शौहर उस के हिसाब से खिला पहना सकता हो फिर भी वह बीवी को घटिया खिलाये पहनाये। अगर वह ऐसा करता है तो औरत क़ानूनी तौर पर उस से अपने पहनने और खाने के मुताबिक़ खाना कपड़ा माँग सकती है।

(2) अगर मर्द ख़ुशहाल हो और आमदनी भी इतनी हो कि ख़ुशहाल

ज़िन्दगी गुज़ार सकता हो लेकिन बीवी किसी ग़रीब घराने की हो तो मर्द को नफ़क़ा अपनी हैसियत के मुताबिक़ देना होगा। उस को ग़रीबी और तकलीफ़ में इस लिये रखना कि वह ग़रीब घराने की है जाइज़ नहीं। बीवी को क़ानूनी तौर पर हक़ है कि शौहर से अपनी हैसियत के मुताबिक़ नफ़क़ा देने की माँग करे।

(3) अगर मर्द ग़रीब हो और औरत भी ग़रीब घर की है तो फिर मर्द को अपनी और औरत की हैसियत के मुताबिक़ ही खाने और पहनने का ख़र्च देना चाहिये। औरत मर्द की हैसियत से ज़्यादा नहीं माँग सकती।

(4) अगर मर्द ग़रीब हो और औरत खुशहाल घराने की हो तो मर्द को अपनी हैसियत के साथ अपनी ताक़त भर उस के आराम का लिहाज़ भी रखना चाहिये, और औरत का भी अख़लाक़ी फ़र्ज़ है कि वह मर्द पर उस की ताक़त से ज़्यादा बोझ न डाले ताकि वह आमदनी का कोई हराम ज़रिया तलाश करने पर मजबूर न हो या दोनों के संबंधों में ख़राबी पैदा न हो जाये। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की अज़्वाजे मुतह्हरात (पत्नियाँ) हमेशा तंगी से बसर करती रहीं, जब विजयों से आमदनी में बढ़ोतरी हुई तो आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने असहाबे सुफ़्फ़ा और कमज़ोर मुसलमानों की मदद फ़रमाई। अज़्वाजे मुतह्हरात ने भी ख़्वाहिश की कि उन का नफ़क़ा ज़्यादा हो मगर यह ख़्वाहिश नबी ﷺ और अल्लाह के नज़दीक उन के मर्तबे (पद) के मुताबिक़ न थी। अतः इस पर क़ुरआन में यह ताकीद (चेतावनी) फ़रमाई गई:

يَآأَيُّهَا النَّبِيُّ قُلْ لِأَزْوَاجِكَ إِنْ كُنْتُنَّ تُرِدْنَ الْحَيٰوةَ الدُّنْيَا وَزِيْنَتَهَا فَتَعَالَيْنَ أُمَتِّعْكُنَّ وَأُسَرِّحْكُنَّ سَرَاحاً جَمِيْلًا. وَإِنْ كُنْتُنَّ تُرِدْنَ اللّٰهَ وَرَسُوْلَهُ وَالدَّارَ الْاٰخِرَةَ فَإِنَّ اللّٰهَ أَعَدَّ لِلْمُحْسِنٰتِ مِنْكُنَّ أَجْرًا عَظِيْمًا.

(احزاب:٢٩)

'या अय्युहन्नबिय्यु कुल लिअज़्वाजिका इन कुनतुन्ना तुरिदनल हयातद्दुनिया व ज़ीनतहा फ़तआलैना उमत्तिअकुन्ना व उसर्रिहकुन्ना सराहन जमीला। व इन कुनतुन्ना तुरिदनल्लाहा व रसूलहू वद्दारल आख़िरता फ़इन्नल्लाहा अअद्दा लिलमुहसिनाति मिनकुन्ना अजरन अज़ीमा।'

अनुवादः- ऐ नबी! अपनी बीवियों से कहिये कि अगर तुम्हें दुनिया की ज़िन्दगी और उस की खूबसूरती चाहिये तो आओ मैं तुम्हें माल और पोशाक दे कर ख़ूबसूरती से रूख़सत कर दूँ, और अगर तुम ख़ुदा और उसके रसूल और आख़िरत के घर (जन्नत) को चाहती हो तो अल्लाह ने नेकदिल और नेक काम करने वाली औरतों के लिये बहुत बड़ी नेमतों वाला अज्र (इनआम) तैयार कर रखा है।

इस आयत के उतरने के बाद अज़्वाजे मुतह्हरात ने क्या कहा? सब ने एक ज़ुबान हो कर फ़रमायाः हमें ख़ुदा और उस के रसूल और आख़िरत के घर के अलावा और कुछ नहीं चाहिये और फिर कभी नफ़्के में बढ़ोतरी करने का सवाल नहीं किया। इस आइने में हर मुसलमान औरत को अपना चेहरा देखना चाहिये।

(5). बनाव सिंगार के लिये वह चीज़ें जो औरतों के लिये ज़रूरी हैं जैसे तेल, कंघी, साबुन वग़ैरा वह भी नफ़के में दाख़िल हैं और इन का इन्तिज़ाम करना मर्द पर ज़रूरी है लेकिन ग़ैर ज़रूरी सजने संवरने का सामान जैसे लिपिस्टिक और ब्यूटी पाउडर वग़ैरा तो उन का इन्तिज़ाम मर्द पर वाजिब नहीं।

(6). अगर औरत ऐसे घर की है जहाँ घर वाले अपने हाथ से काम नहीं करते बल्कि नौकर चाकर करते हैं तो अगर औरत नौकर की माँग करे और शौहर नौकर रख सकता हो तो उसे नौकर रखना पड़ेगा लेकिन अगर नौकर रखने से मजबूर है तो फिर अन्दर का काम ख़ुद बीवी को करना होगा और बाहर का काम करना शौहर की ज़िम्मेदारी होगी।

(7). अगर औरत इतनी कमज़ोर या मरीज़ है कि घर का काम नहीं कर सकती तो शौहर ऐसी औरत को काम काज पर मजबूर नहीं कर सकता और उस को बिठा कर रोटी कपड़ा देना होगा। इस बारे में कुछ फ़िक़ही मसाइल बयान कर देना ज़रूरी मालूम होता है, कुछ फ़ुक़हा की राय है कि कपड़ों की धुलाई मर्द पर वाजिब नहीं है बल्कि सिर्फ़ साबुन और पानी का इन्तिज़ाम कर देना ज़रूरी है, औरत को कपड़े अपने हाथ से धोना चाहिये, इसी तरह कुछ उलमा ने दवा इलाज का ख़र्च शौहर पर वाजिब नहीं क़रार दिया, सिर्फ़ रोटी कपड़े का इन्तिज़ाम करना उस के लिये ज़रूरी है। इसी तरह किसी बच्चे के जन्म के वक़्त दाई वग़ैरा की फ़ीस के बारे में उलमा ने लिखा है कि उसे वही बरदाश्त करेगा जो उसे बुलायेगा।

यह तमाम मसाइल उस वक़्त उठते हैं जब शौहर और उस की बीवी में इख़्तिलाफ़ हो जाये और वह शौहर से अलग रहने लगे, वर्ना निकाह के ज़रिये जो संबंध एक मर्द और एक औरत में क़ायम होता है उस का तक़ाज़ा यह है कि वह खुशगवार से खुशगवार हो और वह सिर्फ़ क़ानूनी ही नहीं बल्कि अख़लाक़ी संबंध भी बन जाये। एक दूसरे की तकलीफ़ व आराम का ख़ायाल हो और दोनों अख़लाक़न एक दूसरे की मदद करने के ख़्वाहिशमंद हों। जहाँ यह सूरत होगी वहाँ इस तरह के मसाइल पैदा ही नहीं होंगे।

(8). जिस लड़की से निकाह हुआ है वह बालिग़ हो मगर रूख़सती न हुई हो यानी अपने माँ बाप के पास हो तब भी वह नफ़क़े की हक़दार है कि नफ़क़ा उस को दिया जाये। इस शर्त पर कि रूख़सती शौहर की मर्ज़ी से रुकी हुई हो।

(9). अगर लड़की नाबालिग़ है और अभी शौहर के घर नहीं आई है तो नफ़क़ा देना वाजिब नहीं लेकिन अख़लाक़न दे सकता है।

(10). अगर विवाही औरत शौहर की इजाज़त के बग़ैर अपने माँ बाप या किसी रिश्तेदार के घर चली जाये तो जितने दिन वहाँ रहेगी उस

का नफ़क़ा शौहर पर वाजिब नहीं, हाँ अगर इजाज़त ले कर जाये तो नफ़क़ा मिलेगा।

(11). अगर बीवी बालिग़ है मगर शौहर अभी नाबालिग़ है तो भी उस को नफ़क़ा मिलेगा।

(12). अगर शौहर कुदरत के बावजूद इतना कम ख़र्च करने के लिये देता हो कि उस की या बच्चों की ज़रूरतें पूरी न हो सकती हों तो मजबूरी की हालत में शौहर की इजाज़त के बग़ैर उस के माल से अपनी ज़रूरत पूरी कर सकती है। ऐसी ही सूरत में नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने अबू सुफ़ियान के माल से उन की बीवी हिन्दा को ख़र्च करने की इजाज़त देते हुए फ़रमाया था कि–

"ख़ुज़ी मा यकफ़ीकि व वलदकि बिलमअरूफ़ि" (अच्छी नियत से इतना ले सकती हो जितना तुम्हारी और तुम्हारे बच्चों की ज़रूरत के लिये काफ़ी हो)।

(13). शौहर एक महीने का ख़र्च बीवी को देता है और उस में से वह कुछ बचा ले तो वह औरत का हक़ है मर्द को उसे वापस लेना या नफ़क़े में कमी करना सही नहीं लेकिन अगर औरत कंजूसी की वजह से ख़र्च नहीं करती जिस का असर उस की सेहत या हुस्न व ख़ूबसूरती पर बुरा पड़ता हो तो शौहर क़ानूनी तौर पर उस से मना करने का हक़ रखता है, क्योंकि औरत की सेहत और उस की ज़ाहिरी कशिश मर्द का हक़ है जिस को बरबाद करने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। (दुर्रेमुख़तार)

(14). इसी तरह फ़ुजूलख़र्ची से रोकना भी शौहर का हक़ है कि महीना भर का ख़र्च सही ढंग से चले। अगर बेतवज्जोही से ख़र्च कर दिया या चोरी हो गया तो शौहर पर उस की ज़िम्मेदारी नहीं डाली जायेगी। (दुरमुख़तार)

सुकना के मसाइलः– नफ़क़ा के बाद तीसरा हक़ बीवी का शौहर

पर यह है कि वह उस के लिये रहने के घर का इन्तिज़ाम करे। यह फ़र्ज़ शौहर पर तलाक़ के बाद भी इद्दत के ख़त्म होने तक बाक़ी रहता है, कुरआन में है:

اَسْكِنُوْهُنَّ مِنْ حَيْثُ سَكَنْتُمْ مِّنْ وُّجْدِكُمْ. (الطلاق:٦)

'असकिनूहुन्ना मिन हैसु सकन्तुम मिव्वुजदिकुम' (सूरः तलाक़ 6)

अनुवादः- उनको अपनी ताक़त भर वहीं ठहराओ जहाँ तुम खुद रहते हो।

इस की अहमियत इतनी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हिजरत के बाद मस्जिदे नबवी का निर्माण किया और दूसरा काम अज़्वाजे मुतहहरात (पत्नियों) के लिये मकान बनवाने को फ़रमाया। फ़ुक़हा ने बीवी के लिये घर का इन्तिज़ाम करने की हिदायतें इस तरह दी हैं-

(1). शौहर के घर के लोगों के साथ मिल जुल कर रहना बहुत पसंदीदा है। फिर भी घर का एक हिस्सा मख़्सूस होना चाहिये जहाँ शौहर और बीवी बेतकल्लुफ़ी से रह सकें और बीवी अपनी चीज़ें सुरक्षित रख सके।

(2). अगर बीवी अपने रहने के लिये एक अलग घर की माँग करती है तो अगर शौहर इतनी ताक़त रखता है तो उसे ऐसे घर का इन्तिज़ाम कर देना चाहिये जिस में उस की ज़रूरत की तमाम चीज़ें जैसे गुस्लख़ाना, पाख़ाना, बावर्चीख़ाना वग़ैरा हो। लेकिन अगर उस की हैसियत ऐसी नहीं है तो जो घर उस के पास हो उस में ऐसी जगह उस के लिये दी जाये जिस में वह जिसे चाहे आने दे और जिसे न चाहे न आने दे, अपना सामान सुरक्षित कर सके और मियाँ बीवी लेट बैठ सकें। इसके अलावा ग़ुस्लख़ाना, बैतुलख़ाला (शौचालय) और बावर्चीख़ाना (किचन) अलग देना अगर सम्भव न हो तो ज़्यादा ज़रूरी नहीं। (शरह दुर्रे मुख़्तार)

अच्छा व्यवहारः- यह चीज़ तमाम हुकूक़ व फ़राइज़ की रूह है, इसी लिये रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बीवी से अच्छा व्यवहार करने की बड़ी ताकीद फ़रमाई है। शादी का संबंध कोई वक़्ती और कारोबारी संबंध नहीं बल्कि जान और जिस्म जैसा संबंध है जो आख़िरी सांस तक इस दुनिया में क़ायम रहने वाला है और आपस का अच्छा व्यवहार इस संबंध को मज़बूत कर के आख़िरत तक क़ायम रखता है। अच्छा व्यवहार का मतलब सिर्फ़ माद्दी ज़िन्दगी की ज़रूरतों का इन्तिज़ाम करना नहीं है, ये तो वे क़ानूनी हुकूक़ हैं जिन्हें बहरहाल पूरा करना ही पड़ता है चाहे ख़ुशी के साथ या जब्र से। लेकिन इस रिश्ते का तक़ाज़ा इस से ज़्यादा चाहता है। नाज़ुक जज़्बात का एहसास नर्मी और दिल को जीतने वाला व्यवहार, सच्ची ख़ैरख़्वाही, भूलचूक हो जाने पर माफ़ करने का तरीक़ा, मीठी बातचीत, बात बात पर टोकने और झिड़कने से परहेज़, बीवी से ख़िदमत लेने में उस की कमज़ोरी और नाज़ुक फ़ितरत का लिहाज़ और सब से बढ़ कर अल्लाह का डर और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के बुलंद अख़्लाक़ की पैरवी। नबी ﷺ का फ़रमान है '**ख़ैरूकुम ख़ैरूकुम लिअहलिही**' (तुम में अच्छा वह है जो अपने परिवार के साथ अच्छा हो) आप ﷺ ने अपने बारे में फ़रमाया 'मैं अपने परिवार के साथ तुम में सब से बेहतर हूँ'। एक दूसरी जगह आप ने फ़रमाया 'तुम में बेहतर वे लोग हैं जो अपनी औरतों के साथ बेहतर हैं'।

ऊपर की हदीसें सही तिर्मिज़ी और मुसनद अहमद से नक़ल की गई हैं। सही बुख़ारी व सही मुस्लिम की हदीसें आगे बयान होंगी। कुरआन मजीद में मअरूफ़ (उत्तम) तरीक़ा इस्तेमाल करने का हुक्म मौजूद है।

وَعَاشِرُوْهُنَّ بِالْمَعْرُوْفِ فَاِنْ كَرِهْتُمُوْهُنَّ فَعَسٰى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْئًا
وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا. (نساء: ١٩)

'वआशिरूहुन्ना बिल मअरूफ़ि फ़इन करिहतुमूहुन्ना फ़असा अन तकरहू शैअंव वयजअलल्लाहु फ़ीहि ख़ैरन कसीरा'।

(सूरः निसा 19)

अनुवादः- और औरतों के साथ ख़ूबी और अच्छे व्यवहार के साथ रहो, अगर तुम उन्हें किसी वजह से नापसंद करते हो तो मुम्किन है कि जो बात तुम को नापसंद लगती हो उसी में अल्लाह ने तुम्हारे लिये बहुत सी भलाईयाँ और खुशनसीबियाँ रख दी हों।

इस आयत में दो हुक्म दिये गये हैं (1) भले तरीक़े से रहो सहो (2) अगर कोई बात नापसंद हो तो तुरन्त नफ़रत न करने लगो क्योंकि हो सकता है कि उस में तुम्हारे लिये बहुत सी भलाइयाँ छुपी हुई हों जो तुम्हारे लिये खैर और बरकत का सबब बन जायें। सही मुस्लिम में रसूल अल्लाह ﷺ का यह फ़रमान है:-

لَايَفْرِكْ مُؤْمِنٌ مُؤْمِنَةً اِنْ كَرِهَ مِنْهَا خُلُقًا رَضِيَ مِنْهَا اٰخَرَ. (مسلم)

'लायफ़रिक मूमिनुन मुमिनतन इन करिहा मिनहा ख़ुल्क़न रज़िया मिनहा आख़र'।

अनुवादः- मोमिन का यह काम नहीं कि मोमिन बीवी में कोई बात अच्छी न लगे तो उस से नफ़रत करने लगे। दूसरी कोई बात ऐसी भी हो सकती है जो उसे बहुत अच्छी लगे।

हो सकता है कि ज़ाहिरी हुस्न व ख़ूबसूरती में एक औरत मर्द की निगाह में कम दर्जे की नज़र आती हो मगर अन्दर से उस का दर्जा बहुत बुलंद और ऊँचा हो। सूरत व शक्ल किसी के इख़्तियार की चीज़ नहीं जबकि सीरत व कैरेक्टर को बुलंद करना इख़्तियार में होता है। औरत फ़ितरतन कमज़ोर होती है इस लिये अगर किसी कमज़ोरी का इज़हार हो तो उसे नर्मी और मुहब्बत से दूर किया जा सकता है, सख़्ती और बुरे व्यवहार से नहीं। इस बारे में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की यह हदीस रहनुमाई करती है:-

اِسْتَوْصُوْا بِالنِّسَاءِ فَإِنَّ الْمَرْأَةَ خُلِقَتْ مِنْ ضِلَعٍ فَإِنْ ذَهَبْتَ تُقِيْمُهٗ كَسَرْتَهٗ وَإِنْ تَرَكْتَهٗ لَمْ يَزَلْ اَعْوَجَ فَاسْتَوْصُوْا بِالنِّسَاءِ. (بخاری، مسلم)

'इस्तौसू बिन्निसाइ फ़इन्नल मरअता ख़ुलिक़त मिन ज़िलइन फ़इन ज़हब्ता तुक़ीमुहू कसरतहू व इन तरकतहू लम यज़ल अअवजा फ़स्तौसू बिन्निसाइ।' (बुख़ारी व मुस्लिम)

अनुवाद:- औरतों से अच्छा व्यवहार करो, औरत पस्ली से पैदा की गई है अगर तुम उसको सीधा करने की कोशिश करोगे तो तुम उसे तोड़ दोगे और अगर तुम उसे अपने हाल पर रहने दोगे तो वह झुकी हुई रहेगी। इस लिये तुम औरतों से अच्छा व्यवहार करते रहो।

ज़ुल्म और तकलीफ़ पहुंचाना:- यह हदीस जो अभी बयान हुई इस का तक़ाज़ा है कि औरतों को दुख और तकलीफ़ नहीं पहुंचानी चाहिये न उन से सख़्त बात की जाये न ताना दे कर और बुरा भला कह कर उन का दिल तोड़ा जाये, उन्हें अपने रिश्तेदारों से मिलने पर पाबन्दी न लगाई जाये। उन की माद्दी ज़रूरतों के साथ उन की दिली ख़्वाहिशों को पूरा करने का भी ख़याल रखा जाये। क़ुरआन मजीद में ज़ुल्म व ज़्यादती न करने का हुक्म अपनी बीवियों के बारे ही में नहीं बल्कि तलाक़ दी हुई बीवियों के बारे में भी दिया है:

وَلَا تُمْسِكُوْهُنَّ ضِرَارًا لِّتَعْتَدُوْا وَمَنْ يَّفْعَلْ ذَالِكَ فَقَدْ ظَلَمَ نَفْسَهٗ. (سورۃ بقرہ:۲۳۱)

'वला तुमसिकूहुन्ना ज़िरारल लितअतदू वमंय्यफ़अल ज़ालिका फ़क़द ज़लमा नफ़्सहू।' (सूरः बक़रह 231)

अनुवाद:- उनको सिर्फ़ तकलीफ़ पहुंचाने के लिये न रोक रखो और जो ऐसा करेगा वह अपने ऊपर ज़ुल्म करेगा।

औरत का हक़ और दीनी फ़राइज़:- दीनी कामों में इतना मशग़ूल रहना कि बीवी के माद्दी (भौतिक) और जिन्सी हुक़ूक़ की अदायगी

से तवज्जोह हटा दे सवाब का काम नहीं है क्योंकि किसी का हक़ मारना गुनाह है। एक बड़े सहाबी रातों को नमाज़ पढ़ते थे और दिन को रोज़ा रखने में गुज़ार देते और बीवी की तरफ़ तवज्जोह नहीं करते थे। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को ख़बर हुई तो आप ने उन्हें बुला कर समझाया और फ़रमाया **'व इन्ना लिज़ौजिका अलैका हक़्क़न'** (और तुम्हारी बीवी का भी तुम पर हक़ है) हज़रत उमर (र०) के ज़माने में जबकि इस्लाम को फैलाने के लिये अकसर मुसलमान अपने घरों से बाहर जिहाद में मशग़ूल रहा करते, आप ने हुक्म दिया था कि कोई चार महीने से ज़्यादा अपनी बीवी से अलग न रहे।

एक से ज़्यादा बीवियाँ रखने की शर्तः- बहुत सी हिकमतों और मसलेहतों की बिना पर एक मर्द को एक साथ एक से ज़्यादा निकाह करने की इजाज़त दी गई है जिस की हद चार से ज़्यादा नहीं हो सकती। शर्त यह है कि उन के बीच न्याय रखना ज़रूरी होगा ताकि बीवी किसी क़िस्म की महरूमी महसूस न कर सके। अगर हर एक के साथ बराबरी का व्यवहार नहीं कर सकता तो उस मर्द को एक से ज़्यादा निकाह करना जाइज़ नहीं। कुरआन में जहाँ चार बीवियाँ रखने की इजाज़त दी गई है वहाँ यह हिदायत भी दी गई है-

فَإِنْ خِفْتُمْ أَلَّا تَعْدِلُوا فَوَاحِدَةً أَوْ مَا مَلَكَتْ أَيْمَانُكُمْ. (نساء : ٣)

'फ़इन ख़िफ़तुम अल्ला तअदिलू फ़वाहिदतन अव मा मलकत ऐमानुकुम।' (सूरः निसा 3)

अनुवादः- अगर तुम को डर हो कि उन में बराबरी न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी रख सकते हो या एक बाँदी।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने दीनी और सियासी मसलेहतों से कई शादियाँ कीं और उन सब बीवियों में कोई ज़्यादा उम्र वाली थीं कोई आप की बराबर उम्र की थीं कोई छोटी उम्र की।

ज़ाहिर है कि उन का मिज़ाज और आदत भी अलग अलग होगा। अकसर बीवियाँ वे थीं जो पहले किसी दूसरे शौहर के साथ रह चुकी थीं। सिर्फ़ एक बीवी कुंवारी थीं जो उम्र में बहुत छोटी थीं। न्याय और बराबरी का यह हाल था कि आप की किसी बीवी को दूसरी के मुक़ाबिले में कमतरी या महरूमी की शिकायत कभी नहीं हुई। आप हर बीवी की दिलजोई फ़रमाते। सब के पास बारी बारी ठहरते जिस में कभी फ़र्क़ नहीं आने पाता। आप ﷺ का बेहतरीन नमूना जो घरेलू ज़िन्दगी से संबंधित है उन्हीं अज़्वाजे मुतह्हरात के ज़रिए उम्मत को पहुंचा। न्याय और इंसाफ़ का यह नायाब नमूना नबी के घर के अलावा और कहीं नहीं मिलता।

जो लोग शौक़िया शादी पर शादी करते हैं उन का दिल ज़रूर किसी एक की तरफ़ झुक जाता है और दूसरी की तरफ़ उन की तवज्जोह कम होती जाती है जो न्याय और इंसाफ़ को बाक़ी नहीं रहने देती। उन लोगों के बारे में क़ुरआन मजीद में साफ़ तौर से इस कमज़ोरी का ज़िक्र करते हुये यह हिदायत दी गई है:

وَلَنْ تَسْتَطِيْعُوْا اَنْ تَعْدِلُوْا بَيْنَ النِّسَاءِ وَلَو حَرَصْتُمْ فَلَا تَمِيْلُوْا
كُلَّ الْمَيْلِ فَتَذَرُوْهَا كَالْمُعَلَّقَةِ ط (سورہ نساء:۱۲۸)

'वलन तसततीऊ अन तअदिलू बैनन्निसाइ वलौ हरस्तुम फ़ला तमीलू कुल्ललमैलि फ़तज़रूहा कलमुअल्लक़ति।'

(सूर: निसा 128)

अनुवाद:- तुम अपनी बहुत ज़्यादा ख़्वाहिश के बावजूद बीवियों के बीच न्याय के साथ न रह सकोगे, इस लिये ऐसा न करना कि एक ही तरफ़ बिल्कुल झुक जाओ और दूसरी को बीच में लटका कर छोड़ दो (कि न वह बियाही रहे और न बेबियाही)।

अगर किसी एक बीवी की मुहब्बत उस की ज़ाहिरी या अनदरूनी ख़ूबी की वजह से ज़्यादा हो जाये तो उस पर इन्सान का

बस नहीं है और यह न्याय के ख़िलाफ़ भी नहीं। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से ज़्यादा न्याय करने वाला कोई नहीं लेकिन आप भी यह दुआ फ़रमाते थे:-

'ऐ अल्लाह मेरी यह तक़सीम उसी हद तक है जहाँ तक मेरा इख़्तियार है लेकिन जिन बातों का मुझे इख़्तियार नहीं है उन में मुझ को मलामत न फ़रमा' (अबूदाऊद)

लेकिन शरीअत ने जो हुक़ूक़ बीवी के मुक़र्रर कर दिये हैं उन में अगर कोई शख़्स कमी करता है तो वह अख़लाक़ और क़ानून की नज़र में मुजरिम है।

क़सम बैनज़्ज़ौजात:- इसका अर्थ है कि सबका हक़ अदा किया जाए। फ़ुक़हा की शब्दावली में इस से बीवियों के बीच रात गुज़ारने में बराबरी का लिहाज़ रखना और हर एक का नफ़क़ा (ख़र्च) मुक़र्रर कर देना मुराद है।

नफ़्क़े की तक़सीम:- नफ़्क़े में खाना लिबास और मकान शामिल हैं। नफ़क़े की मात्रा शौहर की हैसियत और हालत के मुताबिक़ मुक़र्रर की जायेगी। बीवियों की रज़ामंदी से उस को बराबर बराबर बाँट दिया गया तो बहुत बेहतर है, वर्ना बीवियों की हैसियत के मुताबिक़ बाँटना भी जाइज़ है (यानी अमीर बीवी का हिस्सा नफ़क़े में ग़रीब बीवी के हिस्से से ज़्यादा हो) इस शर्त पर कि किसी पर जब्र न हो और हर एक को जो उस का हक़ है बग़ैर किसी का हक़ मारे मिल जाये। ज़बरदस्ती और हक़तलफ़ी की सूरत में बीवी क़ानूनी तौर पर अपना हक़ ले सकती है। इस्लामी अदालत उसे उस का जाइज़ हक़ दिलवायेगी।

जब हर बीवी को उस का पूरा-पूरा हक़ मिल गया हो तो शौहर को आज़ादी है कि उन में से जिस को चाहे कुछ दे दे।

वक़्त की तक़सीम यानी बारी मुक़र्रर करना:- बीवियों के बीच

बारी के दिन की बराबर बराबर तक़सीम वाजिब है जिस का सुबूत अल्लाह तआला का यह हुक्म है "फ़इन ख़िफ़्तुम अल्ला तअदिलू फ़वाहिदतन" (अगर तुमको डर हो कि उनमें बराबरी न कर सकोगे तो फिर एक ही बीवी रख सकते हो) तो जब बीवियों के बीच बेइंसाफ़ी के डर से दो बीवियों का करना हराम क़रार दे दिया गया तो बग़ैर किसी संकोच के दोनों के बीच न्याय और इंसाफ़ करना लाज़िम हो गया। इस लिये शौहर जो (1) आक़िल हो उस को जुनून न हो, (2) बालिग़ हो छोटी उम्र का न हो और बीवी भी छोटी उम्र की न हो (3) बीवी शौहर की नाफ़रमान (अवज्ञाकारी) न हो, इन तीनों शर्तों की मौजूदगी में बारी मुकर्रर करना वाजिब है। औरत को जुनून हो लेकिन मुबाशरत (संभोग) करना मुम्किन हो या छोटी उम्र की हो मगर मुबाशरत के क़ाबिल हो तो भी बारी मुक़र्रर करना लाज़िम है वर्ना नहीं। वह औरत जो शौहर का आज्ञापालन न करती हो उसे बारी का हक़ नहीं।

2- शौहर बीमार हो या तन्दुरूस्त उस को बीवियों के पास बारी के मुताबिक़ ही रहना चाहिये। क्योंकि बारी मुक़र्रर करने का मक़सद आपसी मुहब्बत है न कि मुबाशरत, शौहर पर वाजिब है कि अपनी बीवी की इज़्ज़त व आबरू की सुरक्षा करे। किसी दूसरे के साथ संबंध के रास्ते बन्द कर दे, अगर ऐसा न कर सके तो छोड़ देना वाजिब है।

3. मर्द पर यह वाजिब नहीं है कि अपनी बीवियों के बीच मुबाशरत में भी बराबरी करे क्योंकि जिन्सी झुकाव में बराबरी मुम्किन नहीं 'लन तसततीऊ अन तअदिलू' का मतलब यही है।

4. अगर कोई शख़्स दिन में कारोबार या नौकरी करता है तो बारी की रातें मुक़र्रर करे और अगर रात का काम करता है जैसे चौकीदार है या किसी कारख़ाने में रात की डयूटी करता है तो बारी के दिन मुक़र्रर करे।

5. शौहर को यह हक़ है कि बारी चाहे एक-एक दिन की मुक़र्रर करे या दो-दो चार-चार दिनों की।

6. शौहर को एक बीवी की बारी वाली रात को दूसरी बीवी के घर चले जाना जाइज़ नहीं बल्कि अगर एक के यहाँ शाम ही को पहुंच जाता है और दूसरी के यहाँ दस ग्यारह बजे रात को तो यह भी न्याय के ख़िलाफ़ है और वह गुनहगार होगा, हाँ अगर दूसरी कोई बीवी बीमार है तो उस की देख भाल के लिये जाना सही है।

बारी मुक़र्रर करने में नई बीवी का हक़:- किसी शख़्स ने बीवी के होते हुये एक नई शादी की, यह नई बीवी या तो कुंवारी होगी या बेवा (विधावा) या तलाक़ दी हुई, तो अगर कुंवारी है तो सात दिन और अगर बेवा या तलाक़ दी हुई है तो तीन दिन का हक़ उस को होगा, जब नई बीवी के साथ ठहरने की मुद्दत ख़त्म हो जाये तो बीवियों के बीच बारी को बराबर-बराबर बाँटा जायेगा जैसा कि ऊपर ज़िक्र किया जा चुका। इब्ने हिब्बान की रिवायत की हुई हदीस का अर्थ यह है 'सात दिन तक कुंवारी का और तीन दिन तक बेवा या तलाक़ दी हुई औरत का हक़ है' बुख़ारी और मुस्लिम में हज़रत अनस (र.अ.त.) की यह रिवायत मौजूद है-

> 'सुन्नत (तरीक़ा) यह था कि जब सय्यबा (शादीशुदा) पर बाकरह (कुंवारी) से निकाह करते तो उस के पास सात दिन ठहरते फिर बारी मुक़र्रर फ़रमा देते और कुंवारी पर सय्यबा (शादीशुदा) से निकाह करते तो उस के पास तीन दिन ठहरते फिर बारी मुक़र्रर फ़रमा देते।

औरत को अपनी बारी से अलग होने का हक़:- यह साबित है कि उम्मुल मूमिनीन हज़रत सौदा (र॰) ने अपनी बारी हज़रत आयशा (र॰) को दे दी थी और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत आयशा (र॰) को अपनी और हज़रत सौदा (र॰) की बारियों का हक़ इस्तेमाल करने की इजाज़त दे दी थी। इस से फुक़हा ने

मसाइल निकाले हैं: एक बीवी को यह हक़ है कि दूसरी से कुछ माल ले कर अपनी बारी का हक़ उसे दे दे या बग़ैर कुछ बदला लिये ऐसा करे। इमाम मालिक (रह०) के नज़दीक दोनों तरीक़े सही हैं। जबकि बाक़ी तीन इमाम बारी दे कर उस का कुछ बदला लेना सही नहीं मानते हैं।

2. हिबा करने वाली को हक़ है कि हिबा को वापस ले ले, वापस लेने के बाद आने वाली बारियों में उस का हक़ रहेगा, जो गुज़र चुकीं उस का कोई बदला नहीं दिया जायेगा।

3. हिबा करने वाली बीवी ने जिस ख़ास बीवी के हक़ में अपनी बारी हिबा की है और उस ने उसे कुबूल कर लिया है, तो शौहर को उस में कुछ परिवर्तन करने का हक़ नहीं है। इमाम शाफ़ई (रह०) के नज़दीक दूसरी बीवी का कुबूल करना ज़रूरी नहीं है, शौहर का राज़ी होना काफ़ी है और यह हिबा उस वक़्त तक बाक़ी रहेगा जब तक हिबा करने वाली और उस का शौहर राज़ी हैं।

4. इमाम मालिक (रह०) के नज़दीक जिस तरह हिबा जाइज़ है। उसी तरह यह भी जाइज़ है कि मुक़र्ररह माल के बदले अपनी बारी का हक़ अपने शौहर या सौतन को बेच दे। उन की एक मशहूर राय यह भी है कि किसी औरत के लिये जाइज़ नहीं अपनी बारी का हक़ हमेशा के लिये बेच दे, थोड़े दिनों के लिये कर सकती है।

सफ़र में साथ ले जाने का तरीक़ा:- ऐसा शख़्स जिस की एक से ज़्यादा बीवियाँ हों सफ़र करना चाहे तो अगर यह सफ़र दूसरे शहर में नौकरी पर रहने के लिये हो तो, या तो वह अपनी सब बीवियों को ले जाये लेकिन अगर यह मुम्किन न हो तो कुरआ (बहुत से लोगों में से एक का नाम निकालने का तरीक़ा) डाले जिस का नाम निकले उसे साथ ले जाये और फिर कुछ दिन साथ रखने के बाद वापस लाये और दूसरी बीवी को उतने दिनों के लिये अपने पास रखे जितने दिनों तक पहली को रखा था और इसी तरह करता रहे,

लेकिन सफ़र अगर किसी वक़्ती मक़सद जैसे तिजारत, इलाज या सेहत हासिल करने या हज वग़ैरा के लिये हो तो साथ ले जाने के लिये उस बीवी को चुने जो सफ़र की सलाहियत (योग्यता) रखती हो। कभी-कभी किसी बीवी को घर की देख भाल के लिये छोड़ कर जाना ज़रूरी होता है, लेकिन अगर सब बीवियाँ सफ़र करने की सलाहियत और घरेलू इन्तिज़ाम की योग्यता रखती हैं तो उन में कुरआ डाला जा सकत है ख़ास तौर से जब हज का सफ़र हो क्योंकि इस का शौक़ सब बीवियों को होता है।

जब किसी के नाम कुरआ, निकल आये और उस के साथ सफ़र किया तो जो वक़्त सफ़र में गुज़रा उस का हिसाब बीवी के ज़िम्मे नहीं डाला जायेगा, हाँ अगर सफ़र करने के दौरान कोई अच्छी जगह देख कर कुछ दिनों के लिये वहाँ रूक गये तो ये दिन बीवी की बारी में जोड़े जायेंगे और वापसी पर उतने ही दिन दूसरी बीवियों में बाँट दिये जायेंगे, यह इमाम हंबल (रह०) की राय है। जबकि दूसरे इमामों के नज़दीक सफ़र के तमाम दिन जो चलने फिरने और आने जाने में गुज़रे हैं उन की कोई पूर्ति नहीं करनी है लेकिन अगर किसी ने बग़ैर कुरआ डाले किसी बीवी को ले कर सफ़र किया तो पहली बात तो यह कि यह गुनाह है, दूसरे वह समय जिन में शौहर और बीवी दोनों साथ रहे गिने जायेंगे और सौतनों को उन का बदला देना होगा अगर वे सब बग़ैर कुरआ डाले उस के साथ सफ़र करने पर राज़ी न रही हों। जब दो बीवियाँ सफ़र में साथ हों तो उन के बीच बारी मुक़र्रर करना उस सूरत में लाज़िम है जब दोनों अलग अलग सवारियों या कम्पार्टमेन्ट या ख़ेमों में हों।

अगर सफ़र में बीवियाँ साथ हों और एक दूसरे ख़ेमे में ठहरें या एक फ़र्श पर रहें तो जाइज़ है लेकिन मुबाशरत बिल्कुल नाजाइज़ है।

मर्द का फ़र्ज़:- ऊपर मर्द के फ़राइज़ बीवी के हुकूक़ अदा करने के सिलसिले में बयान किये गये हैं। कुरआन की आयतों और हदीसों से

मर्द का फ़र्ज़ यह भी मालूम होता है कि वह बीवी की दीनी और अख़्लाक़ी तर्बियत भी करता रहे।

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ اٰمَنُوْا قُوْا اَنْفُسَكُمْ وَاَهْلِيْكُمْ نَارًا (سوره تحريم:٦)

'या अय्युहल्लज़ीना आमनू क़ू अनफ़ुसकुम व अहलीकुम नारा।' (सूर: तहरीम, 6)

अनुवादः- ऐ मुसलमानो! अपने आप को और अपने परिवार को (दोज़ख़) की आग से बचाओ।

नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की बीवियों को संबोधित करते हुए फ़रमाया गया-

وَاذْكُرْنَ مَايُتْلٰى فِىْ بُيُوْتِكُنَّ مِنْ اٰيٰتِ اللّٰهِ وَالْحِكْمَةِ. (احزاب:٣٤)

'वज़कुरना मा युतला फ़ी बुयूतिकुन्ना मिन आयातिल्लाहि वल हिकमति' (सूर: अहज़ाब 34)

अनुवादः- और तुम्हारे घरों में जो अल्लाह की आयतें और दानिश व हिकमत की बातें पढ़ी जाती हैं उन्हें याद रखो।

सूरः मुद्दस्सिर में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम को इस्लाम के प्रचार का पहला हुक्म दिया गया-

وَاَنْذِرْ عَشِيْرَتَكَ الْاَقْرَبِيْنَ.

'वअंज़िर अशीरतकल अक़रबीन।'

अनुवादः- अपने ख़ानदान के क़रीबी लोगों को डराओ।

सब से पहली नमाज़ आप ने हज़रत जिब्रील अलैहिस्सलाम के साथ पढ़ी और दूसरी नमाज़ में हज़रत ख़दीजा (र०) आप के साथ थीं। इस से मालूम हुआ कि रसूल अल्लाह ﷺ ने दीन की तालीम (शिक्षा) सब से पहले अपनी बीवी को दी, और जो सहाबा आप पर

ईमान लाते आप उन को भी यही नसीहत करते। हज़रत मालिक बिन हुवैरिस बयान करते हैं कि हम कुछ नवजवान इस्लाम लाने के बाद दीन की शिक्षा हासिल करने के लिये आप ﷺ के पास बीस दिन तक रहे, आप की रहमदिली का यह हाल था कि बीसवें दिन आप ने पूछा कि घर में किस को छोड़ आये हो। जब हम लोगों ने बताया तो फ़रमाया-

اِرْجِعُوْا اِلٰی اَھْلِیْکُمْ فَاَقِیْمُوْا فِیْھِمْ وَعَلِّمُوْھُمْ وَمُرُوْھُمْ. (بخاری ومسلم)

'इरजिऊ इला अहलीकुम फ़अक़ीमू फ़ीहिम व अल्लिमूहुम व मुरूहुम।'

अनुवादः- अपने घर वालो के पास लौट जाओ उन्हीं में रहो, उन को दीन सिखाओ और ख़ुदा का हुक्म उन्हें सुना दो।

औरतों को नमाज़ पढ़ने के लिये कहते रहना और इस्लाह व तर्बियत (सुधार व प्रशिक्षण) नर्मी के साथ करना चाहिये। वह हदीस सामने रहना चाहिये जिस में औरत की फ़ितरी कजी और नज़ाकत का ज़िक्र किया गया है।

मर्दों के हुकूक़ उन की बीवियों परः- बीवी पर शौहर का पहला हक़ जो फ़र्ज़ है वह यह है कि वह अपनी इज़्ज़त व आबरू की सुरक्षा इस तरह करे जैसे वह अपने शौहर की साफ़ व पवित्र अमानत है जिस पर ज़रा सा भी दाग़ या मैल न आने पाये। किसी नामहरम से बेज़रूरत बातचीत न करे, पर्दे का ख़ास ख़याल रखे कि शौहर के सिवा किसी महरम के सामने मुंह और हाथ के अलावा बाक़ी सारा जिस्म ढका रहे। बग़ैर इजाज़त घर से बाहर न जाये। कुरआन में यह ख़ूबी बयान की गई है "हाफ़िज़ातुल लिलग़ैबि बिमा हफ़िज़ल्लाहु" (वे जो शौहर की ग़ैर मौजूदगी में अपनी इज़्ज़त आबरू और शौहर की हर चीज़ की अल्लाह की तौफ़ीक़ से हिफ़ाज़त करती हैं)।

दूसरा फ़र्ज़ शौहर के माल की हिफ़ाज़त करना है। आँहज़रत ﷺ ने नेक औरत की तारीफ़ में फ़रमाया बीवी अपने बारे में और शौहर के माल के बारे में कोई ऐसी बात न करे जो उस का शौहर पसंद न करता हो'

दूसरे मौक़े पर आप ने इस तरह तारीफ़ की 'ऐसी बीवी जो अपनी जान (इज़्ज़त व आबरू) और शौहर के माल में ख़यानत न करे। माल की हिफ़ाज़त यह भी है कि घर की कोई चीज़ शौहर की इजाज़त के बग़ैर न दे। (दोनों हदीसें निसाई और बैहक़ी से नक़ल की गई हैं।

तीसरा फ़र्ज़ हर नेक काम और हक़ बात में शौहर की इताअत (आज्ञापालन) करना है, कुरआन मजीद में है-

فَالصَّالِحَاتُ قَانِتَاتٌ. (سوره :نساء)

'फ़स्सालिहातु क़ानितातुन' (सूरः निसा)

अनुवादः-नेक औरतें वे हैं जो आज्ञापालन करने वाली होती हैं।

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है तक़्वे के बाद एक मर्द के लिये सब से बड़ी नेमत नेक बीवी है जो अपने शौहर की नेक बात को माने, जब उस की तरफ़ देखे तो उस को खुश कर दे, जब शौहर उसके भरोसे पर कोई बात कह दे तो उसे पूरा कर दे और जब वह घर में न हो तो अपनी इज़्ज़त की और उस के माल की हिफ़ाज़त करे। (इब्ने माजा)

आप ﷺ ने फ़रमाया:-

'जो औरत नमाज़ रोज़े की पाबन्दी करे तो उस का मर्तबा यह है कि क़यामत के दिन जन्नत के जिस दरवाज़े से चाहे दाख़िल हो जाये। (मिश्कात)

शौहर का आज्ञापालन करनाः- आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है-

إِذَا دَعَا الرَّجُلُ زَوْجَتَهُ لِحَاجَتِهِ فَلْتَأْتِهِ وَإِنْ كَانَتْ عَلَى التَّنُّوْرِ. (ترمذی)

'इज़ा दअर्रजुलु ज़ौजतहू लिहाजतिही फ़लतातिही वइन कानत अलत्तन्नूरि' (तिर्मिज़ी)

अनुवादः- अगर शौहर बीवी को अपनी किसी ज़रूरत के लिये बुलाये तो वह तुरन्त उस के पास चली जाये चाहे वह तन्दूर पर ही क्यों न बैठी हो।

बीवी कितनी ही ज़रूरी काम में क्यों न लगी हो, जब शौहर बुलाये तो उस की तरफ़ ध्यान देना और उस के पास पहुंच जाना चाहिये। हदीस में हाजत का शब्द इस्तेमाल हुआ है जो जिन्सी ज़रूरत के लिये बोला जाता है। यहाँ तक हुक्म है कि शौहर की इजाज़त के बग़ैर न तो बीवी को नफ़्ल नमाज़ पढ़नी चाहिये और न नफ़्ल रोज़े रखने चाहिये और फ़र्ज़ नमाज़ें भी लम्बी और देर तक नहीं पढ़नी चाहिये। अबू दाऊद और इब्ने माजा में यह हदीस रिवायत की गई है।

सफ़वान बिन मुअत्तल की बीवी आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास यह शिकायत ले कर आई कि मेरे शौहर मुझे नमाज़ पढ़ने पर मारते हैं, रोज़ा रखती हूँ तो तुड़वा देते हैं और खुद फ़ज्र की नमाज़ सूरज निकलने के बाद पढ़ते हैं। सफ़वान भी मौजूद थे, आप ने उन से पूछा कि हक़ीक़त क्या है, उन्होंने कहा कि जब यह नमाज़ें शुरू करती हैं तो दो बड़ी सूरतें एक-एक रकअत में पढ़ती हैं, मैं ने बार-बार मना किया लेकिन यह नहीं मानतीं, इस पर मैं इन को मारता हूँ। आप ﷺ ने उन की औरत से फ़रमाया कि एक छोटी सूरत से भी नमाज़ हो जाती है। फिर सफ़वान ने कहा जब यह नफ़्ल रोज़े रखती है तो लगातार रखती चली जाती है और मैं एक नवजवान आदमी हूँ इस लिये रोज़ा तुड़वा देता हूँ। इस पर आप ﷺ ने फ़रमाया कोई औरत नफ़्ल रोज़ा बग़ैर शौहर की इजाज़त के न रखा करे। फ़ज्र की नमाज़ देर से पढ़ने की वजह सफ़वान ने यह

पेश की कि वह जो मेहनत मज़दूरी करते हैं उस में ज़्यादा रात तक मशग़ूल रहना पड़ता है इस लिये सुबह उठने में देर हो जाती है।

इस हदीस से यह साबित हुआ कि शौहर का आज्ञापालन उतना ही करना चाहिये जिस में अल्लाह की नाफ़रमानी (अवज्ञा) न होने पाये, नफ़्ल नमाज़ या नफ़्ल रोज़ा छोड़ देने में अल्लाह की नाफ़रमानी नहीं होती। इसी तरह फ़र्ज़ नमाज़ भी छोटी सूरतें पढ़ने से हो जाती हैं, हाँ जहाँ बुराई की बात हो और शरीअत के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी हो रही हो ऐसे तमाम बुरे काम करने से साफ़ इंकार कर देना ज़रूरी है चाहे शौहर ख़ुश हो या नाख़ुश, उस के संबंध अच्छे रहें या बुरे क्योंकि नबी ﷺ का फ़रमान है-

'जिस बात में ख़ालिक़ की नाफ़रमानी हो उस में किसी मख़लूक़ का आज्ञापानल नहीं करना चाहिये।'

औरतों को पर्दे का हुक्मः- सूरह अहज़ाब की आयत न. 53 में है-

وَاِذَا سَاَلْتُمُوْهُنَّ مَتَاعًا فَسْئَلُوْهُنَّ مِنْ وَّرَاءِ حِجَابٍ ذٰلِكُمْ اَطْهَرُ لِقُلُوْبِكُمْ وَقُلُوْبِهِنَّ ط

'वइज़ा सअलतुमूहुन्ना मताअनफ़स्अलूहुन्ना मिवं वराइ हिजाबिन, ज़ालिकुम अतहरू लिकुलूबिकुम व कुलूबिहिन्ना।'

अनुवादः- जब तुम उन औरतों से कोई चीज़ माँगो तो पर्दे के बाहर से माँगा करो, यह बात तुम्हारे दिलों और उन के दिलों को पाक करने का बेहतरीन ज़रिया है।

यह हुक्म उन मर्दों को है जो औरतों के महरम नहीं हों। जब वे औरतों से कुछ ज़रूरत की चीज़ें माँगें और बात करें तो बीच में पर्दा होना ज़रूरी है ताकि वे एक दूसरे के आमने सामने न आयें।

इसी तरह औरतों को हुक्म दिया गया-

اِنِ اتَّقَيْتُنَّ فَلَا تَخْضَعْنَ بِالْقَوْلِ فَيَطْمَعَ الَّذِىْ فِىْ قَلْبِهٖ مَرَضٌ وَّقُلْنَ قَوْلًا مَّعْرُوْفًا. (احزاب:٣٢)

'इनित्तक़ैतुन्ना फ़ला तख़ज़अना बिल क़ौलि फ़यतमअल-लज़ी फ़ी क़ल्बिही मरजुवं वक़ुलना क़ौलम मअरूफ़ा'।

(सूरः अहज़ाब, 32)

अनुवादः- यानी अगर तुम्हें अल्लाह का डर है तो दबी जुबान से (ग़ैर मर्द से) बात न किया करो कि दिल का ख़राब आदमी किसी लालच मे पड़ जाये, और तुम बात नेक और भली कहा करो।

औरतों को हुक्म दिया गया है कि घर ही में रहा करें बेज़रूरत घर से बाहर न निकला करें।

وَقَرْنَ فِىْ بُيُوْتِكُنَّ وَلَا تَبَرَّجْنَ تَبَرُّجَ الْجَاهِلِيَّةِ الْاُوْلٰى (احزاب:٣٣)

'वक़रना फ़ी बुयूतिकुन्ना वला तबर्रजना तबर्रुजल जाहिलिय्यतिल ऊला।' (सूरः अहज़ाब 33)

अनुवादः- और अपने घरों मे ठहरी रहो, पहली जाहिलियत के ज़माने जैसी सज धज दिखाती न फिरो।

अगर औरतों को घर से बाहर निकलने की ज़रूरत पेश आ जाये तो भी वे पर्दा किये हुए निकलें जिस की सूरत यह है-

يٰٓاَيُّهَا النَّبِىُّ قُلْ لِّاَزْوَاجِكَ وَبَنٰتِكَ وَنِسَآءِ الْمُؤْمِنِيْنَ يُدْنِيْنَ عَلَيْهِنَّ مِنْ جَلَابِيْبِهِنَّ ذٰلِكَ اَدْنٰى اَنْ يُّعْرَفْنَ فَلَا يُؤْذَيْنَ وَكَانَ اللّٰهُ غَفُوْرًا رَّحِيْمًا. (احزاب:٥٩)

"या अय्युहन्नबिय्यु कुल लिअज़्वाजिका व बनातिका व निसाइल मोमिनीना युदनीना अलैहिन्ना मिन जलाबीबिहिन्ना, ज़ालिका अदना अंय्युअरफ़्ना फला यूज़ैना, व कानल्लाहु ग़फ़ूररहीमा।"

अनुवादः- ऐ नबी! अपनी बीवियों, बेटियों और मुसलमानों की औरतों से कह दीजिये कि अपने ऊपर चादरों का एक हिस्सा लटका लिया करें। यह वह कम से कम पहचान है जिस से लोग उन का शरीफ़ और शर्म व हयादार होना पहचान लें फिर उन्हें सताने की हिम्मत न करें। अल्लाह बहुत ही माफ़ करने वाला और महरबान है।

औरत की हयादारी और पर्दा करना उसे एहतिराम के लायक़ बना देते है, इस लिये उसे छेड़ने की हिम्मत किसी आवारागर्द को नहीं होती और उस की पवित्रता सुरक्षित रहती है। बेपर्दा निकलने वाली औरत के विपरीत जो नज़रबाज़ों को ख़ुद दावत देती है और इसी लिये उस की पवित्रता भी आम नज़रों में नहीं रहती।

हदीस में हज़रत इब्ने मसऊद रज़िअल्लाहु अनहु से रिवायत है कि रसूल अल्लाह ﷺ ने फ़रमाया औरत 'औरह' है जब वह बेपर्दा निकलती है तो शैतान उस को तकता है। (तिर्मिज़ी)

लुग़त/डिक्श्नरी में औरह का अर्थ नंगा, खुला और ग़ैर महफ़ूज़ है।

उम्मुलमोमिनीन उम्मे सलमा (र०) बयान फ़रमाती हैं कि मैं और मैमूना (र०) आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास थीं कि अचानक इब्ने उम्मे मकतूम (र०) आये। आप ﷺ ने हम दोनों से फ़रमाया 'इन से पर्दा करो' मैं ने कहा या रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम क्या वह नाबीना (अंधा) नहीं हैं? वह तो हमें देख नहीं सकते, आप ने फ़रमाया क्या तुम दोनों भी अंधी हो? तुम उन्हें नहीं देख सकतीं? (अबू दाऊद, तिर्मिज़ी)

हज़रत अबू मूसा अशअरी (र०) ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह क़ौल नक़ल किया है-

'जो आँख बुरी नज़र या ख़्वाहिश से किसी अजनबी मर्द या औरत को देखती है वह (आँख) ज़ानिया है।' (तिर्मिज़ी, अबू दाऊद)

क़ुरआन मजीद में सूरह नूर की आयत 31 इन अहकाम पर (समिलित) है-

وَقُلْ لِلْمُؤْمِنٰتِ يَغْضُضْنَ مِنْ اَبْصَارِهِنَّ وَيَحْفَظْنَ فُرُوْجَهُنَّ وَلَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا مَا ظَهَرَ مِنْهَا وَلْيَضْرِبْنَ بِخُمُرِهِنَّ عَلٰى جُيُوْبِهِنَّ.

'कुल लिलमोमिनाति यग़्ज़ुज़्ना मिन अबसारिहिन्ना व यहफ़ज़्ना फ़ुरूजहुन्ना वला युबदीना ज़ीनतहुन्ना इल्ला मा ज़हरा मिनहा वलयज़रिब्ना बिख़ुमुरिहिन्ना अला जुयूबिहिन्ना।'

अनुवादः- ऐ नबी ﷺ! मोमिन औरतों को हुक्म दीजिये कि वे नज़रें नीची रखें यानी इधर-उधर (जिस में बुरे दृश्य, फ़िल्म और टी वी भी शामिल हैं) न देखें, अपनी शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करें और अपना बनाव सिंगार (इस के अलावा कि जो ज़ाहिर हो जाये) किसी को न दिखायें और अपने सीनों पर दुपट्टों के आँचल डाले रहें (यानी सिर और सीना बिल्कुल ढका रहे)।

बनाव सिंगार से मुराद जिस्म की वे जगहें हैं जिन का सिंगार किया जाता है और ख़ुद ज़ाहिर हो जाने वाली जगहों में चेहरा हाथों की उंगलियाँ और पैर हैं जिन को ढका नहीं रखा जा सकता। आगे उन लोगों का बयान है जिन के सामने आना जाइज़ है-

وَلَا يُبْدِيْنَ زِيْنَتَهُنَّ اِلَّا لِبُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اٰبَآئِهِنَّ اَوْ اٰبَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اَبْنَآئِهِنَّ اَوْ اَبْنَآءِ بُعُوْلَتِهِنَّ اَوْ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ اِخْوَانِهِنَّ اَوْ بَنِيْٓ اَخَوٰتِهِنَّ اَوْ نِسَآئِهِنَّ اَوْ مَا مَلَكَتْ اَيْمَانُهُنَّ اَوِ التّٰبِعِيْنَ غَيْرِ اُولِى الْاِرْبَةِ مِنَ الرِّجَالِ اَوِ الطِّفْلِ الَّذِيْنَ لَمْ يَظْهَرُوْا عَلٰى عَوْرٰتِ النِّسَآءِ.

'वला युबदीना ज़ीनतहुन्ना इल्ला लिबुऊलतिहिन्ना औव आबाइहिन्ना औव आबाइ बुऊलतिहिन्ना औव अब्नाइहिन्ना औव अब्नाइ बुऊलतिहिन्ना औव इख़वानिहिन्ना औव बनी इख़वानिहिन्ना औव बनी अख़वातिहिन्ना औव निसाइहिन्ना औव मा मलकत ऐमानुहुन्ना अवित्ताबिईना ग़ैरि उलिल-इरबति मिनर्रिजालि अवित्तिफ़्लिल्लज़ी लम यज़हरू अला औरातिन्निसाई।

अनुवादः- अपना बनाव सिंगार शौहरों के अलावा किसी को न दिखायें, या अपने बाप को, या ससुर को, या अपने बेटों या शौहर के बेटों या भाइयों को, या भाइयों और बहनों के बेटों को, या अपने मेल जोल की औरतों या अपने गुलामों को या उन नौकरों को जिन्हें किसी और क़िस्म की ग़र्ज़ न हो या उन लड़कों को जो औरतों की छुपी हुई बातों को न जानते हों।

भाइयों में हक़ीक़ी, अल्लाती, या अख़यािफ़ी तीनों भाई शामिल हैं, लेकिन चचाज़ाद, फ़ूफ़ीज़ाद, मामूज़ाद और ख़ालाज़ाद भाई नामहरमों में से हैं इस लिये उन के सामने बेपर्दा आना सही नहीं है।

सूरह नूर की इसी आयत में यह हुक्म भी मौजूद है-

وَلَا يَضْرِبْنَ بِاَرْجُلِهِنَّ لِيُعْلَمَ مَا يُخْفِيْنَ مِنْ زِيْنَتِهِنَّ ط

'वला यज़रिब्ना बिअरजुलिहिन्ना लियुअलमा मा युख़फ़ीना मिन ज़ीनतिहिन्ना।'

अनुवादः- वे अपने पैर ज़मीन पर मारती हुई न चलें कि जो सिंगार छुपा रखा है वह लोगों पर ज़ाहिर हो जाये।

ऊपर जो आयतें बयान की गई हैं उन में औरतों को पर्दा करने के अहकाम (आदेश) हैं जिन पर अमल करना हर मुसलमान औरत पर ज़रूरी है। सूरह नूर की आयत न. 30 में मर्दों को भी नज़रें नीची रखने और बुरे दृश्य पर निगाह न डालने के आदेश हैं।

पर्दे का हुक्म सतर को ढकने के हुक्म से अलग है जिस का ज़िक्र नमाज़ और हज के बयान में आ चुका है। सतर के अर्थ छुपाने के हैं। शरीअत की परिभाषा में उन अंगों के छुपाने को कहते हैं जो अगर खुल जायें तो न नमाज़ हो सकती है और न हज हो सकता है।

औरत के तमाम अंग बालों के साथ सतर हैं दो अंगों के अलावा जिन का ज़िक्र रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की हदीस में है।

आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत असमा (र०) से फ़रमाया, ऐ असमा औरत जब बालिग़ हो जाये तो मुनासिब नहीं है कि उस का कोई अंग देखा जाये मगर यह और यह, आप ﷺ ने चेहरे और दोनों हाथों की तरफ़ इशारा किया। (बुख़ारी, मिश्कात)

फ़ुक़हा के नज़दीक आधी आसतीन का कुर्ता या जम्पर पहनना गुनाह है।

जो औरत सिर के बालों और बाज़ुओं को खुला रखती है उस का सतर ढका नहीं रहता इस हालत में न तो नमाज़ पढ़ना जाइज़ है और न किसी मर्द के सामने आना सही है। इसी तरह अगर पेट या पीठ का कुछ हिस्सा खुल जाये तो भी न नमाज़ सही होगी और न किसी के सामने आना जाइज़ होगा।

ज़रूरियाते ज़िन्दगी की माँग में बराबरी:- औरतों को बग़ैर ज़रूरत सिंगार करने से इस लिये रोक दिया गया कि फ़ुज़ूल ख़र्ची को बन्द किया जाये। अरब की जाहिल औरतें सर के बालों को ख़ूबसूरत बनाने के लिये अलग से बाल लगाया करती थीं, इस बारे में आप ने फ़रमाया 'यह एक तरह का झूठ है जो बालों में बढ़ा लिया जाता है' इसी झूट और धोके की बुनियाद पर गोदने गुदवाने, चेहरे की रूएँ साफ़ करने, हद से ज़्यादा काट छांट करने, दाँतों को चमकीला बनाने से मना किया गया है। (मुसनद अहमद)

हदीस में ऐसी औरत से निकाह करने का हुक्म दिय गया है जो दीनदार और अख़्लाक़ वाली हो और कम से कम ज़िन्दगी की ज़रूरतों पर गुज़ारा करने वाली हो। क़ुरआन मजीद में अज़्वाजे मुतह्हरात को संबोधित करते हुए जो चेतावनी है वह नफ़क़ा के बयान में ज़िक्र की जा चुकी है।

एहसान मानना:- औरतों में एक आम कमज़ोरी यह है कि ज़रा सी बदसुलूकी हो जाने पर उम्र भर के अच्छे व्यवहार को भुला कर

सिर्फ़ उस की बदसुलूकी को याद करती हैं और याद दिलाती हैं। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि ज़्यादातर दोज़ख़ में डाली जाने वाली औरतें वे होंगी जो नाशुक्री की वजह से अज़ाब की मुस्तहिक़ होंगी 'यानी वे औरतें जो अपने शौहरों की नाशुक्री करती हैं' इस हदीस में यह हिदायत औरतों के लिये है कि वे शौहरों के साथ शुक्रगुज़ारी और एहसानशनासी का रवय्या इख़्तियार करें। शौहर अपनी मेहनत से जो कुछ कमा कर दे सके उसे ख़ुदा का शुक्र अदा कर के ख़ुशदिली के साथ कुबूल करें। हाँ अगर शौहर कंजूसी की वजह से बीवी के जाइज़ हुकूक़ अदा नहीं करता तो उस की मलामत नाशुक्री नहीं होगी।

शौहर को समझाने बुझाने का हक़:- हुकूक़ व फ़राइज़ के बयान में पहले ही ज़िक्र हो चुका है कि ख़ानदान के प्रबंध को ठीक रखने के लिये अल्लाह तआला ने मर्द को क़व्वाम बनाया है। क़व्वाम के परिचय में ज़िम्मेदारी और देख रेख शामिल है इस का तक़ाज़ा है कि मर्द को अपने घर को चालाने के लिए संजीदा होना चाहिये। ज़्यादा गुस्से वाले और कम समझ वाले लोग इस ज़िम्मेदारी को नहीं निभा सकते। इस्लामी शरीअत ने ऐसे मर्द को जो ज़िम्मेदारी निभाने की योग्यता रखता हो इस की इजाज़त दी है कि जब अपनी बीवी में सरकशी देखे तो उसे चेतावनी दे और नसीहत करे अपनी बड़ाई जताने के लिये नहीं बल्कि उस के सुधार के लिये-

وَالّٰتِیْ تَخَافُوْنَ نُشُوْزَهُنَّ فَعِظُوْهُنَّ وَاهْجُرُوْهُنَّ فِی الْمَضَاجِعِ
وَاضْرِبُوْهُنَّ فَاِنْ اَطَعْنَكُمْ فَلَا تَبْغُوْا عَلَيْهِنَّ سَبِيْلًا. (نساء: ٣٣)

'वल्लाती तख़फ़ूना नुशूज़हुन्ना फ़इज़ूहुन्ना वह्जुरूहुन्ना फ़िल मज़ाजिइ वज़रिबूहुन्ना फ़इन अतअनकुम फ़ला तबग़ू अलैहिन्ना सबीला।'

अनुवाद:- और जिन औरतों में तुम नुशूज़ सरकशी देखो तो (1) उन्हें समझाओ बुझाओ फिर (2) उन्हें अपनी ख़्वाबगाहों में छोड़ कर अलग

रहो, और फिर भी न मानें (3) तो मारो। तो अगर वे तुम्हारा कहना मान लें तो फिर उन पर सख़्ती की राह तलाश न करो।

नुशूज़ का अर्थ उठ जाना है यानी औरत के दिल से निकाह के रिश्ते का एहतिराम और लिहाज़ उठ जाना। यह आयत उस आयत के तुरन्त बाद है जिस में औरतों की बेहतरीन ख़ूबियाँ बयान की गई हैं यानी सालिहात नेक औरतें क़ानितात आज्ञापालन करने वाली और हाफ़िज़ात लिलग़ैब शौहर की ग़ैर मौजूदगी में हिफ़ाज़त करने वाली अपनी भी और शौहर के माल की भी, तो इस आयत में नुशूज़ के अर्थ में वह औरत है जो अपनी इज़्ज़त व आबरू, शौहर के माल व जायदाद की हिफ़ाज़त न करे और मारूफ़ (नेक बातों) में उस का आज्ञापालन न करे तो ऐसी औरत को समझाया बुझाया और सख़्ती की जा सकती है जिस की तीन सूरतें बताई गई हैं–

पहली सूरत यह है कि उन्हें नर्मी से समझाओ, यहाँ तक कि वे तुम्हारी बात मान लें। दूसरी सूरत यह है कि कुछ दिनों के लिये उन के पास लेटना बैठना और सोना छोड़ दो या ईला कर लो यानी निश्चय कर लो कि इतने वक़्त तक उस के पास नहीं जाओगे (ईला का परिचय आगे आता है) ये बातें ऐसी हैं कि अगर औरत में फ़ितरी ख़्वाहिश है कि शौहर का ध्यान हम से न हटे तो अपनी ग़लत आदत को ज़रूर बदलेगी लेकिन अगर उस पर इस का कोई असर न हो तो आख़िरी दर्जे में उसे हल्की मार की सज़ा भी दी जा सकती है मगर मुंह पर मारना मना है। यह आख़िरी इजाज़त इस्तेमाल करने में अगर ज़ुल्म व ज़्यादती होगी तो गुनाह भी बहुत है। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज्जतुल विदाअ के ख़ुत्बे में औरतों के बारे में जो आख़िरी हिदायात दी हैं उन्हें अच्छी तरह याद कर लेना चाहिये–

وَاتَّقُوا اللّٰهَ فِي النِّسَاءِ فَاِنَّهُنَّ عِنْدَكُمْ عَوَانٍ وَلَكُمْ عَلَيْهِنَّ اَنْ لَّا يُوْطِئْنَ فُرُشَكُمْ اَحَدًا تَكْرَهُوْنَهُ فَاِنْ فَعَلْنَ فَاضْرِبُوْهُنَّ غَيْرَ مُبَرِّحٍ

'वत्तकुल्लाहा फ़िन्निसाई फ़इन्नहुन्ना इनदकुम अवानिन वलकुम अलैहिन्ना अल्ला यूतीना फ़रूशकुम अहदन तकरहूनहू फ़इन फ़अलना फ़ज़रिबूहुन्ना गै़रू मुबर्रजिन।'

अनुवाद:- औरतों के बारे में ख़ुदा से डरो वे तुम्हारी क़ैद में हैं उन पर तुम्हारा यह हक़ लाज़िम है कि तुम्हारे फ़र्श पर किसी को क़दम न रखने दें जिस को तुम नापसंद करते हो अगर वे ऐसा करें तो उन्हें इस तरह मारो जो ज़ाहिर न हो।

मतलब यह है कि घर में ऐसे लोगों को न आने दें जिन्हें शौहर नापसंद करता है या जिन की तरफ़ से उस को कुछ शक व शुबहा है, तो अगर वे ऐसा करें और भलाई में तुम्हारी इताअत (आज्ञापालन) न करें तो उन को मारो, इस तरह कि चोट का निशान न पड़े। कुछ मुफ़स्सिरीन ने लिखा है कि मिस्वाक वग़ैरा छोटी चीज़ से, इस्लाम ने जब जानवरों को भी सख़्त चीज़ से मारने की इजाज़त नहीं दी है तो औरतों के लिये ऐसी इजाज़त कैसे दी जा सकती है।

ईला का बयान:- ऊपर ईला का ज़िक्र किया गया है। लुग़त/डिक्श्नरी में इस शब्द का अर्थ क़सम खाना ह। इस्लाम से पहले अरबों में यह तरीक़ा राइज था कि किसी बीवी के क़रीब न जाने की क़सम खा लेते थे। मतलब यह होता था कि उस से बीवी जैसा संबंध नहीं रहेगा, इस के लिये ईला का शब्द बोला जाता था, और जिस औरत से ईला किया जाता था वह हमेशा के लिये हराम हो जाती थी। इस्लामी शरीअत ने इस इस्तिलाह (परिभाषा) को बाक़ी रखा लेकिन उस का हुक्म बदल दिया। बीवी के पास न जाने की क़सम बग़ैर शर्त के भी हो सकती है और वक़्त मुक़र्रर कर के भी। यानी क़सम खा कर कहा जा सकता है कि मैं अपनी बीवी से मुबाशरत नहीं करूँगा या चार महीने तक या उस से ज़्यादा समय तक या सारी उम्र भी उस के पास नहीं जाऊँगा, तो अगर चार महीने से कम वक़्त मुक़र्रर किया हो चाहे एक ही दिन कम हो तो वह

शरीअत की नज़र में ईला नहीं है, बाक़ी सूरतों में ईला होगा।

ईला की शरई तारीफ़:- बीवी के क़रीब न जाने की क़सम खाना, बग़ैर शर्त के या चार महीने या उससे ज़्यादा दिनों के लिये या बीवी के क़रीब जाने का दारोमदार किसी मुश्किल काम पर रख देना।

क़सम से अल्लाह के नाम या उस की सिफ़ात (गुणों) में से किसी सिफ़त (गुण) की क़सम मुराद है, किसी मुश्किल काम पर दारोमदार रख देने का मतलब यह है कि बीवी से क़रीब होने को हज से, या तलाक़ से या रोज़ों से बाँध दिया जाये। मिसाल के तौर पर अगर कहे कि अगर मैं तुम से मुबाशरत करूँ तो मुझ पर हज करना वाजिब होगा या इतने रोज़े रखना वाजिब होंगे या मेरी फ़लाँ बीवी को तलाक़ हो जायेगी या मुझ पर कुर्बानी या सौ रकअत पढ़ना लाज़िम होगा। यह तमाम सूरतें बीवी से क़रीब होने के मुश्किल काम से बाँधने की हैं।

ईला के परिचय में ईला करने वाले शौहर का मुबाशरत के क़ाबिल होना और जिस बीवी से ईला किया जाये उस का मुबाशरत के क़ाबिल होना दाख़िल है। कुछ फ़ुक़हा ने मुकल्लफ़ शब्द की बढ़ोतरी की है यानी ईला करने वाला इस्लामी अहकाम को पूरा करने वाला हो (बच्चा या मजनून न हो)।

ईला के अरकान और शर्तें:- फ़ुक़हा ने ईला के छः अरकान लिखे हैं (1) महलूफ़ बिही, यानी जिस की क़सम खाई जाये (2) महलूफ़ अलैह, यानी जिस बात पर क़सम खाई जाये (3) सीग़ा यानी क़सम के शब्द (4) मुद्दत यानी वह समय जिस के लिये क़सम खाई है अर्थात (यानी) चार महीने या उस से ज़्यादा के लिये (5) शौहर (6) बीवी।

तो अगर किसी ने कहा कि क़सम अल्लाह की मैं अपनी बीवी से मुबाशरत नहीं करूँगा। इस में अल्लाह महलूफ़ बिही है और मुबाशरत का छोड़ना महलूफ़ अलैह। और अगर कहा कि मुझ पर

तलाक़ लाज़िम होगी बख़ुदा मैं मुबाशरत न करूँगा। इस वाक्य में तलाक़ महलूफ़ बिही है और मुबाशरत का छोड़ना महलूफ़ अलैह, कभी-कभी बीवी ही को महलूफ़ अलैह कहा जाता है क्योंकि मुबाशरत का अर्थ उस की ज़ात से संबंधित है क़सम के शब्दों के सही होने की कुछ शर्तें हैं-

1. एक बीवी के साथ किसी दूसरी को शरीक न करे। अगर ऐंसा किया गया तो यह ईला नहीं माना जायेगा क्योंकि अगर सिर्फ़ बीवी से मुबाशरत कर ली तो क़सम नहीं टूटी और कफ़्फ़ारा लागू न होगा।

2. ईला की मुद्दत में से कोई वक़्त अलग न किया जाये। जैसे अगर कहा कि अल्लाह की क़सम मैं एक दिन के अलावा साल भर मुबाशरत न करूँगा तो इस को ईला नहीं माना जायेगा। हाँ अगर किसी दिन मुबाशरत कर ली तो देखा जायेगा कि अगर साल पूरा होने में चार महीने से कम बाक़ी हैं तो ईला नहीं माना जायेगा। अगर चार महीना या उस से ज़्यादा वक़्त बाक़ी है तो बीवी से क़रीब होने वाले दिन का सूरज डूबते ही उस को ईला करने वाला माना जायेगा फिर वे अहकाम लागू होंगे जिन का ज़िक्र आयेगा।

3. यह कि क़सम में किसी ख़ास जगह की क़ैद न हो, अतः अगर जगह की क़ैद लगाई गई तो ईला न होगा। क्योंकि किसी दूसरी जगह पर मुबाशरत करना सही रहेगा।

4. मुबाशरत के साथ किसी और ख़िदमत को न मिलाये। जैसे यह कहा कि 'अगर मैं तुझ से मुबाशरत करूँ और फ़लां ख़िदमत लूँ तो तुझ को तलाक़ है' तो इस से ईला न होगा।

5. अगर साफ़ शब्द इस्तेमाल करने के बजाये इशारे में कहा गया जैसे अल्लाह की क़सम मैं तुझे हाथ न लगाऊँगा, या पास न आऊँगा या हमबिस्तर न हूँगा तो जब तक इन शब्दों से मुबाशरत करने की नियत न हो ईला न होगा।

ईला के बारे में अहकाम:- जब खुदा की क़सम खा कर ईला कर लिया तो उस का यह हुक्म कुरआन में दिया गया है-

لِلَّذِيْنَ يُؤْلُوْنَ مِنْ نِّسَآئِهِمْ تَرَبُّصُ اَرْبَعَةِ اَشْهُرٍ فَاِنْ فَآؤُ فَاِنَّ اللّٰهَ غَفُوْرٌ رَّحِيْمٌ. وَاِنْ عَزَمُوا الطَّلَاقَ فَاِنَّ اللّٰهَ سَمِيْعٌ عَلِيْمٌ. (بقره:٢٢٦)

'लिल्लज़ीना यूलूना मिन निसाइहिम तरब्बुसु अरबअति अशहुरिन फ़इन फ़ाऊ फ़इन्नल्लाहा ग़फ़ूरूर्रहीम। वइन अज़मुत्तलाक़ा फ़इन्नल्लाहा समीउन अलीम।'

अनुवाद:- जो लोग अपनी बीवियों से ईला करते हैं उन्हें चार महीने की मुहलत है, अगर वे क़सम से पलट जायें तो अल्लाह माफ़ करने वाला और रहम करने वाला है, अगर तलाक़ ही का पक्का इरादा कर लिया तो अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है।

ईला करने का जो रिवाज अरब वालों में था जिस से हमेशा के लिये बीवी मर्द पर हराम हो जाती थी और फिर सारी उम्र घुटती रहती थी इस्लाम ने इस ज़ुल्म को ख़त्म कर दिया और यह हुक्म दिया कि जो लोग अपनी बीवियों से मुबाशरत न करने की क़सम खा लेते हैं उन्हें चार महीने की मुहलत है या तो वे पलट कर मुबाशरत कर लें जिस के न करने की क़सम खाई है और क़सम का कफ़्फ़ारा अदा कर दें तो अल्लाह उन्हें माफ़ करेगा, इस से मालूम हुआ कि ईला खुद में बुरा काम और औरत पर ज़ुल्म और तकलीफ़ पहुंचाने की तरह है। इस हालत का तक़ाज़ा यह था कि मर्द को मुहलत ही न दी जाती, मगर चार महीने की मुहलत देने में हिकमत यह है कि उतने दिनों की जुदाई उस को अपने किये पर शर्मिन्दा होने और बीवी की तरफ़ पलटने का मौक़ा दे देगी। दूसरी तरफ़ यही जुदाई बीवी के अन्दर सुधार का ज़रिया भी बन जायेगी और जो बात शौहर की नाराज़गी का सबब बनी उसे छोड़ने की आदत डालेगी। इस लिये इतने दिनों तक जुदा रहना मियाँ बीवी के बीच सुधार पैदा

करने के लिये ज़रूरी है। अब अगर इस जुदाई का कुछ असर न हो और एक को दूसरे की परवाह न रही तो जुदा होना आसान होगा। यह फ़रमान कि 'अगर तलाक़ ही का पक्का इरादा कर लिया है तो अल्लाह सब कुछ सुनता और जानता है' इस का एक मतलब तो यह है कि जब छोड़ देने का ही इरादा कर लिया तो बीवी के पास न जायें, चार महीने की मुद्दत पूरी होने के बाद खुद बखुद बीवी को तलाक़ हो जायेगी, चाहे मर्द तलाक़ न दे या औरत तलाक़ न माँगे। दूसरा मतलब यह है कि ईला की मुद्दत गुज़र जाने के बाद अगर तलाक़ ही देने का इरादा कर लें तो अल्लाह (उन की क़समों को) सुनने वाला और (जुल्म व तकलीफ़ को जो बीवी पर रूजूअ न करने की सूरत में हुई) जानने वाला है। यानी उस शौहर को चेतावनी दी गई है तो ईला की मुद्दत गुज़र जाने पर रूजूअ नहीं करता और तलाक़ ही देना चाहता है। अगर यह जुल्म के तौर पर है तो अल्लाह सुनने वाला और जानने वाला है, वह उस की सज़ा ज़रूर देगा।

फ़िक़ह हनफ़ी के मुताबिक़ खुदा की क़सम खा कर ईला करने वाला अगर चार महीने गुज़रने से पहले बीवी से मुबाशरत कर ले तो उसे क़सम का कफ़्फ़ारा देना पड़ेगा और ईला ख़त्म हो जायेगा। अगर चार महीने गुज़र गये और जिस बीवी से ईला किया है उस से मुबाशरत न हुई तो बीवी पर एक तलाक़ पड़ जायेगी बग़ैर इस के कि यह मुआमला शरीअत के हाकिम के पास लाया जाये या शौहर खुद तलाक़ दे फिर अगर वह सारी मुद्दत जिस का ईला करते वक़्त ज़िक्र किया था गुज़र जाये और शौहर मुबाशरत न करे तो तलाक़े बायना पड़ जायेगी यानी निकाह का रिश्ता टूट जायेगा और जब तक दोनों फिर से निकाह न करें यह रिश्ता क़ायम नहीं होगा।

पहले बयान किया जा चुका है कि ईला दो तरह से किया जाता है (1) वक़्त की क़ैद के साथ (2) बग़ैर वक़्त मुक़र्रर किये हुए दोनों क़िस्म के ईला का आम हुक्म यह है कि अगर गुस्से में या चेतावनी के तौर पर शौहर ने ऐसा कहा था तो शौहर को चार महीने

के अन्दर ही अपनी क़सम तोड़ देना चाहिये यानी बीवी से बीवी जैसे संबंधा को क़ायम कर लेना और क़सम का कफ़्फ़ारा दे देना चाहिये। अगर ऐसा न किया तो चार महीने गुज़रते ही तलाक़े बाइन पड़ जायेगी, अगर शौहर ने कोई मुद्दत ईला की मुक़र्रर नहीं की थी बल्कि यूँ कहा था कि 'ख़ुदा की क़सम मैं कभी तुझ से मुबाशरत न करूँगा' तो भी चार महीने गुज़र जाने के बाद तलाक़ पड़ जायेगी और दोबारा निकाह के बाद ही संबंध क़ायम हो सकेगा अब दोनों क़िस्म के ईला में फ़र्क़ यह है कि पहली सूरत में अगर दोबारा निकाह कर लेने के बाद वह चार छः महीने या साल भर तक भी मुबाशरत न करे तो दोबारा तलाक़ नहीं पड़ेगी, मगर दूसरी सूरत में अगर वह चार महीने मुबाशरत न करे तो दोबारा तलाक़ पड़ जायेगी। अब अगर दोबारा निकाह पढ़ाने के बाद फिर चार महीने मुबाशरत नहीं की तो तीसरी तलाक़ पड़ जायेगी अब बग़ैर हलाले के दोबारा निकाह नहीं कर सकता।

'अगर उस ने ख़ुदा की क़सम खाये बग़ैर इस तरह कहा था कि अगर मैं तुझ से मुबाशरत करूँ तो मुझ पर हज करना या एक महीने के रोज़े रखना या एक सौ रूपया सदक़ा (दान) करना वाजिब है' अगर इस अहद के बाद चार महीने के अन्दर मुबाशरत कर ली तो अहद का पूरा करना ज़रूरी होगा, क़सम का कफ़्फ़ारा न होगा, लेकिन अगर चार महीने तक मुबाशरत न होगी तो चार महीने पूरे होते ही तलाक़े बाइन पड़ जायेगी और दोबारा निकाह के बाद ही उस से फ़ायदा उठा सकेगा।

तलाक़ का बयान

तलाक़ की परिभाषाः– लुग़त/डिक्शनरी में तलाक़ का अर्थ गाँठ को खोल देना है चाहे वह गाँठ नज़र आती हो या नज़र न आती हो। जैसे ऊँटनी की गाँठ को खोल कर उसे छोड़ दिया जाये तो कहते हैं **'तुलिक़ननाक़ता तलाक़न'** इसी तरह कोई शौहर बीवी से अलग हो जाये तो कहते हैं **'तुलिक़ातिल मरअतु'** (औरत को छोड़ दिया) ततलीक़ का शब्द भी बंदिश हटाने के अर्थ में तलाक़ की तरह इस्तेमाल होता है, अतः कहते हैं **'तल्लक़र्रजुलु इमरअतहू तलाक़न'** (उस शख़्स ने अपनी बीवी को तलाक़ दे दी) तलाक़ का शब्द इस्लाम से पहले भी मियाँ बीवी के बीच जुदाई के अर्थ में इस्तेमाल होता था, इस्लामी शरीअत की परिभाषा में इस का मतलब निकाह के ज़रिए लगाई गई गाँठ को खोल देना या निकाह का ख़त्म हो जाना है या ख़ास शब्दों के साथ निकाह के गाँठ में ऐसी कमी डाल देना है जिस से गाँठ पूरी तरह खुलने में कमी रह जाये। निकाह ख़त्म होने का मतलब यह है कि निकाह का संबंध बाक़ी न रह जाये और आने वाले दिनों में बीवी उस के लिये पूरी तरह हराम हो जाये, यह उस सूरत में होगा जब बीवी को तीन तलाक़ें दी जायें और निकाह के रिश्ते में कमी वाक़े होने का मतलब यह है कि निकाह बिल्कुल ख़त्म होने में कमी रह जाये। यह उस सूरत में होगा जबकि तलाक़ रजई दी जाये दूसरे शब्दों में इस तरह कहा जा सकता है कि बीवी पूरे तौर पर अपने शौहर को हलाल थी, उस वक़्त वह तीन तलाक़ों का मालिक था। तलाक़े रजई के बाद वह दो तलाक़ों का मालिक रह गया। अब अगर वह उस तलाक़ को वापस ले ले तो बीवी फिर मुकम्मल तौर पर हलाल हो जायेगी लेकिन अगर वह तलाक़ से

रूजूअ नहीं करता और बाक़ी दो तलाक़ें भी दे देता है तो बीवी हलाल नहीं रहेगी। रजई तलाक़ से निकाह नहीं टूटता सिर्फ़ निकाह के रिश्ते में फ़र्क़ आ जाता है जिस को दूर करने से पहले वह बीवी के पास नहीं जा सकता, लेकिन इस के बावजूद भी वह उसी की बीवी रहती है और शौहर को एक मुक़र्ररह मुद्दत के अन्दर या तो तलाक़ वापस लेना पड़ती है या बाक़ी तलाक़ें दे कर उस से बिल्कुल निकाह का रिश्ता तोड़ लेना पड़ता है जिस का बयान आगे आ रहा है। मुक़र्ररह मुद्दत को शरीअत की परिभाषा में इद्दत कहते हैं।

तलाक़ पसंदीदा काम नहीं है:- तलाक़ की ज़रूरत सिर्फ़ उस वक़्त पड़ती है जब औरत और मर्द उन हुकूक़ व फ़राइज़ को अदा नहीं करते जो इस्लामी शरीअत ने मुक़र्रर किये हैं या दोनों में से कोई एक दूसरे का हक़ मारता है या किसी की तरफ़ से कोई अख़लाक़ी बुराई ज़ाहिर होती है जिस की वजह से नफ़रत व दुश्मनी की सूरत पैदा होती है और मुहब्बत बाक़ी नहीं रहती। ख़ैरख़्वाही और रहमत का जज़्बा ख़त्म हो जाता है और एक दूसरे के व्यवहार को बर्दाश्त करने को तैयार नहीं रहता तो इस सूरत में इस्लामी शरीअत औरत और मर्द दोनों को हक़ देती है कि अगर औरत मर्द की ज़िम्मेदारी में रहने से निकलना चाहे तो ख़ुलअ़ और जुदाई के ज़रिए और मर्द औरत की ज़िम्मेदारी को छोड़ना चाहे तो तलाक़ के ज़रिए निकाह के रिश्ते को तोड़ कर आज़ाद हो जायें। यह हक़ देने के बावजूद कुरआन व हदीस में निकाह के मुआहिदे को तोड़ने से पहले संजीदगी से ग़ौर करने और संबंध को जोड़ने की कोशिश करने की हिदायत दी गई है, कुरआन में है:-

فَعَسٰى اَنْ تَكْرَهُوْا شَيْئًا وَّيَجْعَلَ اللّٰهُ فِيْهِ خَيْرًا كَثِيْرًا۔

(نساء:۱۹)

'फ़असा अन तकरहू शैअंव व यजअलल्लाहु फ़ीहि ख़ैरन कसीरा।'

अनुवादः- हो सकता है कि तुम्हें कोई बात बुरी लगती हो और अल्लाह ने उस में बहुत सी भलाईयाँ रखी हों।

हो सकता है कि बीवी की कोई आदत या शक्ल व सूरत तुम्हें नापसंद हो मगर उस में ऐसी ख़ूबियाँ भी हो सकती हैं जो किसी दूसरे में न हों। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया-

'हलाल चीज़ो में सब से ज़्यादा नापसंदीदा बात अल्लाह के नज़दीक तलाक़ है।' (अबू दाऊद, इब्ने माजा)

यानी अगरचे तलाक़ को आख़िरी उपाय के तौर पर इस्तेमाल करने की इजाज़त है मगर हक़ीक़त में यह एक नापसंदीदा बात है, अगर शौहर और बीवी में कोई इख़्तिलाफ़ (मतभेद)की वजह हो जाये तो उसे दूर करने का तरीक़ा क़ुरआन में यह बताया गया है-

وَاِنْ خِفْتُمْ شِقَاقَ بَيْنِهِمَا فَابْعَثُوْا حَكَمًا مِّنْ اَهْلِهٖ وَحَكَمًا مِّنْ اَهْلِهَا، اِنْ يُّرِيْدَا اِصْلَاحًا يُّوَفِّقِ اللّٰهُ بَيْنَهُمَا اِنَّ اللّٰهَ كَانَ عَلِيْمًا خَبِيْرًا. (نساء:٣٤)

'व इन ख़िफ़्तुम शिक़ाक़ा बैनिहिमा फ़बअसू हकमम्मिन अहलिही व हकमम्मिन अहलिहा, इंय्यूरीदा इस्लाहय्युवफ़्फ़िक़िल्लाहु बैनहुमा, इन्नल्लाहा काना अलीमन ख़बीरा।' (सूरः निसा 34)

अनुवादः- अगर दोनों में बहुत ज़्यादा इख़्तिलाफ़ का डर हो तो शौहर के घर वालों में से एक समझदार शख़्स और बीवी के घर वालों में से एक न्याय करने वाले शख़्स को भेज दो अगर दोनों भला चाहने वाले होंगे तो अल्लाह ज़रूर दोनों में सुलह की तौफ़ीक़ देगा, अल्लाह जानने वाला और ख़बर रखने वाला है।

दोनों आदमी जो सुलह करने वाले हों वे ऐसे हों जो वास्तव में सुलह व सफ़ाई चाहते हों और ख़ुद शौहर और बीवी उन की बात को मानने वाले हों तब अल्लाह की तौफ़ीक़ शामिल होगी।

रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने भी तलाक़ को पसन्द

नहीं फ़रमाया, और सहाबए किराम को भी एक या दो के अलावा (वह भी दीनी ज़रूरत की बिना पर) किसी को तलाक़ देने की इजाज़त नहीं दी, आप ﷺ की एक हदीस है-

'अल्लाह तआला ज़्यादा मज़ा चखने वालों और ज़्यादा मज़ा चखने वालियों को पसन्द नहीं करता।'

सही मुस्लिम में यह हदीस नक़ल हुई है कि शैतान बुराइयाँ फैलाने और लोगों को बहकाने के कामों में सब से ज़्यादा जिस चीज़ से खुश होता है वह शौहर और बीवी में जुदाई पैदा करना है। तलाक़ शैतान की पसंदीदा चीज़ क्यों है? इस लिये कि तलाक़ सिर्फ़ दो शख़्सों को एक दूसरे से जुदा नहीं करती बल्कि उस से न जाने कितने रिश्ते कट जाते हैं। शौहर के और बीवी के कितने रिश्तेदार और क़रीबी लोग एक दूसरे के साथ क़रीबी संबंध क़ायम कर चुके होते हैं, जो कल तक बेगाने थे उन के आपस में प्रेम व मुहब्बत के रिश्ते क़ायम हो चुके होते हैं, तलाक़ के ज़रिए ये सब बातें यही नहीं कि एक ही बार ख़त्म हो जाती हैं बल्कि ख़ानदानों और घरानों में दुश्मनी की बुनियाद पड़ जाती है और आने वाले वक़्त में कितने मसाइल खड़े हो जाते हैं, अगर बच्चे हैं तो उन की परवरिश और तर्बियत का सवाल पैदा होता है। गोया यह तलाक़ एक घर का नहीं पूरे समाज का मसला बन जाता है और उस की पाकीज़गी और अच्छाइयाँ दाग़दार हो जाती हैं। इतना बड़ा बिगाड़ और फ़साद किसी अच्छे समाज में पैदा करना शौतान को ज़रूर पसन्द होना चाहिये, खुदा और रसूल को कैसे पसन्द हो सकता है।

तलाक़ के अरकान यानी ज़रूरी चीज़ें:- तलाक़ के चार रुक्न हैं। 1. मर्द जिस का निकाह उस औरत के साथ होना साबित हो जिस को वह तलाक़ दे रहा है। तलाक़ निकाह के बंधन को हटा देने का नाम है, इस लिये जब तक यह बंधन साबित न हो उस के हटाने का सवाल ही पैदा नहीं होता। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया है-

'जिस औरत का मालिक न हो उस को तलाक़ नहीं दे सकता।'

2. औरत जो तलाक़ देने वाले के निकाह में हो (बाइन तलाक़ पाई हुई औरत निकाह में नहीं रहती, जबकि रजई तलाक़ पाई हुई निकाह में रहती है जब तक वह इद्दत में हो)

3. तलाक़ के शब्द जो निकाह के बंधन को तोड़ने वाले हों चाहे वह साफ़ तौर से कहे गये हों या इशारे से।

4. नियत यानी वह शब्द जो तलाक़ देने की नियत (इरादे) से कहे गये हों।

तलाक़ की शर्तें:- तलाक़ सही होने की शर्तों में से कुछ का संबंध शौहर से है, कुछ का बीवी से और कुछ का तलाक़ के अल्फ़ाज़ (शब्दों) से है।

1. तलाक़ देने वाला दिमाग़ का ठीक ठाक हो, जुनून वाले शख़्स का तलाक़ देना सही नहीं, लेकिन वह शख़्स जो मज़ा हासिल करने के लिये नशीली चीज़ें इस्तेमाल करे और अक़्ल जाती रहे और इसी हालत में तलाक़ दे दे जो वह तलाक़ पड़ जायेगी, हाँ अगर किसी बीमारी को दूर करने के लिये कोई चीज़ इस ख़याल से इस्तेमाल की कि उस से नशा नहीं होगा और अक़्ल जाती रही और उसी हाल में तलाक़ दे दी तो यह तलाक़ नहीं पड़ेगी।

2. तलाक़ देने वाला बालिग़ हो। ऐसा लड़का जो बालिग़ न हुआ हो और यह न जानता हो कि बीवी के हराम हो जाने का क्या मतलब है तो उस की दी हुई तलाक़ वाक़ेअ न होगी और न बड़ा होने के बाद उस को माना जायेगा।

3. तलाक़ देने वाले को तलाक़ देने पर मजबूर न किया गया हो अपने इख़्तियार से न दी हुई तलाक़ इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के मसलक को छोड़ कर दूसरे इमामों के नज़दीक वाक़ेअ न होगी।

बीवी के संबंध से पहली शर्त यह है कि वह तलाक़ देने वाले मर्द की ज़िम्मेदारी में हो। अगर उस का निकाह टूट चुका है और अभी वह इद्दत में है तो भी उस पर तलाक़ नहीं पड़ेगी क्योंकि वह ऐसी तलाक़ पाई हुई है जिस का निकाह ख़त्म हो चुका है।

दूसरी शर्त यह है कि बीवी सही निकाह से उस की पत्नी हो। अगर मर्द ने किसी औरत से इद्दत के बीच ही शादी कर ली या कोई और ग़लत निकाह कर लिया तो वह उस की बीवी नहीं मानी जायेगी तलाक़ के शब्द से संबंध रखने वाली शर्तें दो हैं-

1. शब्द ऐसे हों जो साफ़ तौर से या इशारे में तलाक़ का मतलब ज़ाहिर करते हों, अगर कोई मर्द किसी नाराज़ी की वजह से बीवी के पास न आये या उसे अपने माँ के घर भेज दे तो उसे तलाक़ नहीं माना जायेगा चाहे वह उस का सामान भी भेज दे और महर भी दे दे, ज़ुबान से शब्द निकाले बग़ैर तलाक़ वाक़ेअ नहीं होगी क्योंकि सिर्फ़ तलाक़ की नियत कर लेना और ज़ुबान से न कहना तलाक़ नहीं कहलायेगी, हाँ लिखित रूप से तलाक़ दी जा सकती है इस शर्त पर कि वह नाम से हो, पढ़ी जा सकती हो। गूंगा शख़्स अगर इशारे से तलाक़ दे और वह इशारा समझा जा सकता हो तो तलाक़ हो जायेगी।

2. मुंह से जो शब्द निकले उस में ज़ुबान की ग़लती का दख़ल न हो और वही उस का मक़सद भी हो जैसे वह यह कहना चाहे कि 'तू ताहिरा है' लेकिन ज़ुबान से निकल गया 'तू तालिक़ा है' तो यह तलाक़ न होगी लेकिन हाकिम इन शब्दों पर तलाक़ का हुक्म दे सकता है क्योंकि वह दिल की बात नहीं जानता।

गुस्से में तलाक़ देना:- ऐसा गुस्सा जिस में अक़्ल व होश बाक़ी रहे और ज़ुबान से कहने वाला अपनी बात को जानता हो कि वह क्या कह रहा है, अगर बीवी को तलाक़ दे दे तो सब के नज़दीक तलाक़

हो जायेगी, हाँ गुस्से की वह हालत जो अक़्ल को बाक़ी न रखे और उसे यह भी मालूम न हो कि वह क्या कह रहा है तो इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के मसलक के अलावा तमाम इमामों के नज़दीक वह मजनून के हुक्म में आयेगा और उस की दी हुई तलाक़ लागू नहीं होगी। लेकिन अगर वह जो कुछ कहता है उसे समझता भी है तो अधिकतर उलमा का ख़याल है कि तलाक़ हो जायेगी। गुस्सा इन्सान की नफ़्सियाती कैफ़ियत का नाम है जो इन्सान के अन्दर मौजूद है। वह खुद में हराम नहीं है, अलबत्ता उसे ऐसे वक़्त में इस्तेमाल करना जिस के लिये वह नहीं बनाया गया हराम है। शराब के विपरीत कि वह हर हाल में हराम है। इस लिये गुस्से की हालत को शराब के नशे पर ख़याल करना सही नहीं है, तो अगर कोई आदमी गुस्से में अपने आपे से बाहर हो जाये और बेहूदा बातें और काम उस से होने लगें, इस हाल में दी हुई तलाक़ वाक़ेअ न होगी।

तलाक़ की क़िस्में:- (क) शरीअत के अहकाम के हिसाब से तलाक़ की क़िस्में वाजिब और हराम (और उन के बीच के दर्जे यानी मुस्तहब, जाइज़ और मकरूह) हैं।

(ख) तलाक़ देते वक़्त तादाद के एतबार से उस की दो क़िस्में हैं तलाक़े सुन्नी और तलाक़ बिदई। यह तक़सीम पहली तक़सीम के ख़िलाफ़ नहीं है।

(ग) शब्द या तलाक़ के वाक्य के एतबार से उसकी क़िस्में ये हैं:-

1. **सरीह तलाक़:** यानी साफ़ शब्दों में तलाक़ देना जिस से कोई दूसरा मतलब तलाक़ के अलावा न निकलता हो।

2. **तलाक़ बिल किनाया:-** यानी साफ़ शब्दों में तलाक़ न हो बल्कि ऐसे शब्दों के ज़रिये तलाक़ दी गई हो जिस से दूसरा मतलब भी निकाला जा सकता हो।

3. **बाइन तलाक़:** यानी शौहर को बीवी से जुदा कर देने वाली

तलाक़ जिस से निकाह ख़त्म हो जाये।

4. **रजई तलाक़:** यानी ऐसी तलाक़ जिस को वापस लिया जा सकता हो।

हर क़िस्म की तलाक़ की तफ़सील यह है:

वाजिब और हराम:- बुनियादी तौर पर हर तलाक़ खुद में मकरूह है क्योंकि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया 'हलाल बातों में सब से ज़्यादा नापसंदीदा बात अल्लाह के नज़दीक तलाक़ है' अगरचे शरीअत ने मियाँ बीवी के बीच जुदाई का हलाल तरीक़ा तलाक़ ही को बताया है, लेकिन उसे बहरहाल मकरूह बताया है और बिलावजह उस पर अमल करना बहुत ज़्यादा नापसंदीदा है, फिर भी ऐसे सबब पेश आ सकते हैं जो कभी तलाक़ को वाजिब कभी मुस्तहब और कभी हराम और कभी मकरूह क़रार देते हैं। तलाक़ वाजिब हो जाती है जब शौहर अपनी बीवी की जाइज़ मांग जिन्सी और सामाजिक पूरा करने से मजबूर हो या बीवी बदकार हो। तलाक़ हराम है उस वक़्त जिस का नतीजा यह हो कि वह किसी गुनाह में पड़ जायें, या किसी की हक़तलफ़ी का सबब बन जायें। तलाक़ मकरूह है अगर वह बग़ैर किसी वजह के दी जाये। तलाक़ मुस्तहब है अगर बीवी नमाज़ रोज़े और फ़राइज़ को पूरा नहीं करती हो, बुरे अख़लाक़ की हो, बेइज़्ज़ती करती हो।

सुन्नी और बिदई:- तलाक़ की यह ख़ास क़िस्में ऊपर ज़िक्र की गई तक़सीम में हर क़िस्म पर शामिल (संमिलित) हैं यानी जो तलाक़ सही वक़्त पर यानी शरीअत के मुक़र्रर किये हुये उसूल के मुताबिक़ और मुक़र्रर की हुई तादाद में दी जाये वह सुन्नी तलाक़ है और बिदई वह है जिस में न वक़्त का लिहाज़ रखा जाये न संख्या का, दोनों का फ़र्क़ सुन्नी तलाक़ की शर्तों से ज़ाहिर है।

1. पहली शर्त यह है कि तलाक़ उस ज़माने में दी जाये जब औरत पाक व साफ़ हो, अगर हैज़ व निफ़ास के दिनों में तलाक़ दी तो यह तलाक़ बिदई तलाक़ होगी जो गुनाह और हराम है।

2. दूसरी शर्त यह है कि पाक होने के बाद औरत से मुबाशरत न की गई हो और उस से अकेले में न मिला गया हो, अगर मुबाशरत और अकेले में मिलने के बाद तलाक़ दी तो यह काम भी हराम है और बिदई तलाक़ होगी।

3. तीसरी शर्त यह है कि तलाक़ सिर्फ़ एक दी जाये (यानी रजई) उस के एक महीने के बाद जब हैज़ के दिन गुज़र गये हों तो पहली बार पाक होने के बाद (अगर रुजूअ नहीं करता) दूसरी बार तलाक़ दे फिर इद्दत के दौरान जब तीसरी बार औरत पाक हो जाए तो तीसरी तलाक़ दी जाये, लेकिन अगर पहली बार की पवित्रता के दिनों में दो या तीन तलाक़ें दीं तो यह बिदई तलाक़ होगी बल्कि पहली बार एक बाइन तलाक़ देना भी बिदई है।

4. चौथी शर्त यह है कि मख़सूस (हैज़ व निफ़ास के दिन) दिनों में बीवी के पास न गया हो और पाक हो जाने के बाद भी अकेले में न मिला हो तब तलाक़ सही होगी, वर्ना नहीं। जिस तरह मना किये गये दिनों में तलाक़ देना सही नहीं उसी तरह उन दिनों में मुबाशरत करने के बाद पहली बार पाक होने पर तलाक़ देना भी बिदई है जब तक कि उसे फिर हैज़ व निफ़ास के दिन न आ जायें और फिर पाक हो और इन दोनों हालतों (नापाकी और पाकी) में बीवी के क़रीब न गया हो।

इन चारों शर्तों का लिहाज़ रखते हुये जो तलाक़ दी जायेगी वह सुन्नी तलाक़ होगी वर्ना बिदई तलाक़ हो जायेगी। बेहतर तरीक़ा यह है कि सिर्फ़ एक तलाक़ दी जाये जो रजई होती है और फिर छोड़ दिया जाये यानी मुद्दत के दौरान दूसरी तलाक़ न दी जाये। इद्दत गुज़रने के बाद बीवी खुद निकाह से बाहर हो जायेगी।

पाकी के ज़माने में तलाक़ देने की क़ैद उस बीवी के लिये है जिस से मुबाशरत हो चुकी हो लेकिन जिस के क़रीब ही न गया हो उस के लिये ज़माने की क़ैद न होगी। यही हुक्म उस बीवी के लिये है जो छोटी उम्र की हो, और अभी उसे हैज़ या निफ़ास न आया हो या जिस के हैज बन्द हो चुके हों या हामला हो। मगर तलाक़ की संख्या की क़ैद होगी यानी हर महीने में एक रजई तलाक़ तो अगर चाँद रात को उस शख़्स ने रजई तलाक़ दी तो अगले महीने की चाँद रात तक इन्तिज़ार करे उस के बाद तलाक़ दे। फिर तीसरे महीने की चाँद रात तक इन्तिज़ार करेगा और तब तीसरी तलाक़ देगा अगर महीने के बीच तलाक़ दी है तो दूसरी तलाक़ तीस दिन गुज़रने के बाद 31वें दिन देगा और तीसरी तलाक़ तीस दिन और गुज़रने के बाद देगा।

सरीह तलाक़:- साफ़ शब्दों में तलाक़ देना कि उन शब्दों से और कुछ मुराद न लिया जा सके, जैसे बीवी से कहा कि मैं तुझ को तलाक़ देता हूँ या तुझ को तलाक़ है या मैं ने तुझे तलाक़ दी या तू मुतल्लक़ा है या मैं ने तुझ को छोड़ दिया, ये सब साफ़ शब्द हैं। इन शब्दों के कहते ही तलाक़ पड़ जायेगी चाहे संजीदगी से कहे या मज़ाक़ से, दिल में नियत करे या न करे, हर सूरत में तलाक़ लागू हो जायेगी। फिर सरीह तलाक़ रजई भी हो सकती है यानी उस को लौटाया भी जा सकता है और बाइन भी यानी उस को लौटाया नहीं जा सकता।

रजई तलाक़ की सूरत:- जब किसी औरत को साफ़ शब्दों में एक या दो तलाक़ दी और फिर इद्दत के अन्दर तलाक़ देने वाले को अपने इस काम पर शर्मिन्दगी हुई और टूटा हुआ रिश्ता जोड़ना चाहे तो वह तलाक़ को वापस ले सकता है यानी दोबारा निकाह के बग़ैर उसे अपनी बीवी बना कर रख सकता है चाहे बीवी राज़ी हो या न हो।

रजई तलाक़ कब बाइन हो जाती है:- अगर पहली बार साफ़ शब्दों में एक या दो तलाक़ देने के बाद इद्दत भर उस से रूजूअ नहीं

किया तो अब इद्दत (यानी तीन हैज़ की मुद्दत) गुज़रने के बाद एक बाइन तलाक़ पड़ जायेगी और अगर दो तलाक़ दी थी तो दो बाइन तलाक़ पड़ जायेंगी, इस के बाद मियाँ बीवी का संबंध बग़ैर दोबारा निकाह के मुम्किन नहीं है, और यह निकाह भी जब हो सकेगा कि दोनों राज़ी हों, सिर्फ़ शौहर अपनी मर्ज़ी से निकाह करना चाहेगा तो नहीं होगा।

तलाक़ किस सूरत में मुग़ल्लज़ा हो जाती है:- जब तलाक़ देने वाले ने साफ़ तौर से तीन तलाक़ें दी हों तो फिर वह न तो रूजूअ कर सकता है और न उस औरत से नया निकाह कर सकता है जब तक कि वह औरत दूसरे मर्द से निकाह कर के उस से तलाक़ न हासिल कर ले, इस को शरीअत की परिभाषा में हलाला कहते हैं। हलाले का बयान तीन तलाक़ों वाली मुहर्रमा (मना की हुई) औरत के बयान में किया गया है।

तलाक़ बिल किनाया:- किनाया से मुराद यहाँ ऐसे शब्द हैं जो ख़ास कर तलाक़ के लिये ही न बोले जाते हों लेकिन इस का मतलब तलाक़ भी लिया जा सकता हो और नाराज़गी व बहुत ज़्यादा नागवारी का इज़्हार भी होता हो जैसे 'मेरा अब तुम से कोई संबंध नहीं रहा' या 'मेरे घर से चली जाओ' या 'मेरा तुम्हारे साथ निबाह नहीं हो सकता' या 'अपने माँ या बाप के पास रहो' वग़ैरा तो अगर इन शब्दों से नियत तलाक़ की है तो बाइन तलाक पड़ जायेगी, लेकिन अगर उस ने ज़ाहिर कर दिया कि मेरी नियत तलाक़ की नहीं थी तो तलाक़ नहीं पड़ेगी। अब अगर एक तलाक़ की नियत थी तो एक और अगर इसी तरह दो तलाक़ें दी थीं तो दो बाइन तलाक़ पड़ जायेंगी। दो की हद तक वह दोबारा निकाह कर के अपनी बीवी बना कर रख सकता है लेकिन अगर इसी तरह तीन तलाक़ें दे दीं तो जिस तरह तीन तलाक़ से मुग़ल्लज़ा तलाक़ पड़ जाती है उसी तरह तीन किनाया की तलाक़ों से भी तलाक़े मुग़ल्लज़ा पड़ जायेगी और उस का हुक्म वही होगा जो बयान हो चुका। ग़ैर वाज़ेह शब्दों में जो

तलाक़ दी जायेगी वह रजई नहीं होगी यानी उस में ख़ुद से रूजूअ कर लेने का इख़्तियार शौहर को नहीं होगा, और औरत से बग़ैर निकाह के उस का संबंध हराम होगा चाहे एक ही बार क्यों न दी गई हो, शौहर का यह कहना कि इन शब्दों से मेरी नियत तलाक़ की न थी उसी वक़्त माना जायेगा जब कोई दूसरा अंदाज़ा मौजूद न हो लेकिन अगर कोई दूसरा अन्दाज़ा यह बताता हो कि जिस मौक़े पर ये शब्द कहे गये थे उस में तलाक़ के अलावा कोई दूसरा मतलब निकलता ही नहीं जैसे तलाक़ ही की बातचीत हो रही हो और शौहर बीवी से कहे कि 'आप अपना बिस्तर उठाएँ और चली जाएं अब मेरे घर ना आइएगा।' या अगर बीवी ने कहा कि 'मेरा आपके साथ निभाव नहीं हो सकता, मुझे तलाक़ दे दीजिए या मुझे छोड़ दीजिए' और जवाब में शौहर ने कहा कि अच्छा तो मैं ने छोड़ दिया या तुम को आज़ाद कर दिया' तो इन सूरतों में एक बाइन तलाक़ पड़ जायेगी, और शौहर को बीवी से अलग रहने का हुक्म दे दिया जायेगा। शौहर का यह कहना कि मेरी नियत तलाक़ की न थी नहीं माना जायेगा।

(दुर्रेमुख़्तार)

वे शब्द जिन के लिये नियत का जानना ज़रूरी है:- इशारे के कुछ शब्द जिन का मतलब तलाक़ के अलावा भी हो सकता हो, बहुत तरह के हो सकते हैं जैसे 'मेरा घर छोड़ दो, तुम मेरे काम की नहीं हो, यहाँ से चलती बनो, अपना मुंह काला करो, मैं ने तुम्हें तुम्हारे माँ बाप के हवाले क़िया। मैं तुम से बिल्कुल बेज़ार हूँ, मैं तुम से कोई संबंध नहीं रखना चाहता, तुम मेरे लायक़ नहीं हो, मैं तुम्हें आज़ाद करता हूँ, इन जैसे शब्दों से तलाक़ का मतलब भी निकलता है और गुस्से का इज़हार भी, डांट डपट, अदब सिखाना, ताना वग़ैरा का मतलब भी निकलता है, इस लिये अगर कोई दूसरा अन्दाज़ा मौजूद न हो तो कहने वाले की नियत को मालूम करना होगा। (बिदायतुल मुजतहिद) किताबुत्तलाक़ में है कि तलाक़ के साफ़ और ज़ाहिर शब्द इमाम शाफ़ई (रह०) ने तीन माने हैं। तलाक़, फ़िराक़,

सराह, जो कुरआन में ज़िक्र है। इमाम मालिक सिर्फ़ तलाक़ के शब्द को साफ़ और वाज़ेह शब्द मानते हैं और इनके अलावा सब उनके नज़दीक इशारे हैं और इस की भी दो क़िस्में हैं- ज़ाहिर, और मुहतमल, तो ऐसे शब्द जिन से इशारतन तलाक़ का मतलब निकल सकता हो और मतलब ज़ाहिर भी न हो सिर्फ़ महसूस होता हो कि तलाक़ का मतलब निकल सकता है और कोई दूसरा अन्दाज़ा भी मौजूद न हो तो ऐसे शब्द कहने से तलाक़ नहीं होगी, मगर जबकि कहने वाला यह कहे कि इन शब्दों से मेरी नियत तलाक़ की थी।

ग़ैर वाज़ेह शब्दों में दी गई तलाक़ का वाज़ेह बन जाना:- अगर किसी शख़्स ने अपनी बीवी से ऐसे ग़ैर वाज़ेह शब्द कहे जिन से पता न चलता हो कि तलाक़ है या सिर्फ़ डांट डपट है, फिर किसी ने पूछा क्या आप ने अपनी बीवी को तलाक़ दी है? और जवाब में कहा 'हाँ' तो यह तलाक़ होगी।

तलाक़ की संख्या:- शरीअत ने तलाक़ की संख्या तीन बताई हैं इस लिये अगर तलाक़ का शब्द कहा जाये तो उसमें वह संख्या दाख़िल होगी (एक, दो, या तीन) जिस की नियत की गई है। साफ़ और वाज़ेह तलाक़ में अगर संख्या का ज़िक्र नहीं किया तो उस से एक रजई तलाक़ पड़ जाती है लेकिन अगर इशारे के शब्दों में तलाक़ दी तो एक तलाक़े बाइन पड़ जाती है और नियत का एतबार नहीं किया जाता, संख्या का ज़िक्र अगर तलाक़ देते वक़्त कर दिया है तो वही संख्या तलाक़ की मान ली जायेगी। हाँ अगर किसी ने इस तरह कहा कि तुझ को तलाक़, तलाक़, तलाक़ तो अगर इस बार-बार कहने से सिर्फ़ ज़ोर देना मक़सद था (यानी इस का मक़सद तीन तलाक़ नहीं बल्कि एक ही तलाक़ देना था) तो एक ही रजई तलाक़ पड़ेगी, इस शर्त पर कि दिल में इरादा तीन का न रहा हो क्योंकि नियत के बारे में झूट बोल कर अगर औरत से संबंध रखेगा तो ज़िन्दगी भर हराम काम करने का मुजरिम रहेगा और जो औलाद होगी वह नाजाइज़ होगी।

रजई तलाक़ के बारे में हिदायातः- मालूम होना चाहिये कि रजई तलाक़ से निकाह का रिश्ता नहीं टूटता लेकिन खिंचाव और बदमज़गी पैदा हो जाने से कमज़ोर हो जाता है। एक नेक बीवी को ऐसी हालत में कोई ऐसा काम नहीं करना चाहिये जिस से खिंचाव बढ़े बल्कि काम का ऐसा तरीक़ा अपनाना चाहिये जिस से दिलों में खुशगवारी और मुहब्बत पैदा हो और रिश्ता फिर मज़बूत जुड़ जाये। फ़ुक़हा ने लिखा है कि औरत के लिये मुस्तहब है कि इस ज़माने में ज़्यादा बनाव सिंगार कर के रहे। रजई तलाक़ में औरत को शौहर के घर ही में रहने का हुक्म है, यह हुक्म इद्दत तक के लिये है। इस मुद्दत में औरत का व्यवहार ऐसा होना चाहिये कि शौहर दोबारा उस की तरफ़ झुक जाये। इद्दत गुज़रने के बाद उस को शौहर से पर्दा करना चाहिये और उस के घर से चले जाना चाहिये।

इस हालत में मर्द को भी बार बार अपने फ़ैसले पर ग़ौर करना चाहिये और संबंध में कमज़ोरी पैदा करने वाले सबब को दूर कर के उसे फिर से जोड़ने की ख़्वाहिश पैदा करना चाहिये। इस के बावजूद भी अगर रिश्ता जुड़ता नज़र न आये तो फिर बीवी के साथ ग़ैर औरत जैसा व्यवहार करना चाहिये यानी पर्दा कर लेना चाहिये और इद्दत के बाद घर से रूख़्सत कर देना चाहिये मगर यह रूख़्सती ऐसी हो जिसे कुरआन में भले तरीक़े से रूख़्सत करना कहा गया है। इद्दत गुज़र जाने के बाद रजई तलाक़ बाइन तलाक़ हो गई। अब अगर मर्द व औरत दोनों चाहते हों कि निकाह का रिश्ता क़ायम हो जाये तो फिर जिस तरह शुरू में निकाह हुआ था उसी तरह दोबारा दो गवाहों के सामने निकाह कर के निकाह का रिश्ता क़ायम कर सकते हैं।

ऐसी बीवी जिस से मुबाशरत न हुई हो उस को अगर एक तलाक़ दी गई तो वह रजई नहीं बल्कि बाइन होगी क्योंकि उस से मिलने का मौक़ा ही नहीं मिला और तलाक़ मिल गई तो यह एक तरह का ज़ुल्म है और ज़ुल्म की सज़ा यही हो सकती है कि मर्द को रुजूअ का हक़ न दिया जाये।

इद्दत गुज़र जाने के बाद रुजूअ करने का हक़ ख़त्म हो जाता है। इसी तरह दूसरी या तीसरी तलाक़ भी उस औरत पर वाक़ेअ नहीं होगी, क्योंकि तलाक़ उस को दी जा सकती है जो निकाह में हो, इद्दत के बाद वह निकाह से निकल जाती है, अब तलाक़ का मौक़ा ही बाक़ी नहीं रहता। हाँ इद्दत पूरी करने से पहले अगर दूसरी या तीसरी तलाक़ दे दी तो वह सब पड़ जायेंगी।

बाइन तलाक़ के बारे में हिदायात:- बाइन तलाक़ या मुग़ल्लज़ा पाने वाली औरत को शौहर से पर्दा करना और उस को ग़ैर मर्द मानना चाहिये। हाँ इद्दत भर उसी के घर में रहेगी और नफ़क़ा शौहर के ज़िम्मे होगा। इद्दत में बनाव सिंगार कर के नहीं रहेगी क्योंकि वह बहुत ही दुखी हालत में होगी।

वे शब्द जिन से तलाक़ लागू नहीं होती:- इशारे से तलाक़ के बारे में बहुत से शब्द ऐसे बताये गये हैं जिन से तलाक़ लागू नहीं होती अगर नियत साबित न हो। अब यह बताया जाता है कि तलाक़ का शब्द अगर भविष्यकाल में कहा जाये तो भी तलाक़ नहीं पड़ेगी चाहे जितनी बार कहे कि मैं तलाक़ दूँगा। जिस तरह निकाह भूतकाल और वर्तमान काल के शब्दों से हो सकता है उसी तरह तलाक़ भी भूतकाल और वर्तमान काल के शब्दों से ही पड़ सकती है।

तलाक़ में शर्त लगाना:- अगर बीवी से कहा कि 'फ़लाँ काम किया तो तुझे तलाक़ है' अब वह औरत जब भी वह काम करेगी एक रजई तलाक़ पड़ जायेगी लेकिन अगर कोई ऐसी शर्त लगाई जिस का आदमी से करना मुम्किन ही न हो तो वह सही नहीं होगी और कभी तलाक़ नहीं पड़ेगी। तलाक़ उसी वक़्त पड़ेगी जब उस का मौक़ा व हालत मौजूद हो जैसे अगर तूने फ़लाँ शख़्स से बात की तो तुझे तलाक़ है तो जब वह उस से बात करेगी तलाक़ पड़ जायेगी। लेकिन अगर वह आदमी मर जाये तो तलाक़ का वाक़ेअ होना भी ख़त्म हो गया। या अगर तू फ़लाँ घर में गई तो तुझे तलाक़ है, अब

अगर वह घर गिर गया तो तलाक़ वाक़ेअ न होगी, चाहे वह दोबारा क्यों न बना लिया गया हो। जिस काम पर तलाक़ की शर्त लगाई थी वह काम औरत ने किया और एक तलाक़े रजई पड़ गई फिर शौहर ने उस से रुजूअ कर लिया और वे मियाँ बीवी हो गये, उस औरत ने फिर दोबारा वही काम किया तो अब उस को तलाक़ नहीं पड़ेगी क्योंकि तलाक़ की शर्त उस काम के एक बार करने पर थी, हाँ अगर यह कहा 'जब जब फ़लाँ काम करेगी तो तुझे तलाक़ है' तो अगर दोबारा करेगी तो दो तलाक़ तीसरी बार करेगी तो तीन तलाक़ पड़ जायेंगी।

तलाक़ का इख़्तियार देना:- अगर किसी ने अपनी बीवी से कहा कि मैं तुम को इख़्तियार देता हूँ कि अपने को तलाक़ दे लो, तो अगर औरत ने तुरन्त ही कह दिया कि मैं ने एक या दो तलाक़े बाइन ले ली तो तलाक़ वाक़ेअ हो जायेगी लेकिन उस ने उस वक़्त कुछ न कहा और वहाँ से उठ कर चली गई या दूसरा काम करने लगी तो यह इख़्तियार ख़त्म हो गया। हाँ अगर यह कहा कि जब चाहो या जिस वक़्त चाहो तलाक़ ले लो तो फिर उस को यह इख़्तियार रहेगा कि जब चाहे तलाक़ लेकर अलग हो जाये।

तलाक़ के लिये नाइब बनाना:- मालिक को नाइब (प्रतिनिधि) बनाने का हक़ होता है, तलाक़ का मालिक मर्द है औरत नहीं। इस के दो सबब हैं पहला यह कि मर्द औरत से निकाह कर के यह ज़िम्मेदारी कुबूल करता है कि वह अपनी बीवी का निगराँ, रक्षक और (कफ़ील) पालकपोशक होगा यहाँ तक कि अगर उस को अपनी ज़िन्दगी से अलग करने की ज़रूरत पड़ जाये तो भी उस के बाद एक मुक़र्रर मुद्दत (इद्दत) के लिये उस की तमाम ज़रूरतें पूरी करने का पाबन्द है और जो संतान उस की उस औरत से हो उस की परवरिश का ज़िम्मेदार भी वही है, बीवी का महर और बच्चों की दूध पिलाई का बदला उसी को देना पड़ता है। इस लिए इंसाफ़

यही है कि तलाक़ देने का इख़्तियार उसी को हो जिस पर यह सब ज़िम्मेदारियाँ हैं, तलाक़ देते वक़्त उसे ये सब ख़र्च भी चुकाने होते हैं, कभी कभी इन सब का बोझ उठाना उस की ताक़त से बाहर होता है। इस लिये तलाक़ देने से पहले उसे बहुत सोचना पड़ता है। अगर यह इख़्तियार बीवी को दिया जाता जिस पर वह ज़िम्मेदारियाँ नहीं जो उस के और तलाक़ के बीच हैं तो वह जब ज़रा सी नाराज़ हो जाती तलाक़ देने में न हिचकिचाती। इस में बड़ी हिकमत व मस्लेहत है कि औरत को शरीअत ने यह इख़्तियार नहीं दिया।

दूसरा सबब औरत की फ़ितरत है जो कुदरत ने बनाई है कि वह मर्द के मुक़ाबिले में न तो सख़्ती बर्दाश्त कर सकती है और न उस जैसा सब्र कर सकती है। वह बहुत जल्द असर कुबूल कर लेती है और मर्दों की तरह नफ़्स पर क़ाबू नहीं रख सकती। मियाँ बीवी के रिश्ते की मज़बूती और उस को क़ायम रखने के लिये सब्र व हिम्मत और अपने ऊपर असर न पड़ने देना ज़रूरी है। ज़रा सी देर में ख़ुश और ज़रा सी देर में नाख़ुश हो जाने वाला मिज़ाज इस लायक़ न था कि उसे ऐसे अहम और मज़बूत रिश्ते को तोड़ देने का इख़्तियार दिया जाता।

इस लिये जब तलाक़ का इख़्तियार मर्द को है तो उसे यह हक़ भी है कि वह अपनी तरफ़ से तलाक़ के लिये किसी को अपना नाइब (प्रतिनिधि) बना दे। नायब बनाने की यह तीन सूरतें हैं (1) किसी को भेज कर अपनी बात पहुंचाना (2) वकालत के ज़रिए यानी किसी को अपनी मर्ज़ी बता देना कि वह उस की मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करे (3) अपना काम दूसरे के सुपुर्द कर देना कि जैसा चाहे करे। तीनों सूरतों में जो फ़र्क़ है उस को समझ लेना चाहिये। पहली क़िस्म का नायब मालिक के शब्दों को बिल्कुल उसी तरह नक़ल कर देगा जैसा उस ने कहा है न कुछ घटायेगा न बढ़ायेगा। दूसरी क़िस्म का नायब मालिक की मर्ज़ी पर अमल करेगा

उस की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ न कोई बात करेगा न कहेगा और तीसरी क़िस्म का नायब मालिक का बताया हुआ काम अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ करेगा। दूसरी क़िस्म का नायब जिस को वकील कहा जायेगा उसे वकालत से अलग कर देने का हक़ मालिक को रहता है। इस लिये तलाक़ के मुआमले में किसी को वकील बनाने के बाद यह कहने का हक़ बाक़ी रहेगा कि मैं ने तुम से यह हक़ वापस ले लिया। शौहर को हक़ है कि बीवी से मुबाशरत कर के उस वकालत को ख़त्म कर दे लेकिन तफ़वीज़ यानी तलाक़ का मुआमला किसी के हवाले कर देने के बाद यह हक़ नहीं रहता कि वह उसे वापस ले और अगर बीवी तफ़वीज़ का हक़ उन शर्तों के मुताबिक़ इस्तेमाल कर ले जिन का ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है तो वह लागू हो जायेगी। अगर किसी को भेज कर शौहर ने यह इख़्तियार अपनी बीवी को दिया तो जब वह शख़्स उस की बात उस की बीवी से कह दे और बीवी अपने इख़्तियार को शर्तों के मुताबिक़ इस्तेमाल करे तो उस की तरफ़ से तलाक़ वाक़ेअ हो जायेगी।

तलाक़ के लिये तहरीर के ज़रिए नाइब बनाना:- मर्द तहरीर के ज़रिए भी अपनी बीवी को अपनी तरफ़ से तलाक़ के लिये नायब बना सकता है। इस की एक सूरत यह है कि औरत या उस का वली या वकील, शौहर (या उस के वली या वकील) से एक तहरीर ले ले जिस में यह ज़िक्र हो कि अगर शरीअत के वाजिब किये हुये हुकूक़ व फ़राइज़ को पूरा करने में नाकाम रहूँ तो औरत को इख़्तियार होगा कि वह अपने ऊपर एक बाइन तलाक़ वाक़ेअ कर ले और मेरे निकाह के रिश्ते से निकल जाये। इस तहरीर पर दोनों तरफ़ के आदमी गवाह बना लिये जाना भी ज़रूरी है। औरत के हुकूक़ और मर्द के फ़राइज़ का ज़िक्र भी करना चाहिये। इस तरह औरत पर जब कोई ज़्यादती, हक़तलफ़ी या कोई और ज़ुल्म मर्द की तरफ़ से होगा और दोनों तरफ़ के गवाह भी उसे मान लेंगे तो औरत को ख़ुद

तलाक़ लेने का इख़्तियार होगा, यह तहरीर निकाह से पहले या निकाह के वक़्त भी लिखी जा सकती है इस तरह से कि मैं ने फ़लाँ औरत से निकाह किया है और इन बातों का ज़िम्मा लिया है अगर मैं इन की ख़िलाफ़वर्ज़ी करूँगा तो इस औरत को एक बाइन तलाक़ वाक़ेअ करने का हक़ होगा, या मैं ने फ़लाँ औरत से इस शर्त पर निकाह किया या करता हूँ कि......

ख़ुलअ़ का बयान

ख़ुलअ़ का अर्थः- ख़लअ़ का अर्थ उतार देना है **'ख़लअर्रजुलु सौबहू ख़लअ़न'** (उस ने अपना कपड़ा उतार दिया) और *'ख़लअ़तुन्नअलाख़लअ़न'* (मैं ने जूती उतार दी) चूंकि उतार देने का मतलब अलग कर देना है तो इसी लिये कहते हैं *'ख़लअर्रजुलु इमरअतहू'* (मर्द ने अपनी औरत को अलग कर दिया) या *'ख़लअतिल मरअतु ज़ौजहा''* (औरत अपने शौहर से अलग हो गई) 'ख़ुलअ़' ख़ास तौर पर मियाँ बीवी के अलग होने के लिये बोला जाता है। मियाँ बीवी के अलग होने को लिबास उतार देने की तरह कहा गया है। दोनों के मिलाप की बुनियाद लिबास होता है, क़ुरआन में फ़रमाया गया है **'हुन्ना लिबासुल्लकुम व अनतुम लिबासुल्लहुन'** (बीवियाँ तुम्हारा लिबास हैं और तुम बीवियों के लिबास हो)।

ख़ुलअ़ और तलाक़ में फ़र्क़ः- ख़ुलअ़ उस वक़्त भी सही है जब कि तलाक़ सही न हो। जैसे माहवारी के दिनों में या निफ़ास की हालत में या ऐसे पाकी के दिनों में जिस में मुबाशरत की गई हो तलाक़ देना मना है मगर ख़ुलअ़ सही है। इस के जाइज़ होने की दलील अल्लाह तआला का यह फ़रमान है-

فَإِنْ خِفْتُمْ أَلَّا يُقِيمَا حُدُودَ اللّٰهِ فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَا فِيمَا افْتَدَتْ بِهٖ ط (بقرہ: ۲۲۹)

फ़इन ख़िफ़्तुम अल्ला युक़ीमा हुदूदल्लाहि, फ़ला जुनाहा

अलैहिमा फ़ीमफ़तदत बिही।' (सूरः बक़रह 229)

अनुवादः- अगर यह डर हो कि शौहर और बीवी दोनों अल्लाह की मुक़र्रर की गई हुदूद पर क़ायम न रह सकेंगे तो इस में कोई हर्ज नहीं कि बीवी फ़िदया देकर अलग हो जाये।

तलाक़ बग़ैर मुआवज़े (बदला) के होती है, और मुआवज़ा (बदला) ले कर जो तलाक़ दी जाती है उसे ख़ुलअ़ कहते हैं। बुनियादी तौर पर दोनों काम मकरूह हैं, सिर्फ़ उसी वक़्त इजाज़त है जब अल्लाह की मुक़र्रर की गई हुदूद पर क़ायम रहना मुम्किन न हो। अलग होना ज़रूरी न हो तो तलाक़ हराम है, इसी तरह ख़ुलअ़ भी हराम है। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है-

'बग़ैर किसी वजह के ख़ुलअ़ चाहने वाली औरतें वास्तव में मुनाफ़िक़ हैं।'

ख़ुलअ़ कब सही हैः- अल्लाह की मुक़र्रर की गई हुदूद का लिहाज़ रखना मियाँ और बीवी दोनों पर फ़र्ज़ क़रार दिया गया है कि दोनों उस सीमा से आगे न जायें। वह हुकूक़ जिन के ख़याल रखने का हुक्म बीवी को दिया गया है वे यह है कि शौहर की पूरी तरह से इताअत करे उस सूरत के अलावा जब कि किसी नुक़सान का डर हो दीनी या दुनियावी', शौहर के साथ रिफ़ाक़त रखे यानी ऐसी हरकत न करे जिसे वह नापसंद करता हो जैसे किसी अजनबी शख़्स से बात चीत करना या उसे घर में बुलाना, शौहर की ज़िन्दगी की साथी बन कर रहे। यह हलाल नहीं है कि ज़ाहिर में शौहर के साथ हो लेकिन दिल का ताल्लुक़ दूसरों से हो, शौहर की ख़ैरख़्वाह हो। इस लिये यह भी हलाल नहीं है कि इतना ज़्यादा ख़र्च का बोझ डाले जिस से आर्थिक हालत और समाजी निज़ाम बिगड़े या बेटे बेटियों की तर्बियत (प्रशिक्षण) में कमी करे या उन के लिये बुरा नमूना साबित हो। शौहर के माल में और उन हुकूक़ के लिहाज़ में जिन का हुक्म

शौहर ने दिया है ख़यानत न करे। पाकदामन रहते हुए शौहर की इज़्ज़त की हिफ़ाज़त करे इन के अलावा और दूसरे अख़लाक़ी हुक़ूक़ भी हैं।

अब अगर मियाँ बीवी में इख़्तिलाफ़ (मतभेद) हो जाये तो सुन्नत तरीक़ा यह है कि ख़ानदान के दो शख़्स बीच में पड़ कर फ़ैसला करायें जिस की तरफ़ अल्लाह के इस फ़रमान में इशारा किया गया है। "फ़ब्असू हकमम्मिन अहलिही व हकमम्मिन अहलिहा" इस का अनुवाद और मतलब 'तलाक़ पसंदीदा काम नहीं है' में बयान किया जा चुका है, हकम से मुराद ऐसा शख़्स है जो फ़ैसला कराने की योग्यता रखता हो और मिन अहलिही और मिन अहलिहा की क़ैद इस लिये है कि ख़ानदान वाले ही अन्दरूनी मुआमलात से बाख़बर होते हैं फिर मियाँ और बीवी भी यह पसन्द न करेंगे कि उन के आपस के मुआमलात को ग़ैरों के सामने लाया जाये।

फ़ैसला कराने वालों का फ़र्ज़ यह होना चाहिये कि दोनों में सुलह करा दें लेकिन अगर वह सुलह न करा सकें और दोनों के बीच इख़्तिलाफ़ात (मतभेद) इतने ज़्यादा हो जायें कि ख़ुदा के अहकामों (आदेशों) का भी लिहाज़ न रहे तो ऐसी सूरत में मुआवज़े (बदला) में कुछ ले कर या बग़ैर कुछ लिये हुए उन के बीच जुदाई करा देना सही है जिस की सूरत तलाक़ या ख़ुलअ़ है। तलाक़ का इख़्तियार ख़ास शौहर का है या उन का जिन्हें वह अपना नाइब बना दें, अगर फ़ैसला कराने वालों को नाइब बना दें तो उन्हें तलाक़ देने का हक़ हो जायेगा। ख़ुलअ के मुआमले में बीवी का हक़ होता है कि शौहर से छुटकारा पाने के लिये माल का फ़िदया देने के लिये रज़ामंदी दे। इसी वजह से उस का ख़ुलअ़ माँगना सही होगा। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक अगर शौहर अपनी बीवी पर ख़ुलअ़ के मुआमले में ज़बरदस्ती और दुख पहुंचा कर फ़िदया वसूल करेगा तो वह उस के लिये हराम है चाहे वह महर हो या कोई और माल

हो। अल्लाह तआला का फ़रमान है "फ़ला ताख़ुज़ू मिनहु शैअन" यानी बीवी को जो कुछ दे चुके हो उस में से कुछ वापस न लो।

इस के बाद वह दूसरी आयत है जिस का ज़िक्र हम ने ख़ुलअ़ और तलाक़ में फ़र्क़ बताते हुए किया है जिस में फ़रमाया गया है कि अगर तुम्हें डर हो कि वह अल्लाह की मुक़र्रर की गई हुदूद पर क़ायम न रह सकेंगे तो बीवी को माल दे कर अपना पीछा छुड़ा लेने में कोई गुनाह नहीं है। दोनों आयतों में पहले शौहर को यह बताया गया कि तुम्हारे लिये यह जाइज़ नहीं है कि जो कुछ तुम ने अपनी बीवी को दे दिया है उस में से कुछ भी वापस ले लो फिर दूसरी आयत में यह कहा गया 'लेकिन अगर यह डर हो कि वे दोनों हुकूक़ व हुदूद का लिहाज़ न रख सकेंगे तो इस सूरत में औरत कुछ दे दिला कर अपनी जान छुड़ा ले, इस में दोनों पर कोई गुनाह नहीं है। शौहर को इन दो हालतों में बीवी के मह्र से कोई संबंध नहीं है। एक तो उस हालत में जब इख़्तिलाफ़ की बुनियाद ख़ुद शौहर हो, दूसरे इस हालत में जबकि मियाँ और बीवी को अल्लाह की हुदूद से आगे बढ़ने का डर न हो। तलाक़ का मुआवज़ा लेना उसी हालत में सही है जब अल्लाह की हुदूद से आगे बढ़ने का डर हो जिस में शौहर के साथ बीवी का बुरा व्यवहार और बीवी को शौहर की तरफ़ से दुख पहुंचाना दोनों बातें शामिल हैं, इस हाल में अगर औरत माल के बदले ख़ुलअ़ क़ुबूल कर ले तो ख़ुलअ़ लागू हो जायेगा। और मुआवज़े में जो माल शौहर को मिलेगा वह उस का मालिक हो जायेगा। लेकिन अगर बीवी को माल देने पर मजबूर होना शौहर के दुख पहुंचाने और बुरे व्यवहार की वजह से है तो उस माल पर शौहर का हक़ नहीं होगा।

बीवी के ज़िम्मे रूपये वाजिब होने की शर्त यह है कि वह रज़ामन्दी व ख़ुशी के साथ दे, न कि मजबूर करने पर, अगर मर्द ने औरत से कहा कि मैं ने एक हज़ार रूपये के बदले तलाक़ दी और उसे माल देने पर मजबूर किया तो एक तलाक़ रजई पड़ जायेगी और

फ़िदया के माल का हक़दार न होगा। और अगर उस ने ख़ुलअ़ का शब्द इस्तेमाल किया यानी इस तरह कहा कि मैं ने तेरे साथ ख़ुलअ़ किया और मजबूर किया कि वह उसे मान ले तो तलाक़ बाइन पड़ जायेगी लेकिन माल वुसूल करने का हक़ न होगा अल्लाह तआला ने फ़रमाया **'ला जुनाहा अलैहिमा'** यानी दोनों पर माल के लेने, देने में कोई गुनाह नहीं है यानी जब दोनों तरफ़ से यह ख़्वाहिश हो लेकिन मर्द के लिये दिया हुआ माल वापस लेना सही नहीं है और कुरआन में ऐसा करने से मना किया गया है **'ला तज़्ुलूहुन्ना लितज़हबू बिबअज़ि मा आतैतुमूहुन्ना'** (सूरः निसा 19) यानी बीवियों को इस इरादे से तंग न करो कि जो कुछ तुम ने उन्हें दिया है उस में से कुछ वापस ले लो। इस के अलावा मर्दों को यह हुक्म दिया गया है **'फ़अ़मसिकू हुन्ना बिमअरूफ़िन औ-फ़ारिक़ूहुन्ना बिमअरूफ़िन'**(सूरः तलाक़ 2)

(भलाई के साथ उन्हें निकाह में रहने दो या फिर भलाई के साथ उन को अलग कर दो।) इस लिये मर्द के लिये यह हलाल नहीं है कि बीवी को सता कर ख़ुलअ़ पर मजबूर करे।

ख़ुलअ़ के अरकान व शर्तेः- ख़ुलअ़ के पाँच रूक्न हैं, अगर इन में से कोई मौजूद न हो तो ख़ुलअ़ नहीं हो सकता। पहला रूक्न मुस्तलज़िमुल-एवज़, यानी वह शख़्स जो मुआवज़ा यानी 'ख़ुलअ़ का माल देने का ज़िम्मेदार हो चाहे ख़ुद बीवी हो या कोई और शख़्स। दूसरा रूक्न बुज़्अ है यानी औरत की इज़्ज़त व आबरू जिस से नफ़ा उठाने का मालिक शौहर होता है, अगर यह मिलकियत ख़त्म कर दी गई तो यह रूक्न भी मौजूद न होगा और ख़ुलअ़ सही नहीं रहेगा (यह मिलकियत तलाक़े बाइन से ख़त्म हो जाती है) तीसरा रूक्न मुआवज़ा है यानी वह माल जो बीवी अपनी शादीशुदा ज़िन्दगी से आज़ाद हो जाने के बदले में दे। चौथा रूक्न शौहर है, और पाँचवाँ रूक्न उस का अपनी बीवी की आबरू का मालिक होना है। यह

ख़ुलअ़ के वे लाज़िमी जुज़ हैं जिन की मौजूदगी के बग़ैर ख़ुलअ़ नहीं हो सकता।

1. मुसतलज़िमुल-एवज़:- के लिये शर्त यह है कि वह बात चीत करने की योग्यता रखता हो और माल पर उस का अधिकार हो। इस लिये कम उम्र (नाबालिग़) पागल औरत का ख़ुलअ़ करना सही नहीं है और उसे माली कामों को सुपुर्द करना भी सही नहीं है। जिस तरह कम उम्र वाली लड़की को माल के बदले में ख़ुलअ़ करना सही नहीं उसी तरह बेअक़्ल लड़की का ख़ुलअ़ करना भी सही नहीं। बेअक़्ल से मुराद वह लड़की है जो फ़ुज़ूल ख़र्च हो, अपना माल बरबाद करती हो या ग़ैर शरई कामों में ख़र्च करती हो। बीमार औरत अगर बीमारी की हालत में ख़ुलअ़ करे तो ख़ुलअ़ सही होगा लेकिन उसी बीमारी में उस की मृत्यु हो जाये तो ख़ुला का माल उस माल में से जिस पर उस का अधिकार है एक तिहाई हिस्से से ज़्यादा न होगा, क्योंकि यह हदिये की तरह है और किसी को हक़ नहीं कि अपने माल के एक तिहाई हिस्से से ज़्यादा हदिये में दे दे। अगर मृत्यु इद्दत के दौरान हो तो शौहर को विरासत का हक़ पहुंचता है। अब अगर मीरास में उस का हिस्सा कुल माल के एक तिहाई से कम है तो वही शौहर को दिया जायेगा और अगर ज़्यादा है तो एक तिहाई ही उस को मिलेगा।

कम उम्र वाली लड़की का बाप अपनी तरफ़ से उस के माल के बदले ख़ुलअ़ कर ले तो ख़ुलअ़ हो जायेगा लेकिन माल का देना वाजिब न होगा लेकिन अगर वह अपने माल के बदले में लड़की की तरफ़ से ख़ुलअ़ करेगा यानी माल को अदा करने का ख़ुद ज़िम्मेदार होगा तो माल की अदायगी लाज़िम हो जायेगी। बाप या कोई और शख़्स अगर ख़ुलअ़ के माल की अदायगी की ज़िम्मेदारी ले ले जैसे इस तरह कहे कि मेरी बेटी या फ़लाँ की बेटी के साथ एक हज़ार रूपये के बदले ख़ुलअ़ कर लो और ख़ुलअ़ के माल की ज़िम्मेदारी

मैं लेता हूँ और शौहर यह कहे कि मैं ने यह ख़ुलअ़ मंज़ूर कर लिया तो ख़ुलअ़ सही हो जायेगा। अगर शौहर नाबालिग़ लड़का है तो उस का वली ख़ुलअ़ का माल वसूल करेगा।

2. ख़ुलअ़ का मुआवज़ा (बदला):- या तो नक़द होना चाहिये या कोई क़ीमती चीज़, दूसरी शर्त इस का हलाल होना है शराब, सुवर, मुरदार, शरीअत की नज़र में हराम हैं और कोई क़ीमत नहीं रखतीं अगरचे ग़ैर मुस्लिमों की नज़र में उन की क़ीमत हो। इसी तरह किसी से ज़बरदस्ती छीना हुआ माल है। मंह्र या तिजारत के माल के बदले ख़ुलअ़ करना सही है, इसी तरह इद्दत के दिनों के ख़र्च और बच्चे के दूध पिलाई के ख़र्च के बदले में भी ख़ुलअ़ हो सकता है।

3. **ख़ुलअ़ के शब्दः-** शब्दों में ख़ुलअ़ के लिये ईजाब व क़ुबूल (स्वीकृति) होना ज़रूरी है यानी जब तक औरत अपने शौहर से यह न कहे कि तुम इतने माल के बदले ख़ुलअ़ कर लो और शौहर कहे कि मैं ने इतने माल पर ख़ुलअ़ मंज़ूर कर लिया या शौहर कहे कि तुम मुझ से इतने माल के बदले ख़ुलअ़ कर लो और बीवी कहे कि मैं ने ख़ुलअ़ कर लिया उस वक़्त तक ख़ुलअ़ नहीं होता, सिर्फ़ एक दूसरे को माल दे देने से ख़ुलअ़ सही न होगा।

अगर ख़ुलअ़ के वक़्त माल का कोई ज़िक्र नहीं हुआ और दोनों ने ख़ुलअ़ कर लिया तो दोनों पर जो माली हुक़ूक़ हैं वे माफ़ हो गए। जैसे अगर औरत मह्र पा चुकी है या शौहर ने उसे कोई रक़म दी है तो अब शौहर उस से वापस नहीं ले सकता। इसी तरह अगर औरत ने कुछ दे रखा है या उस का महर बाक़ी है तो वह वापस नहीं ले सकती। हाँ इद्दत भर औरत के लिये ख़र्च और रहने सहने का इन्तिज़ाम करना मर्द पर ज़रूरी है।

अगर मर्द औरत पर दबाव डाल कर ख़ुलअ़ करने पर मजबूर करता है तो औरत पर कोई माली ज़िम्मेदारी नहीं है। अगर शौहर ने मह्र नहीं दिया है तो वह ख़त्म नहीं होगा, ख़ुलअ़ में माल तभी

वाजिब होता है जब औरत ख़ुशी से उसे मंज़ूर कर ले।

ख़ुलअ़ बाइन तलाक़ है फ़स्ख़े अक़्द (निकाह तोड़ना) नहीं है:- ख़ुलअ़ से जो तलाक़ लागू होती है वह उन तीन तलाक़ों में से मानी जाती है जिन का मालिक शौहर होता है इस लिये यह फ़स्ख़े अक़्द (निकाह तोड़ना) नहीं है। तलाक़ साफ़ शब्दों में या इशारे से औरत को अपनी बीवी होने के अधिकार से निकाल देने का नाम है, ख़ुलअ़ भी इसी में से है, तो तलाक़ की जगह ख़ुलअ़ का शब्द इस्तेमाल किया जाये तो वह भी तलाक़ होगा। माल के बदले में हो तो भी तलाक़ होगा, और अगर माल के बदले में न हो तो इशारे से तलाक़ होगा, जिस से बाइन तलाक़ पड़ जाती है। ईला में भी तलाक़ पड़ जाती है अगर क़सम न तोड़े और चार महीने तक बीवी के क़रीब न जाये जिस का बयान ईला के विषय में आ चुका है। इस के अलावा और भी सूरतें हैं जैसे मर्द का बीवी के हुक़ूक़ अदा करने से मजबूर होना या औरत पर बदकारी (ग़लत काम) का आरोप लगाना जिसे लिआन कहते हैं तो ये सूरतें तलाक़ की हैं फ़स्ख़े अक़्द (निकाह तोड़ने वाली) नहीं हैं।

फ़स्ख़े अक़्द:- फ़स्ख़े अक़्द की एक सूरत क़ौमियत (राष्ट्रीयता) का अलग हो जाना यानी मियाँ बीवी में से कोई एक दारूल-हरब (वह देश जहाँ ग़ैर मुस्लिमों की हुकुमत हो और मुसलमानों को धार्मिक काम करने से रोका जाए) को छोड़ कर दारुल-इस्लाम (वह देश जिस में इस्लामी हुकुमत हो) में आ बसे तो क़ौमियत बदल जायेगी निकाह ख़त्म हो जायेगा लेकिन अगर वापसी का इरादा हो तो ख़त्म न होगा। निकाह के ख़त्म होने का एक सबब यह भी है कि निकाह सही तरीक़े से न हुआ हो जैसे गवाहों की मौजूदगी के बग़ैर निकाह कर लिया या एक मुक़र्ररह मुद्दत के लिये किया तो निकाह ही सही नहीं था इस लिये दोनों के बीच जुदाई वाजिब होगी और उसे फ़स्ख़े अक़्द कहा जायेगा। ग़ैर मुस्लिम मियाँ बीवी में से किसी का

मुसलमान हो जाना भी फ़स्ख़े अक़्द का सबब है। ऐसा काम जिस से हुर्मते मुसाहिरह (जिन से निकाह हराम है) लागू हो जाये वह भी फ़स्ख़े अक़्द को वाजिब करती है जैसे मर्द अपनी बीवी की माँ या बीवी की ज़वान लड़की जो पहले शौहर से हो, को जिन्सी ख़्वाहिश के साथ हाथ लगाये या औरत बुरी ख़्वाहिश के साथ अपने शौहर के बेटे को प्यार करे वग़ैरा।

उन बुराइयों का बयान जो निकाह को ख़त्म कर देती हैं:- इस मे इन्नीन (नामर्द, जो पैदाइशी तौर पर या बुढ़ापे की वजह से मुबाशरत करने की ताक़त न रखता हो), मजबूब (हिजड़ा, ज़न्ख़ा), ख़सी (जिस के फ़ोते 'अंडकोष' निकाल दिये गये हों) शामिल हैं। वे बीमारियाँ जो शौहर या बीवी में पाई जा सकती हैं उन की दो क़िस्में हैं, एक क़िस्म वह है जिन की मौजूदगी से मियाँ और बीवी दोनों निकाह को ख़त्म करने की माँग बग़ैर किसी शर्त के कर सकते हैं। दूसरी क़िस्म की बुराइयाँ वे हैं जिन की वजह से निकाह को ख़त्म करने की माँग उस सूरत में हो सकती है कि निकाह के वक़्त यह शर्त रखी गई हो कि उस बुराईयां की वजह से निकाह सही नहीं होगा पहली क़िस्म की बुराई तीन तरह की हैं-

1. वे बुराईयां जो मर्द और औरत दोनों में हो सकती हैं जैसे बर्स, कोढ़, जुनून, वग़ैरा।

2. वे बुराइयाँ जो मर्द के साथ ख़ास हैं जैसे नामर्द होना, हिजड़ा होना, या फ़ोतों का निकला हुआ होना।

3. वे बुराइयाँ जो औरत के साथ ख़ास हैं जैसे ग़फ़ल (फ़ोतों की सूजन की तरह की एक बीमारी है जो जिस्म के अन्दर के गुदूद बढ़ जाने से पैदा हो जाती है), क़रन (गोश्त या हड्डी का बहुत ज़्यादा उभर जाना,) रतक़ जुड़ जाना, (रास्ता बन्द हो जाना) तीनों बीमारियाँ मुबाशरत से रोकने वाली हैं।

ये बुराइयाँ वे हैं जिन के पाये जाने पर मियाँ बीवी को यह हक़ पहुंचता है कि निकाह को ख़त्म करने की माँग बग़ैर किसी शर्त के कर सकें। दूसरी क़िस्म की बुराइयाँ जिन से निकाह का तोड़ना वाजिब नहीं होता (अगर उन के न होने की शर्त न रखी गई हो) अकसर पाये जाते हैं, जैसे नज़र की कमज़ोरी (अंधापन), रतौंध, काले रंग का होना, गंजापन, ज़्यादा खाना। इस जैसी बहुत सी बीमारियाँ और बुराइयाँ हैं जिन की वजह से निकाह को तोड़ना लाज़िम नहीं होता जब तक कि मियाँ बीवी में से कोई निकाह के वक़्त इन बुराइयों से ख़ाली होने की शर्त न रख दे।

तफ़रीक़ (जुदाई):- निकाह को ख़त्म करने की दरख़्वास्त (अपील) पर क़ाज़ी या अदालत का हाकिमे शरई मियाँ बीवी में जुदाई कराने का हुक्म देता है, इसी को तफ़रीक़ (जुदाई) कहते हैं। तलाक़ और खुलअ़ के अलावा यह निकाह का रिश्ता तोड़ने की एक और सूरत है। खुलासा यह है कि अगर शौहर में बीवी की जिन्सी ख़्वाहिश पूरी करने की योग्यता नहीं है या योग्यता तो है मगर ऐसे बुरे मर्ज़ में पड़ा हुआ है जिस की वजह से बीवी उसे पसन्द नहीं करती (जैसे कोढ़, बर्स, सुज़ाक, उपदंश या वह बिल्कुल पागल हो गया हो) या बीवी को ख़र्च देने की ताक़त नहीं रखता या बीवी की कोई ख़बर नहीं लेता या लापता (ग़ायब) हो गया है, इन सब सूरतों में औरत को इस्लामी शरीअत ने यह हक़ दिया है कि अगर वह ऐसे शौहर की निकाह की क़ैद से खुद को निकालना चाहे तो क़ाज़ी या जहाँ इस्लामी हुकूमत न हो तो कुछ ज़िम्मेदार मुसलमान लोगों के सामने अपना मुआमला पेश कर के छुटकारा हासिल कर ले। इसी तरह अगर औरत को जुनून हो जाये या ऐसी बीमारी हो जाये जिस की वजह से मुबाशरत न की जा सकती हो या कोई ऐसी बीमारी हो जाए जिस से मर्द को भी वह बीमारी हो जाने का डर हो तो मर्द क़ाज़ी के सामने या ज़िम्मेदार दीनदार मुसलमानों के सामने अपील कर के जुदाई करा सकता है।

फ़स्ख़े निकाह और तफ़रीक़ के बारे में फुक़हा का मसलक:- नामर्द और हिजड़े से निकाह तोड़ने के सिलसिले में तमाम इमाम एक राय हैं कि बग़ैर किसी शर्त के निकाह तोड़ा जा सकता है, लेकिन दूसरे ऐबों के बारे में कुछ इख़्तिलाफ़ है। इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम अबू यूसुफ़ (रह०) की राय है कि जब मर्द को तलाक़ का इख़्तियार है तो फ़स्ख़ कराने का इख़्तियार उस को देना ज़रूरी नहीं है और औरत को नामर्द और हिजड़े से निकाह फ़स्ख़ करने का हक़ है। बाक़ी दूसरे ऐब जैसे जुनून, कोढ़, या बर्स वग़ैरा में नहीं है। मगर इमाम अबू हनीफ़ा रह० के दूसरे मशहूर शागिर्द इमाम मुहम्मद (रह०) का कहना है कि फ़स्ख़ का हक़ नुक़सान को दूर करने के लिये दिया गया है। इस लिये हर वह बीमारी जिस से औरत को तकलीफ़ पहुंचती हो उस में निकाह को फ़स्ख़ करने का हक़ उसे है-'

> 'दूसरी तकलीफ़ देने वाली बीमारी में औरत का निकाह फ़स्ख़ करने का हक़ उसी तरह है जिस तरह मर्द के नामर्द और हिजड़ा होने की सूरत में।' (हिदाया)

इमाम शाफ़ई (रह०) बर्स, जुनून और तमाम उन बीमारियों में जो मुबाशरत से रोकने वाली हों जुदाई की इजाज़त देते हैं बाक़ी में नहीं।

इमाम मालिक (रह०) नामर्द, हिजड़ा, ग़ायब, मुतअन्नत (ताक़त रखने के बावजूद औरत की ज़रूरतें न पूरी करने वाला) मजनून, कोढ़ और उन बीमारियों में मुबतला रहने वाला जो उस की वजह से दूसरों को भी हो सकती हों, से निकाह के फ़स्ख़ करने की इजाज़त देते हैं औरत में ऐसी ख़राबियाँ जो मुबाशरत से रोकने वाली हों उन में भी मर्द को फ़स्ख़ का इख़्तियार है।

इमाम हंबल (रह०) भी इन ख़राबियों की बिना पर निकाह को ख़त्म करने की इजाज़त इस शर्त पर देते हैं कि मर्द या औरत को निकाह से पहले उन की जानकारी न हो अगर जानकारी के बावजूद निकाह किया तो निकाह ख़त्म करने की इजाज़त नहीं है।

फ़ुक़हा की इन रायों को देख कर यह अंदाज़ा हो सकता है कि इस में कितनी बढ़ोतरी है। इसी ज़रूरत की वजह से मौलाना अशरफ़ अली थानवी (रह०) ने दूसरे बड़े उलमा (विद्धवानों) के सहयोग से जिन में मौलाना मुफ़्ती मुहम्मद शफ़ीअ भी शामिल हैं अपनी निगरानी में कुछ रसाईल (पत्रिकाएँ) संपादित कराये हैं जिन में औरत और मर्द के बीच जुदाई के मसाइल दर्ज कर दिये हैं और उसी पर अमल किया जाता है, वे पत्रिकाएँ ये हैं-

'अल हुलिय्यतुल-नाजिज़ा लिलहुलिय्यतुल आजिज़ा' अलमुख़तारात फ़ी मुहिम्मातित तफ़रीक़ वल ख़ियारात 'अलमरकूमात लिलमज़लूमात।'

मुतअन्नत, मुफ़लिस, मफ़क़ूदुल ख़बर, ग़ाइब ग़ैर मफ़कूद, और मफ़कूद की वापसी के बाद के मसाइल पर इन पत्रिकाओं में विस्तार के साथ रोशनी डाली गई है।

जुदाई कराने का हुक्म और उस का असरः- जुदाई कराने से एक तलाक़ रजई पड़ जाती है यानी इद्दत के बाद उस औरत को दूसरा निकाह करने का हक़ होगा, अगर शौहर इद्दत के अन्दर वापस आ जाये (ग़ायब होने की सूरत में) या औरत की ज़रूरतें पूरी करने पर राज़ी हो जाये (मुतअन्नत होने की सूरत में) या स्वस्थ हो जाये (उस बीमारी से जिस की वजह से जुदाई की गई थी) तो इद्दत के दिनों में उस को रूजूअ करने का हक़ होगा चाहे औरत राज़ी हो या न हो।

अगर इद्दत के बाद वापस आये तो भी दो सूरतें हैं। एक यह कि उस ने औरत के दावे के ख़िलाफ़ साबित कर दिया तो औरत को उसी की बीवी रहना होगा। दूसरी सूरत यह कि औरत के दावे के ख़िलाफ़ कोई बात साबित नहीं की तो फिर औरत आज़ाद है जिस से चाहे निकाह कर ले।

अगर शौहर ने औरत के दावे के ख़िलाफ़ कोई बात साबित कर

दी, लेकिन वह औरत किसी दूसरे से निकाह कर चुकी है तो भी औरत को पहले शौहर के पास आना होगा, न नये सिरे से निकाह करने की ज़रूरत है और न मह्‌र की, हाँ अगर दूसरे शौहर से ख़लवते सहीहा (सुहाग रात) हो चुकी है तो औरत पर इद्दत वाजिब है, पहला शौहर इद्दत भर उस से जिमाअ (संभोग) नहीं कर सकता, अगर औरत हामला है तो बच्चे के पैदा होने तक जिमाअ नहीं कर सकता, वह दूसरे शौहर से भी मह्‌र पाने की हक़दार होगी अगर ख़लवते सहीहा हो चुकी है लेकिन अगर सिर्फ़ निकाह हुआ है तो मह्‌र की हक़दार न होगी। (अल मरक़ूमात लिल मज़्लूमात)

मफ्कूदुल ख़बर (लापता होना):- ऊपर फ़स्ख़े निकाह और तफ़रीक़ (जुदाई) के मसाइल बयान किये गये हैं जिन में मफ़्क़ूदुल ख़बर और ग़ाइब ग़ैर मफ़्क़ूद का ज़िक्र भी आया है। इस लिये कुछ विस्तार के साथ दोनों सूरतें और उन के बारे में मसाइल को बयान किया जाता है। मफ़्क़ूदुल ख़बर वह शख़्स है जो एक औरत का शौहर हो और फिर बाहर चला गया हो और किसी को ख़बर न हो कि वह कहाँ चला गया न यह मालूम हो कि वह ज़िन्दा है या मर गया है। ऐसे शख़्स की बीवी दूसरा निकाह नहीं कर सकती जब तक यह यक़ीन न हो जाये कि वह मर चुका है। पहले ज़माने में इधर से उधर ख़बरें पहुँचाने की सुविधाएँ कम थीं और बहुत दिनों के बाद भी यह यक़ीन कर लेना कि फ़लाँ शख़्स अब ज़िन्दा नहीं मुम्किन न था, लेकिन अब सूरतेहाल बदल गई है और मफ़्क़ूद (लापता) शख़्स का हाल छुपा रहना तक़रीबन मुश्किल हो गया है। मफ़्क़ूदुल ख़बर की बीवी के बारे में इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) और इमाम शाफ़ई (रह०) की राय यह है कि उस वक़्त तक निकाह न करे तब तक उस शौहर की मृत्यु हो जाने का यक़ीन न हो जाये चाहे उस में कितने ही दिन क्यों न लग जायें। निकाह का एहतराम और अख़्लाक़ की पाकीज़गी इस राय को सही मानती है, मगर इस ज़माने में

जबकि नफ़्स को रोकने और सब्र नाम की कोई चीज़ बाक़ी नहीं रही। उम्मत के फ़ुक़हा ने औरत को बग़ैर किसी ज़िम्मेदार के जो उस की इज़्ज़त व आबरू का भी रक्षक हो छोड़े रखना इस्लामी मिज़ाज के ख़िलाफ़ समझा है और इमाम मालिक और इमाम हंबल ने इन्तिज़ार की हद चार साल मुक़र्रर की जिस के बाद औरत को इस्लामी अदालत का हाकिम दूसरा निकाह करने का इजाज़तनामा दे सकता है, हनफ़ी फ़ुक़हा की भी यही राय है जिस पर इस तरह से अमल किया जायेगा-1

1. सब से पहले शौहर के मफ़क़ूदुल ख़बर होने और ख़र्च का इन्तिज़ाम न होने और शौहर की ग़ैर मौजूदगी में इज़्ज़त व आबरू की हिफ़ाज़त न हो सकने की आशंका ज़ाहिर करते हुये अपना दावा इस्लामी हुकूमत या ज़िम्मेदार मुसलमानों की जमाअत के सामने रखे।

2. दावा पेश करते वक़्त दो ऐसे भरोसेमंद गवाह पेश कर के यह साबित करे कि फ़लाँ शख़्स से मेरा निकाह हुआ था और वह इतने दिनों से लापता है, इस लिये मैं उस से अलग होना चाहती हूँ, शौहर के लापता हो जाने की गवाही भी गवाहों के ज़रिए देना होगी।

3. हाकिम या मुसलमान जमाअत जो भी इस मुआमले पर सोच विचार करे वह अपनी तरफ़ से उस शख़्स की ज़िन्दगी या मौत की तहक़ीक़ मुम्किन सुविधाओं के ज़रिए कर ले और जब उस का पता न चल पाये तो औरत को चार साल तक इन्तिज़ार करने का हुक्म दे। इस मुद्दत के गुज़रने पर उस शख़्स के मुर्दा क़रार दिये जाने का हुक्म लागू कर दिया जायेगा। अब वह औरत अपील कर के उस हुक्म की नक़ल हासिल करे और दूसरे निकाह की इजाज़त माँगे। इजाज़त मिलने की तारीख़ से चार महीने दस दिन (मौत की इद्दत) गुज़ारने के बाद दूसरा निकाह करने का हक़ हो जायेगा।

चार साल इन्तिज़ार करने की मुद्दत उस समय से गिनी जाएगी

जब से शौहर के लापता होने का हुक्म किसी हाकिम या इस्लामी जमाअत की तरफ़ से दिया जाये, इस से पहले जितनी मुद्दत गुज़री होगी वह शुमार न की जायेगी।

अगर मफ़कूदुल ख़बर की बीवी के ख़र्च का कोई इन्तिज़ाम न हो या उस के गुनाह में पड़ जानें का डर हो तो हनफ़ी उलमा इस की भी इजाज़त देते हैं कि जुदाई के लिये एक साल की भी मुद्दत मुक़र्रर की जा सकती है, मालिकी फ़िक़ह से इस इजाज़त की ताईद होती है क्योंकि उन के यहाँ चार साल की मुद्दत उस हालत में मुक़र्रर की गई है जब औरत के ख़र्च का इन्तिज़ाम हो, और उस के गुनाह में पड़ने का डर न हो और शौहर के वापस आने की संभावना भी हो, बल्कि मालिकी मसलक में यहाँ तक इजाज़त है कि अगर ख़र्च का कोई इन्तिज़ाम न हो तो तुरन्त जुदाई कराई जा सकती है, मगर हनफ़ी उलमा एहतियात के ख़याल से एक साल की मुद्दत मुक़र्रर करना ज़रूरी समझते हैं।

तफ़रीक़ (जुदाई) का असरः- मफ़कूद और उस की बीवी के बीच जुदाई का हुक्म लागू हो जाने के बाद एक तलाक़ रजई पड़ जायेगी यानी वह तलाक़ जिस की इद्दत के ज़माने में अगर शौहर वापस आ जाता तो उस से रूजूअ कर सकता और नये निकाह की ज़रूरत नहीं पड़ती। लेकिन इद्दत गुज़र जाने के बाद रूजूअ का हक़ ख़त्म हो जायेगा और एक तलाक़ बाइन पड़ जायेगी अब औरत को हक़ है जिस से चाहे निकाह कर ले।

दूसरा निकाह हो जाने के बाद मफ़कूद शौहर की वापसीः- अगर फ़स्ख़े निकाह (निकाह तोड़ना) के बाद औरत ने दूसरा निकाह कर लिया, इस के बाद इत्तिफ़ाक़ से वह मफ़कूद शौहर वापस आ जाये तो क्या होना चाहिये? इस बारे में फ़िक़ह के उलमा की राय यह है-

'यह वापसी अगर ऐसे वक़्त में हुई कि दूसरे शौहर से ख़लवते

सहीहा (सुहाग रात) की नौबत नहीं आई थी तो तमाम इमामों की राय है कि औरत पहले शौहर को वापस कर दी जायेगी और दूसरे शौहर का निकाह ख़त्म कर दिया जायेगा लेकिन अगर दूसरे शौहर से ख़लवते सहीहा हो चुकने के बाद मफ़क़ूद शौहर वापस आये तो इमाम मालिक (रह०) की मशहूर राय यह है कि इस सूरत में वह दूसरे शौहर ही के पास रहेगी, पहले शौहर का (फ़स्ख़े निकाह के बाद) उस बीवी पर कोई हक़ नहीं रहा। भोपाल के फ़ैसला करने वाले विभाग ने भी जो हनफ़ी उलमा-ए-फ़िक़ह को मानने वाले हैं इसी राय को पसन्द किया है, चुनाचे फ़ैसला करने वाले विभाग के क़ानून में है कि 'अगर मफ़क़ूद शख़्स फ़स्ख़े निकाह और इद्दत के दिन गुज़र जाने के बाद वापस आये और उस औरत पर दावा करे तो ऐसी सूरत में उस के दावे को नहीं सुना जायेगा।'

यहाँ यह ज़ाहिर कर देना ज़रूरी है कि इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) पहले शौहर को ही बीवी का हक़दार समझते हैं और उन की राय में उसे पहले शौहर ही को वापस कर देना चाहिये।

ग़ायब ग़ैर मफ़क़ूदः- एक सूरत यह भी पेश आती है कि शौहर लापता तो नहीं होता, लेकिन किसी दूसरी जगह चला जाता है, न तो बीवी के पास आता है और न उस के लिये ख़र्च भेजता है। ऐसे शौहर से छुटकारे की सूरत यह है कि औरत अदालत के हाकिम के सामने अपना दावा पेश करके उस से अपना निकाह होना और ख़र्च न देना साबित करे। अब अगर सिर्फ़ ख़र्च की तकलीफ़ की वजह से अलग होना चाहती है और उस के ख़र्च का मुनासिब इन्तिज़ाम हो जाने पर यह तकलीफ़ दूर हो जाये तो फिर निकाह को फ़स्ख़ करने की कोशिश न करना चाहिये, लेकिन अगर ख़र्च का इन्तिज़ाम न हो या इन्तिज़ाम हो जाये मगर उस के गुनाह में पड़ने का डर हो तो इन दोनों सूरतों में अदालत का हाकिम या इस्लामी जमाअत उस के शौहर के पास दो आदमियों के ज़रिये यह संदेश भेजे कि या तो तुम

ख़ुद आओ या अपनी बीवी को बुलवा कर उस की पूरी देख भाल करो वर्ना उस को तलाक़ दे दो, अगर तुम ने इन बातों में से कोई काम नहीं की तो हम तुम्हारे और तुम्हारी बीवी के बीच जुदाई करा देंगे। इस चेतावनी के बाद अगर उस ने तलाक़ नहीं दी और न ख़र्च का बोझ उठाया तो दावा करने वाले की तरफ़ से एक महीने की मुहलत उसे और दी जायेगी कि वह अपना व्यवहार सही करे। इन दिनों में अगर दोनों के बीच सुलह हो गई और बीवी ने दावा वापस ले लिया तो फिर जुदाई नहीं होगी, वर्ना जुदाई करा दी जायेगी। जुदाई से एक तलाक़ रजई पड़ जायेगी जिस की इद्दत गुज़रने के बाद उस को दूसरा निकाह करने का हक़ होगा।

जुदाई के बाद शौहर की वापसीः- अगर शौहर जुदाई के बाद वापस आ जाये तो एक सूरत यह है कि वह इद्दत के अन्दर आ गया और बीवी की ज़रूरतों को पूरी करने पर राज़ी भी हुआ तो उसे रूजूअ करने का हक़ होगा। इस में औरत की रज़ामंदी लेने की ज़रूरत नहीं है। दूसरी सूरत यह है कि वह इद्दत के बाद वापस आया तो उस में भी दो हालतें मम्किन हैं-

'जैसा कि ऊपर बयान किया जा चुका है कि हाकिमे अदालत (या इस्लामी जमाअत) गा़यब शौहर के पास दो आदमी भेजेगा जो जुबानी या तहरीरी (लिखित) संदेश ले जायेंगे तो अगर उन्होंने उस संदेश के जवाब में कोई जुबानी या तहरीरी जवाब उस से हासिल कर लिया हो और उस के बाद जुदाई की इजाज़त दी गई हो तो अब शौहर को बग़ैर औरत की रज़ामंदी और बग़ैर नये निकाह के उस से बीवी का संबंध क़ायम करना सही नहीं, लेकिन अगर ऐसा नहीं हुआ है और शौहर को ख़बर दिये बग़ैर हाकिम या इस्लामी जमाअत ने शरई गवाही ले कर जुदाई करा दी और शौहर वापस आ कर यह साबित करता है कि मैं उस को बराबर ख़र्च देता था या वह मेरी फ़लाँ जायदाद से अपने ख़र्च पूरे करती थी तो इस सूरत में औरत

को उस की बीवी बन कर रहना होगा और अगर उस ने दूसरा निकाह कर लिया है तो वह फ़ासिद (विकृत) समझा जायेगा, लेकिन अगर औरत के दावे के ख़िलाफ़ उस ने कोई बात साबित नहीं की तो दूसरा निकाह सही क़रार पायेगा।

पहली सूरत में अगर दूसरे शौहर से ख़लवते सहीहा हो चुकी हो जब भी पहले शौहर के पास वापस आना होगा, न नये निकाह की ज़रूरत है और न नये महर की। हाँ औरत पर इद्दत वाजिब है, यानी इद्दत भर शौहर उस से अलग रहेगा और अगर हामला है तो बच्चा पैदा हो जाने तक वह उस के क़रीब नहीं जायेगा। इसी तरह ख़लवते सहीहा हो चुकने की सूरत में वह दूसरे शौहर से मह्र पाने की भी हक़दार होगी। लेकिन अगर सिर्फ़ निकाह हुआ था और ख़लवत नहीं हुई तो मह्र पाने की हक़दार न होगी।'

(अल मरकूमात लिलमज़लूमात)

रजअतः- लुग़त/डिक्शनरी में इस का अर्थ वापस करना और वापस होना है *'रजअतुहू अलैहिम'* (मैं ने फ़लाँ चीज़ उन्हें वापस कर दी) और *'रजअश्शैओ इला अहलिही'* (फ़लाँ चीज़ उस के हक़दार को वापस हो गई)

फ़िक़ह की परिभाषा में ऐसी औरत को जिसे ग़ैर बाइना तलाक़ दी गई हो पहली हालत में वापस लाना रुजूअ कहलाता है। निकाह कर के एक मर्द एक औरत की इज़्ज़त व आबरू का मालिक हो जाता है यह मिलकियत तलाक़ रजई से ख़ात्म हो जाती है यानी उस मिलकियत से फ़ायदा उठाना हलाल नहीं रहता लेकिन रूजूअ का हक़ इद्दत की मुद्दत के अन्दर रहता है तो अगर वह रूजूअ करे तो वह मिलकियत जो ख़त्म हो गई थी पूरी तरह शौहर की तरफ़ लौट आती है यह रूजूअ शब्द के ज़रिये भी होता है और कभी मुबाशरत कर लेने से भी रुजूअ हो जाता है चाहे रुजूअ की नियत हो या न हो, रुजूअ के बारे में कुरआन सुन्नत और इजमाअ (आम सहमती) से

सुबूत मिलता है, कुरआन में है-

وَبُعُوْلَتُهُنَّ اَحَقُّ بِرَدِّهِنَّ فِيْ ذَالِكَ اِنْ اَرَادُوْا اِصْلَاحًاط (سوره بقره : ۲۲۸)

'व बुऊलतुहुन्ना अहक़्क़ु बिरद्दिहिन्ना फ़ी ज़ालिका इन अरादू इसलाहा।' (सूरः बक़रह: 228)

अनुवादः- यानी शौहरों को सब से ज़्यादा अपनी बीवियों को फिर अपने पास लौटा लेने का हक़ है अगर बेहतरी और सुधार चाहते हों।

हदीस में है कि आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हज़रत उमर (र०) से फ़रमाया था कि अपने बेटे को हुक्म दो कि वह रूजूअ कर ले, तमाम इमाम इस बात पर एक राय रखते हैं कि आज़ाद शख़्स जब अपनी बीवी को तीन तलाक़ से कम दे और गुलाम दो तलाक़ से कम दे तो उन्हें हक़ है कि इद्दत के दिनों में उन से रूजूअ कर लें।

रजअत के अरकान व शर्तेंः- इस के तीन अरकान हैं रुजूअ के शब्द, महल्ले रुजूअ (जिस से रुजूअ किया जाये) और मुरतजेअ (रुजूअ करने वाला) रुजूअ की चार शर्तें हैं-

1. तलाक़ रजई हो, तलाक़ बाइन के बाद रुजूअ नहीं हो सकता। एक तलाक़ जो मुबाशरत से पहले न हो और किसी तरह के मुआवज़े (बदला) में भी न हो जैसे ख़ुलअ़ में होती हो और न उन शब्दों और इशारों में हो जिस का मतलब बाइन होना है।

2. रुजूअ में ख़ियार की शर्त न हो।

3. रुजुअ के लिये किसी आने वाले वक़्त की पाबंदी न हो।

4. रुजुअ में किसी काम से शर्त न लगाई गई हो।

रुजूअ की दो क़िस्में हैंः- क़ौली और फ़ेअली, क़ौली रुजूअ या तो साफ़ शब्दों में होगा जैसे मैं ने तुझ से रुजूअ कर लिया या मैं तुझे वापस लेता हूँ या मैं ने तुझे रोक लिया या किसी दूसरे शख़्स से

कहा कि मैं ने अपनी बीवी से रुजूअ कर लिया या इशारे के शब्दों में होगा जैसे कहे 'तू मेरे लिये वैसी ही है जैसी कि थी या अब हम दोनों ऐसे ही हो गये जैसे पहले थे या तू मेरी बीवी है वग़ैरा। रहा फ़ेअली रुजूअ यानी अमल से रुजूअ करना तो वह काम है जिस से हुर्मते मुसाहिरह हो जाती है यानी हाथ लगाना, बोसा लेना, शर्मगाह पर नज़र रखना जिस के साथ जिन्सी ख़्वाहिश भी हो, ग़र्ज़ हर वह काम जिस से जिन्सी तहरीक पैदा हो। इसी तरह औरत मर्द का बोसा ले और उस की शर्मगाह की तरफ़ देखे और यह सब जिन्सी तक़ाज़े से हो तो रजअत हो जायेगी। हुर्मते मुसाहिरह मुबाशरत से या ऐसे कामों से जो मुबाशरत का सबब होती हैं लागू होती है। बेहतर यही है कि ज़ुबान से कह कर रुजूअ करे और दो आदमियों को गवाह भी बना ले चाहे अमली तौर पर रुजूअ किया हो, अगर एक शख़्स ने ऐसी औरत से रुजूअ किया जो मौजूद नहीं है तो इस बात की उसे ख़बर कर देना मुस्तहब है।

तलाक़ रजई के बाद भी शौहर का बीवी पर हक़ रहता है और ख़त्म नहीं होता जब तक कि इद्दत के दिन गुज़र न जायें। इसी लिये ऐसी तलाक़ पाने वाली औरत का अपने घर से निकलना मना है। अल्लाह तआला का फ़रमान है 'लातुख़रिजूहुन्ना मिम बुयूतिहिन्ना' यानी उन्हें उनके घरों से न निकलने दो।

रुजूअ का हक़ कब ख़त्म हो जाता है:- तलाक़ रजई पाई हुई औरत से उस के शौहर का रुजूअ करने का हक़ इद्दत के दिन गुज़र जाने पर ख़त्म हो जाता है। यह मुद्दत तीन बार हैज़ आने तक है या (हामिला होने की सूरत में) बच्चा पैदा होने तक है। अगर औरत को हैज़ न आते हों और हामिला भी न हो तो तलाक़ की तारीख़ से तीन महीने तक का ज़माना इद्दत के दिन माने जायेंगे।

रुजूअ करते वक़्त इद्दत की मुद्दत ख़त्म होने या न होने के बारे में मियाँ बीवी के बीच इख़्तिलाफ़ हो सकता है। जैसे मर्द कहता है

कि अभी इद्दत के दिन बाक़ी हैं, औरत कहती है कि वह गुज़र चुके, या मर्द कहता है कि मैं ने इद्दत पूरी होने से पहले ही रुजूअ कर लिया था, मगर बीवी को इस की ख़बर इद्दत ख़त्म होने से पहले नहीं हुई लेकिन बीवी इस से इनकार करती है तो इन सूरतों में मसाइल पैदा होते हैं। कुछ सूरतें बयान की जाती हैं-

1. शौहर दावा करता है कि मैं ने इद्दत पूरी होने से पहले रुजूअ कर लिया था लेकिन रुजूअ का कोई गवाह नहीं है। ऐसी सूरत में जब तक बीवी उस के दावे को मान न ले रुजूअ नहीं माना जायेगा, और औरत की बात मानी जायेगी। शौहर को इस बात के लिये बीवी से क़सम लेने का हक़ होता है। (कुछ फ़ुक़हा के नज़दीक)

2. शौहर इद्दत पूरी होने से पहले रुजूअ कर लेने की गवाही पेश कर दे कि उस ने गवाह के सामने इद्दत पूरी होने से पहले फ़लाँ औरत से रूजूअ कर लिया था तो ऐसी हालत में रुजूअ सही होगा। इसी तरह यह गवाही कि उस ने इद्दत के दिन गुज़रने से पहले अपनी बीवी से मुबाशरत करने या जिन्सी ख़्वाहिश से छूने और पकड़ने का इक़रार कर लिया था तो भी रुजूअ करने को मान लिया जायेगा लेकिन इद्दत गुज़र जाने के बाद ऐसे इक़रार को रुजूअ का इक़रार नहीं कहा जायेगा, बल्कि उस की हैसियत सिर्फ़ रुजूअ का दावा करने वाले की होगी, अगर बीवी नहीं मानती तो रुजूअ साबित न होगा।

3. अगर मर्द इद्दत के दौरान रुजूअ कर लेने का दावा इन शब्दों में करे 'मैं ने तुझ से कल ही रुजुअ कर लिया था' तो रुजूअ करना मान लिया जायेगा क्योंकि जो बात वर्तमान काल के शब्द में कह सकता है उस के कहे जाने की ख़बर भी दे सकता है। अगर भूतकाल में कहे जाने का मक़सद यही बताना हो कि मैं ने तुझ से रुजूअ कर लिया है लेकिन अगर मक़सद यह न हो बल्कि ख़बर की इत्तला देना मक़सद हो तो बीवी के मानने के बाद रुजूअ करना माना जायेगा फिर जब वह मान ले कि वास्तव में रुजूअ कर लिया था तो

रुजूअ सही होगा। गुज़रे हुए दिन के रुजूअ को बयान करने के साथ रुजूअ के इरादे की शर्त लगाने की वजह यह है कि हो सकता है जिस वक़्त ये शब्द (मैं ने तुझ से कल रुजूअ कर लिया था) कहे गये वह आख़िरी हैज़ के दिन की आख़िरी घड़ी रही हो और औरत रुजूअ होने को न माने, ऐसी सूरत में शरीअत कहती है कि यह रुजूअ है क्योंकि शौहर का मक़सद रुजूअ करना ही था।

4. मर्द ने औरत से कहा कि मैं ने तुझ से रुजूअ किया और उसे यह मालूम नहीं कि उस की इद्दत गुज़र चुकी है। अब दो हालतें हो सकती हैं या तो औरत तुरन्त जवाब में कह दे कि मेरी इद्दत के दिन ख़त्म हो गये और वह वक़्त भी इद्दत पूरी हो जाने को ज़ाहिर करता हो तो रजअत नहीं होगी। दूसरी हालत यह है कि रुजूअ कर लेने की बात सुन कर वह चुप रही फिर देर के बाद उस ने कहा कि मेरी इद्दत तो गुज़र चुकी, ऐसी हालत में रुजूअ सही होगा क्योंकि वह पहले चुप रही।

5. मुतल्लक़ा (तलाक़शुदा) रजईया से शौहर ने कहा कि मैं ने रुजुअ कर लिया उस पर उस ने पहले तो यह दावा किया कि उसकी इद्दत पूरी हो चुकी है फिर ख़ुद ही उस से मुकर गई और कहा अभी इद्दत पूरी नहीं हुई है, ऐसी सूरत में शौहर का रुजूअ कर लेना सही है क्योंकि उस ने अपनी बात को इस लिये झुठलाया कि शौहर का रुजूअ करने का हक़ बाक़ी रहे।

6. बीवी जिस को एक तलाक़ रजई दी गई थी शौहर उस से अकेले में मिले और फिर दावा करे कि उस ने मुबाशरत की है, तो बीवी अगर शौहर की बात को झुठलाती है और अपने आप को बाइना तलाक़शुदा साबित करना चाहती है तो भी मर्द का रुजूअ करना सही है और उस की बात बग़ैर क़सम दिलाये सच मान ली जायेगी क्योंकि उन दोनों का अकेले में मिलना साबित है जिस से मर्द की

सच्चाई और औरत का झूठी होना साबित होता है, लेकिन अगर उन दोनों का अकेले में मिलना जुलना साबित न हो बल्कि सिर्फ़ मुबाशरत का दावा है जिस को बीवी ने झुठलाया तो फिर उसे रुजूअ करने का हक़ नहीं होगा क्योंकि अकेले में उन दोनों का मिलन न होने से मुबाशरत का इक़रार झूठ माना जायेगा।

इद्दत के पूरा होने के बारे में ये वे मसाइल हैं जिन का संबंध हैज़ के दिनों से है। लेकिन अगर हमल हो तो पूरे तौर पर बच्चा पैदा होने के बाद इद्दत पूरी होगी, चुनांचे अगर पूरे तौर पर बच्चे का जन्म न हुआ हो तो जन्म के वक़्त भी शौहर रुजूअ कर सकता है, इस से फ़र्क़ नहीं पड़ता कि बच्चा पूरा हो गया हो या अधूरे बच्चे का गर्भपात हो गया हो।

❀

इद्दत का बयान

इद्दत का शब्द लुग़त के हिसाब से अदद से बना है अद्द का अर्थ शुमार करना (गिनती करना) है। कहा जाता है 'अदत्तुतश शैआ अद्दन' यानी फ़लाँ चीज़ को गिन लिया गया। लुग़त में इस शब्द को औरत के हैज़ के दिनों और तुहर (पाकी) के दिनों के लिये इस्तेमाल करते हैं। शरीअत की परिभाषा में सिर्फ़ हैज़ के दिनों के लिये नहीं बल्कि इस का मतलब औरत को दूसरी शादी के लिये मख़सूस दिनों के पूरा हो जाने का इन्तिज़ार करना है। शरई मतलब ज़्यादा वसीअ है, सिर्फ़ हैज़ की मुद्दत और पाकी की मुद्दत के इन्तिज़ार के अलावा कुछ महीने गुज़रने के इन्तिज़ार और बच्चा पैदा हो जाने के इन्तिज़ार को भी इद्दत कहते हैं। इद्दत की परिभाषा का परिचय हनफ़ी फ़िक़्हा ने इस तरह दिया है-

इद्दत की परिभाषाः- इद्दत वह नियुक्त किया गया ज़माना है जो निकाह या मुबाशरत के आसार ख़त्म हो जाने के लिये रखी गई है। 'निकाह या मुबाशरत' कहने से वह लौंडी भी शामिल हो गई जो निकाह के ज़रिये मिलकियत में न आई हो बल्कि किसी और तरह से मिलकियत में आई हो और उस से मुबाशरत हो चुकी हो। निकाह के आसार दो क़िस्म के होते हैं (1) माद्दी जैसे हमल का हो जाना (2) अख़लाक़ी जैसे शौहर का एहतराम और दूसरे हुक़ूक़ व फ़राइज़।

मुक़र्ररा मुद्दत में निम्नलिखित सूरतें शामिल हैं-

1. हैज़ वाली औरतों के लिये तीन क़ुरू (यानी तीन बार हैज़ के दिन आना)

2. आइसा (जिस का हैज़ बन्द हो चुका हो) या कम उम्र जिस को हैज़ के दिन न होते हों दोनों के लिये तीन महीने।

3. हामिला औरत के लिये बच्चा पैदा हो जाने तक की मुद्दत।

4. ग़ैर हामिला जिस के शौहर की मृत्यु हो गई हो उस के लिये चार महीने दस दिन।

इद्दत वाजिब होने के कारणः- इद्दत वाजिब होने के तीन कारण हैं। एक कारण अक़्दे सही है यानी सही निकाह के ज़रिए आई हुई औरत के शौहर की मृत्यु इद्दत को वाजिब करने वाली है कि वह एक मुद्दत तक दूसरे निकाह से रूकी रहे, शौहर का सोग मनाये और बनाव सिंगार से परहेज़ करे। दूसरा कारण मुबाशरत है यानी एक ऐसी मुद्दत तक दूसरे से निकाह न करे कि रहम का हमल से पाक होना ज़ाहिर हो जाये, और तीसरा सबब ख़लवत है चाहे ख़लवते सहीहा हो या फ़ासिदा, यह भी उसी तरह इद्दत को वाजिब करने का सबब है जिस तरह मुबाशरत।

इद्दत की सूरतें और उन की क़िस्में:- इद्दत की तीन सूरतें हैं, हमल की इद्दत, महीनों की इद्दत और हैज़ के दिनों की इद्दत। इद्दत शौहर से अलग होने पर वाजिब होती है। जुदाई या तो शौहर की मृत्यु से होती है, या शौहर की ज़िन्दगी में तलाक़ और फ़स्ख़े निकाह के सबब से। शौहर की मृत्यु के वक़्त या तो बीवी हामिला होगी या हामिला नहीं होगी। पहली सूरत में बच्चा पैदा होने से इद्दत पूरी होगी, दूसरी सूरत में इद्दत की मुद्दत चार महीने और दस दिन है। तलाक़ या फ़स्ख़े निकाह की सूरत में जो इद्दत वाजिब होगी उस में इद्दत की तीन क़िस्में हैं-

1. औरत जिसे तलाक़ मिले और वह हामिला हो, उस की इद्दत की मुद्दत बच्चा पैदा होने से पूरी होगी।

2. जिसे तलाक़ मिल जाये और हामिला न हो लेकिन हैज़ वाली हो

उस की इद्दत क़रू (यानी हैज़ या पाकी के दिन) आने पर पूरी होगी।

3. वह जिसे तलाक़ मिल जाये और आइसा हो (यानी हैज़ के दिन न आते हों) उस की इद्दत की मुद्दत पूरे तीन महीने है।

इद्दत गुज़ारने वाली औरत को मुअतद्दह कहते हैं तो मुअतद्दह की कुल पाँच क़िस्में हुई।

हमल की इद्दत:- तलाक़ पाई हुई औरत या ऐसी औरत जिस के शौहर की मृत्यु हो गई हो और वह हामिला हो तो उस की इद्दत बच्चे के पैदा होने से पूरी होगी। इस की तीन शर्तें हैं, पहली यह कि हमल पूरी तरह से बाहर आ चुका हो, अगर बच्चा पेट में मर जाये और उसे काट कर निकालना पड़े और अधिकतर हिस्सा निकालने के बाद भी कुछ हिस्सा रह जाए तो जब तक वह निकाल न दिया जाये इद्दत पूरी नहीं होगी, दूसरी शर्त यह है कि अगर हमल गिर जाये इस तरह से कि इन्सानी अंग अभी बने न हों तो इद्दत का पूरा होना नहीं माना जायेगा बल्कि ज़रूरी होगा कि तीन बार हैज़ के दिन पूरे करे, तीसरी शर्त यह है कि अगर हमल में दो बच्चे या ज़्यादा हों तो जब तक आख़िरी बच्चा पूरी तरह से पैदा न हो जाये, इद्दत की मुद्दत पूरी न होगी। कुरआन में फ़रमाया गया है-

وَاُولَاتُ الْاَحْمَالِ اَجَلُهُنَّ اَنْ يَّضَعْنَ حَمْلَهُنَّ. (سورہ طلاق:۴)

'व उलातुल अहमालि अजलुहुन्ना अय्यज़अना हमलहुन्ना'

(सूर: तलाक़ 4)

अनुवाद:- और हामिला औरत की इद्दत बच्चे का पैदा होना हैं।

ग़ैर हामिला की इद्दत:- अगर शौहर की मृत्यु हो जाये और वह हामिला न हो तो उस की इद्दत चार महीने दस दिन है। कुरआन मजीद में है-

وَالَّذِيْنَ يُتَوَفَّوْنَ مِنْكُمْ وَيَذَرُوْنَ اَزْوَاجًا يَّتَرَبَّصْنَ
بِاَنْفُسِهِنَّ اَرْبَعَةَ اَشْهُرٍ وَّعَشْرًا. (بقره: ٢٣٤)

'वल्लज़ीना युतवफ़्फ़ौना मिनकुम व यज़रूना अज़्वाजयं यतरब्बस्ना बिअनफ़ुसिहिन्ना अरबअता अश्हुरिवं वअशरा'

(सूर: बक़र: 234)

अनुवादः- तुम में से जिन की मृत्य हो जाये और बीवियाँ छोड़ जायें तो वे अपने आप को चार महीने दस दिन तक निकाह वग़ैरा से रोके रखें।

इस हुक्म से ज़ाहिर है कि शौहर की मृत्यु एक ऐसी दुर्घटना है कि उस के बाद बीवी के लिये मुनासिब नहीं कि वह कहीं आये जाये या किसी से निकाह करने या बनाव सिंगार के साथ रहने की बात करे। इस लिये चार महीने और दस दिन औरत की इद्दत मुक़र्रर फ़रमाई गई कि इस मुद्दत तक न उसे निकाह करना चाहिये न ज़ेवर पहनना चाहिये, माँग निकालना, रंगीन कपड़े पहनना, ख़ुशबू लगाना, यानी वे तमाम बातें जिन से ख़ुशी का इज़्हार होता है इस मुद्दत में इन से रोका गया है, फिर भी सिर में तेल डालना और कंघी करना मना नहीं है, अगर जुयें पड़ जाने या कोई और तकलीफ़ पैदा हो जाने का डर हो, सुर्मा लगाने में भी कोई हर्ज नहीं है अगर न लगाने से आँख में तकलीफ़ हो जाती हो, ज़्यादा ज़रूरत पड़ जाने पर घर से बाहर दूसरी जगह भी जा सकती है। नहाने धोने जिस्म और कपड़ों को साफ़ सुथरा रखने में भी कोई हर्ज नहीं है। ग़म का इज़्हार करने की जो नाजाइज़ सूरतें हैं उन से बचना चाहिये, जैसे मातमी वस्त्र पहन कर ऊँची आवाज़ से रोना धोना, क़ब्र पर चादर चढ़ाना वग़ैरा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान है-

'मुसलमान औरत जो अल्लाह और आख़िरत पर ईमान रखती है उसे जाइज़ नहीं कि किसी की मौत पर तीन दिन से ज़्यादा सोग मनाये अपने शौहर के अलावा।'

यानी सिर्फ़ शौहर के लिये ही ज़्यादा सोग और ग़म का इज़हार किया जा सकता है लेकिन वह भी चार महीने दस दिन से ज़्यादा नहीं।

तलाक़ पाई हुई बीवी की इद्दत:- अगर एक शख़्स अपनी बीवी को अपनी ज़िन्दगी ही में छोड़ दे चाहे तलाक़ दे कर या फ़स्ख़े निकाह की बिना पर और उस औरत को हैज़ आते हों तो उस की इद्दत तीन हैज़ है। इन दिनों में न तो वह दूसरे शौहर से निकाह कर सकती है और न उस घर से जहाँ उसे तलाक़ मिली बाहर जा सकती है कुरआन में है-

وَالْمُطَلَّقٰتُ يَتَرَبَّصْنَ بِاَنْفُسِهِنَّ ثَلٰثَةَ قُرُوْءٍ. (بقرہ:۲۲۸)

'वल मुतल्लक़ातु यतरब्बस्ना बिअनफ़ुसिहिन्ना सलासता कुरूइन' (सूरः बक़रः 228)

अनुवाद:- तलाक़ पाई हुई औरतें तीन हैज़ के दिनों के गुज़ारने तक निकाह वग़ैरा से रुकी रहें।

आइसा की इद्दत:- आइसा वह औरत है जिसे हैज़ न आता हो जैसे 9 साल से कम उम्र की लड़की, या ज़्यादा उम्र की औरतें जिन्हें हैज़ आना बन्द हो चुका हो। वे औरतें जो हैज़ आये बग़ैर बालिग़ हो जायें या बालिग़ होने पर भी हैज़ न आये वे भी इस में शामिल हैं। अल्लाह तआला का फ़रमान है-

وَالّٰئِیْ یَئِسْنَ مِنَ الْمَحِیْضِ مِنْ نِّسَآئِکُمْ اِنِ ارْتَبْتُمْ
فَعِدَّتُهُنَّ ثَلٰثَةُ اَشْهُرٍ وَّالّٰئِیْ لَمْ یَحِضْنَ. (سورہ طلاق:۴)

'वल्लाई यइस्ना मिनल महीज़ि मिन निसाइकुम इनिरतबतुम फ़इद्दतुहुन्ना सलासतु अशहुरिवं वल्लाई लम यहिज़्ना।'

(सूरः तलाक़ 4)

अनुवाद:- और जो औरतें नाउम्मीद हो चुकीं हैज़ से उन औरतों के बारे में अगर तुम को शक हो गया तो उन की इद्दत तीन महीने हैं और ऐसे ही वे औरतें जिन को हैज़ नहीं आया।

ज़्यादा उम्र वाली औरतें जिन को हैज़ आना बन्द हो गया हो महीनों के हिसाब से इद्दत गुज़ार लें और इद्दत पूरी हो जाने के बाद उसे अच्छी तरह से हैज़ आ जाये तो अब उसको फिर से इद्दत गुज़ारना नहीं है, अगर उसने इद्दत गुज़ारने के बाद शादी कर ली तो वह सही होगी, अगर ऐसे ही वह औरत जिस को हैज़ न आता हो महीनों के हिसाब से इद्दत गुज़ार रही है और उस बीच हैज़ आने लगे (यानी वह बीमारी का ख़ून या और कोई ख़ून न हो) तो महीनों वाली इद्दत हैज़ की इद्दत हो जायेगी और फिर से दूसरी इद्दत शुरू होगी।

यही हुक्म छोटी उम्र की लड़की का है जो 9 साल की हो और महीनों वाली इद्दत गुज़ार रही हो कि इद्दत गुज़ारने के दौरान उसे हैज़ आ जाये तो उस की यह इद्दत हैज़ की इद्दत हो जायेगी और जब तक उसे तीन हैज़ न आ जायें उस की इद्दत ख़त्म न होगी हाँ अगर महीनों वाली इद्दत पूरी हो जाने के बाद उसे हैज़ आया तो अब उस पर कुछ लागू न होगा।

ज़ानिया की इद्दत:- अगर कोई बुरा मर्द और औरत ज़िना कर बैठें और औरत को हमल रह जाये तो अगर वही दोनों निकाह कर लें तो हमल की हालत में भी कर सकते हैं, क्योंकि शरीअत के कानून को तोड़ने वाले के लिये इद्दत की शरई क़ैद भी कोई अर्थ नहीं रखती और ज़्यादा गुनाह से बचने की यही सूरत है कि इद्दत की क़ैद उन से हटा कर उन्हीं को आपस में बाँध दिया जाये। यही हुक्म उस औरत का भी है जिस के शौहर ने ज़िना करने की वजह से उस को तलाक़ दे दी हो और यही हुक्म उस औरत का है जो तलाक़ पाने के बाद ज़िना कर बैठी हो, कुरआन में है **'अज़्ज़ानी ला यनकिहु इल्ला ज़ानियतन।'** (ज़िनाकार निकाह न करे, मगर ज़ानिया के साथ)

अगर ज़ानिया औरत से कोई दूसरा शख़्स निकाह करने के लिये तैयार हो जाये तो हमल की हालत में भी निकाह हो सकता है, लेकिन दूसरा शख़्स हमल की हालत में मुबाशरत नहीं कर सकता

जबकि ज़िना करने वाला कर सकता है। इस्लामी शरीअत दूसरे शख़्स को इजाज़त नहीं देती कि वह ज़ानिया से इस हालत में फ़ायदा उठाये, और लड़की या लड़के का नसब (वंश) शक व शुबहा वाला हो जाये।

इद्दत का शुमार तलाक़ की सूरत में:- पहले तलाक़ के बयान में ज़िक्र हो चुका है कि हैज़ की हालत में तलाक़ देना मकरूह और सही नहीं है लेकिन फिर भी कोई यह गुनाह कर जाये तो इद्दत में वह हैज़ शुमार न होगा जिसमें तलाक़ दी गई बल्कि इसके बाद के तीन हैज़ इद्दत में शुमार किए जाऐंगे। रजई तलाक़ पाई हुई की इद्दत पूरी नहीं हुई थी कि शौहर का इंतिक़ाल हो गया तो अब इस वक़्त में मौत की इद्दत पूरी करनी होगी। तलाक़ की इद्दत का एतेबार न होगा। यह इस लिये कि तलाक़ रजई की सूरत में निकाह का रिश्ता नहीं टूटता है लेकिन अगर तलाक़े मुग़ल्लज़ा या तलाक़े बाइना दी थी और फिर मृत्यु हो गई तो तलाक़ ही की इद्दत पूरी करना काफ़ी है।

मुअतद्दा (इद्दत गुज़ारने वाली) को निकाह का पैग़ाम देना:- तलाक़शुदा औरत चाहे वह रजईय्या हो या बाइना उसका शौहर उसे फिर से अपने निकाह में वापस ले सकता है तो ऐसी मुअतद्दा औरत को इशारे से भी निकाह का पैग़ाम देना हराम है, रही वह औरत जो शौहर की मृत्यु के बाद इद्दत गुज़ार रही हो या उसे मुग़ल्लज़ा तलाक़ हो चुकी हो और वह इद्दत में हो तो उसे भी साफ़ तौर से निकाह का पैग़ाम देना हराम है, हाँ इशारे से कोई शख़्स निकाह के इरादे की नियत का इज़हार कर सकता है, क़ुरआन में इस बारे में हिदायत दी गई है-

وَلَا جُنَاحَ عَلَيْكُمْ فِيمَا عَرَّضْتُمْ بِهِ مِنْ خِطْبَةِ النِّسَاءِ اَوْ اَكْنَنْتُمْ فِيْ
اَنْفُسِكُمْ عَلِمَ اللّٰهُ اَنَّكُمْ سَتَذْكُرُوْنَهُنَّ وَلٰكِنْ لَّا تُوَاعِدُوْهُنَّ سِرًّا
اِلَّآ اَنْ تَقُوْلُوْا قَوْلًا مَّعْرُوْفًا وَلَا تَعْزِمُوْا عُقْدَةَ النِّكَاحِ حَتّٰى يَبْلُغَ
الْكِتٰبُ اَجَلَهٗ ط (البقره: ٢٣٥)

'वला जुनाहा अलैकुम फ़ीमा अर्रज़्तुम बिही मिन ख़ितबतिन्निसाई औ अकननतुम फ़ी अनफ़ुसिकुम अलिमल्लाहु अन्नकुम सतज़्कुरूनहुन्ना वला किल्ला तुवाईदूहुन्ना सिर्रन इल्ला अन तक़ूलू क़ौलम मअरूफ़ा, वला तअज़िमू उक़्दतन्निकाहि हत्ता यबलुग़ल किताबु अजलहू।'

(सूर: बक़रह: 235)

अनुवादः- (जिन औरतों के शौहरों की मृत्यु हो गई) अगर उनसे निकाह के पैग़ाम के तौर पर इशारे से भी कुछ कहो या अपने दिल में छुपाये रखो तो इस में कोई गुनाह नहीं है। अल्लाह को मालूम है कि उन औरतों का ध्यान तुम्हें ज़रूर आयेगा लेकिन छुपे तौर पर कोई अहद न कर लेना इस के अलावा कि कोई भली बात कह दो, तुम उस वक़्त तक पुख़्ता निकाह का इरादा न करो जब तक इद्दत ख़त्म न हो जाये।

क़ौले मअरूफ़ (यानी भली बात) से मुराद ऐसी बात है जिस के कहने का रिवाज हो जैसे मैं इन ख़ूबियों वाली औरत से निकाह करना चाहता हूँ, या मुझे ऐसी ख़ूबियों वाली बीवियाँ पसन्द हैं।

हलालाः- यह बात बयान हो चुकी है कि जिस औरत को उस के शौहर ने मुग़ल्लज़ा तलाक़ दे दी हो अगर वही फिर उसे अपने निकाह के रिश्ते में लेना चाहे तो इस की बस एक सूरत है और वह है हलाला। जिस की सूरत यह होती है कि मुअतद्दा अपनी इद्दत का ज़माना गुज़ार कर अपनी मर्ज़ी से किसी से निकाह करे, और बीवी जैसा संबंध क़ायम हो जाने के बाद अगर वह मर्द अपनी मर्ज़ी से उस को तलाक़ देता है या उस की मृत्यु हो जाती है तो इद्दत गुज़ारने के बाद पहले शौहर से फिर निकाह कर सकती है। क़ुरआन में यह हुक्म इन शब्दों में बयान हुआ है-

فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا تَحِلُّ لَهٗ مِنْۢ بَعْدُ حَتّٰى تَنْكِحَ زَوْجًا غَيْرَهٗ ؕ فَاِنْ طَلَّقَهَا فَلَا جُنَاحَ عَلَيْهِمَآ اَنْ يَّتَرَاجَعَآ اِنْ ظَنَّآ اَنْ يُّقِيْمَا حُدُوْدَ اللّٰهِ ؕ

(سورۂ بقرہ:۲۳۰)

'फ़इन तल्लक़हा फ़ला तहिल्लु लहू मिमबअदु हत्ता तनकिहा ज़ोजन गै़रहू, फ़इन तल्लक़हा फ़ला जुनाहा अलैहिमा अंय्यतराजआ इन ज़न्ना अंय्युक़ीमा हुदूदल्लाहि।'

अनुवादः- अगर तीसरी तलाक़ भी उसको दे दी तो उस के बाद वह उसके लिये हलाल नहीं रहेगी यहाँ तक कि कोई दूसरा उस के साथ निकाह कर ले फिर अगर वह दूसरा भी उसे तलाक़े बाइना देदे तो दोनों को यह इजाज़त है कि फिर से मियाँ बीवी हो जायें। इस शर्त पर कि दोनों अल्लाह की हुदूद को क़ायम करने का फ़ैसला कर लें।

इन आयतों में दोबारा निकाह में लेने की यह कुछ शर्तें बताई गई हैं-

एक यह कि वह मुतल्लक़ा (तलाक़शुदा) औरत किसी दूसरे शख़्स से निकाह करे।

दूसरी यह कि वह दूसरा शौहर अपनी मर्ज़ी से उस को तलाक़ दे दे।

तीसरी यह कि अब अगर यह औरत और उस का पहला शौहर फिर निकाह का रिश्ता क़ायम करना चाहते हैं तो ख़ूब सोच लें कि जिन हुकूक़ व फ़राइज़ में कोताही की वजह से इख़्तिलाफ़ पैदा हुआ था वह दोबारा न होने पाये और दोनों अल्लाह की हुदूद के पाबन्द रहें। नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने इस बारे में कुछ और हिदायतें दी हैं। दूसरे शौहर से निकाह शरई तौर पर होना चाहिये, निकाह में कोई शर्त लगाना हराम है। इस लिये मुतल्लक़ा (तलाक़शुदा) औरत या उस का सरपरस्त या निकाह करने वाला यह शर्त न लगाये कि वह तलाक़ ज़रूर देगा बल्कि निकाह इसी तरह बग़ैर किसी शर्त के होना चाहिये जिस तरह हुआ करता है और तलाक़ भी उसी वजह से देना चाहिय जो तलाक़ की सही बुनियाद बन सकती है। अगर कोई शख़्स शर्त लगा कर निकाह करेगा जो शरअन ग़लत है और फिर हलाले के लिये तलाक़ दे देगा तो उस को भी गुनाह होगा और लानत का हक़दार होगा क्योंकि आँहज़रत

सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम नें हलाला करने वाले और जिस के लिये हलाला किया जाये दोनों पर बहुत ही लानत की है।

(इब्नेमाजा)

हज़रत उमर (र०) के ज़माने में इस तरह निकाह करने का क़िस्सा पेश आया तो आप ने फ़रमाया 'जो मर्द या औरत तलाक़ देने की शर्त लगा कर (हलाले के लिये) निकाह करेंगे मैं उन को रज्म (पत्थर मार मार कर हलाक करना) कर दूँगा'। अगर इतनी सख़्ती न की जाती तो रिश्ते की पवित्रता ख़त्म हो कर रह जाती।

पहले शौहर के लिये उस से तीन तलाक़ पाई हुई औरत तभी हलाल हो सकती है जब उस ने तलाक़ की इद्दत पूरी तरह गुज़ार कर दूसरे शौहर से बग़ैर किसी शर्त या दबाव के निकाह किया हो।

दूसरे शौहर ने शौहर होने का फ़र्ज़ अदा किया हो अगर वह मुबाशरत के बग़ैर मर गया तो औरत पहले शौहर के लिये हलाल नहीं हो सकती।

यह ज़रूरी है कि तलाक़ मुबाशरत के बाद दी गई हो और औरत ने तलाक़ की इद्दत पूरी कर ली हो तभी पहले शौहर से निकाह सही होगा।

नसब का सुबूतः- इस बात का सुबूत कि पैदा होने वाला बच्चा उसी शौहर का है जिस के साथ उस औरत का निकाह हुआ, शरीअत ने कम से कम हमल की मुद्दत का निर्धारण कर दिया है, कम से कम मुद्दत छः महीना है यानी अगर निकाह के बाद किसी औरत से छः महीने के बाद ही लड़का हो जाये तो उस का नसब साबित समझा जायेगा यानी यह कि यह उसी शौहर का लड़का है जिस से छः महीने पहले निकाह हुआ है, इस मुआमले में तमाम फ़ुक़हा की राय एक है।

इसी तरह अगर किसी औरत को तलाक़ मिल चुकी है या उस

का शौहर मर गया है और दो वर्ष तक उस ने निकाह नहीं किया कि उस के लड़का पैदा हो गया तो उस लड़के का नसब भी साबित समझा जायेगा। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक ज़्यादा से ज़्यादा हमल की मुद्दत दो वर्ष है और दूसरे इमामों के नज़दीक इस से ज़्यादा है, इस बात की दलील कि पूरे हमल की मुद्दत छः महीने है अल्लाह तआला का यह फ़रमान है *'हमलुहू व फ़िसालुहू सलासूना शहरा'* (हमल से दूध छुड़ाने तक तीस महीने की मुद्दत है) दूध पीने का ज़माना दो साल है *'व फ़िसालुहू फ़ी आमैनि'* कह कर अल्लाह तआला ने साफ़ साफ़ बता दिया बाक़ी छः महीने हमल के दिन हैं, अगर छः महीने से पहले किसी औरत के लड़का पैदा हो जाये और वह ठीक ठाक हो तो उसे हराम लड़का माना जायेगा, इसी तरह दो वर्ष के बाद पैदा होने वाले लडके का नसब हनफ़ियों के नज़दीक शक वाला है।

लिआनः- औरत और मर्द के बीच जुदाई का एक सबब लिआन है। अपनी औरत पर बग़ैर किसी तहक़ीक़ के ज़िना का आरोप लगाना और उसकी इज़्ज़त के दामन को दाग़दार बनाना बहुत ज़्यादा गुनाह है अगर कोई अपनी औरत पर यह आरोप लगाये कि उसने ज़िना किया है लेकिन गवाह कोई न हो और औरत उस से इन्कार करे और मुआमले को इस्लामी हुकूमत की अदालत में उठाये तो क़ाज़ी या हाकिम दोनों से चार चार बार क़सम लेगा और एक एक बार दोनों से झूठ बोलने वाले पर लानत करायेगा और फिर दोनों में जुदाई करा देगा। इस क़सम लेने और लानत कराने को शरीअत में लिआन कहते हैं। क़ुरआन में साफ़ तौर से इस का तरीक़ा यही बताया गया है-

وَالَّذِيْنَ يَرْمُوْنَ اَزْوَاجَهُمْ وَلَمْ يَكُنْ لَّهُمْ شُهَدَآءُ اِلَّا اَنْفُسُهُمْ فَشَهَادَةُ

اَحَدِهِمْ اَرْبَعُ شَهٰدٰتٍ بِاللّٰهِ اِنَّهٗ لَمِنَ الصّٰدِقِيْنَ. وَالْخَامِسَةُ اَنَّ لَعْنَتَ

اللّٰهِ عَلَيْهِ اِنْ كَانَ مِنَ الْكٰذِبِيْنَ. وَيَدْرَؤُا عَنْهَا الْعَذَابَ اَنْ تَشْهَدَ اَرْبَعَ

شَهٰدٰتٍۢ بِاللّٰهِ اِنَّهٗ لَمِنَ الْكٰذِبِيْنَ. وَالْخَامِسَةَ اَنَّ غَضَبَ اللّٰهِ عَلَيْهَآ اِنْ كَانَ مِنَ الصّٰدِقِيْنَ. (سورۂ نور :٦_٨)

'वल्लज़ीना यरमूना अज़वाजहुम वलम यकुल्लहुम शुहदाउ इल्ला अनफ़ुसुहुम फ़शहादतु अहदिहिम अरबउ शहादातिन बिल्लाहि इन्नहू लमिनस्सादिक़ीन। वल ख़ामिसतु अन्ना लअनतल्लाहि अलैहि इनं काना मिनल काज़िबीन। वयदरऊ अनहलअज़ाबा अन तशहदा अरबआ शहादातिम बिल्लाहि इन्नहू लमिनल काज़िबीन। वल ख़ामिसता अन्ना ग़ज़बल्लाहि अलैहा इन काना मिनस्सादिक़ीन। (सूरः नूर 6,8)

अनुवादः- जो लोग अपनी बीवियों पर ज़िना का आरोप लगाते हैं और इस बात पर उनके अलावा दूसरे गवाह भी नहीं तो आरोप लगाने वाले की गवाही यही है कि वह चार बार खुदा की क़सम खा कर कहे कि वह अपने दावे में सच्चा है और पाँचवीं बार कहे कि अगर मैं झूटा हूँ तो मुझ पर खुदा की लानत और यह दाग़ उसी वक़्त धुल सकता है जब वह भी चार बार क़सम खा कर कहे कि यह मर्द झूटा है और पाँचवीं बार कहे कि अगर मर्द आरोप लगाने में सच्चा हो तो मुझ पर खुदा का क़हर व ग़ज़ब हो।

लिआन की शर्तें यह हैं कि दोनों मियाँ बीवी आक़िल व बालिग़ हों उन की गवाही विश्वस्त हो औरत जुर्म से इन्कार करती हो, आरोप लगाने वाला उस का शौहर हो जो पहले आरोप लगाने में सज़ा न पा चुका हो या उसका यह काम न रहा हो, शौहर ने गवाह न पेश किये हों, दावा इस्लामी हुकूमत के सामने पेश किया गया हो। अगर इन सब बातों में कोई बात नहीं होगी तो लिआन नहीं होगा।

ज़िहारः- यह शब्द ज़हर से बना है जिस का अर्थ पीठ है जब इस की निस्बत सवारी के जानवर की तरफ़ की जाये तो सवार होने की जगह मुराद होती है लेकिन इन्सान की तरफ़ निस्बत करने से मुक़ारबत (क़रीब होने) का अर्थ लिया जाता है। जाहिलियत के

ज़माने में एक अरब अपनी बीवी से यह कह कर कि 'तू मेरे लिये माँ की पीठ की तरह है' उस से मुबाशरत को हराम कर लेता था और फिर वह औरत हमेशा के लिये अपने शौहर पर और दूसरों पर हराम हो जाती थी इस काम को ज़िहार कहा जाता है।

इस्लाम जब आया तब भी अरबों के तौर तरीक़े वही थे, उन में से जो तरीक़े इस्लाम में पसन्दीदा थे अल्लाह तआला ने उन्हें उसी तरह बाक़ी रखा और जो काम पसन्द नहीं थे उन से रोक दिया और जिन कामों में सुधार की ज़रूरत थी उन की इसलाह की। चुनाचे ज़िहार के बारे में इस्लाम ने जो आदेश दिये हैं वे ये हैं कि इन शब्दों का कहने वाला गुनहगार है अब जो यह गुनाह करेगा तो दुनिया में भी उस को सज़ा मिलेगी और वह सज़ा यह है कि जिस बीवी से ज़िहार करेगा उस से मुबाशरत उस वक़्त तक हराम रहेगी जब तक उस शब्द को ज़ुबान से कहने का ज़ुर्माना यानी कफ़्फ़ारा न दे दे। हर मुसलमान को समझ लेना चाहिये कि यह काम दीन के बिल्कुल ख़िलाफ़ है बल्कि यह बहुत ही बुरे क़िस्म का ढीटपन है कि कोई शख़्स गुस्से में आ कर अपनी बीवी से कहे कि तू मेरे लिये माँ की पीठ की तरह है या मेरी बहन के बराबर है वग़ैरा। इन शब्दों से अल्लाह तआला की नाफ़रमानी होती है और आख़िरत में अज़ाब का हक़दार होता है इस गुनाह से नदामत (पश्चाताप) का बदला कफ़्फ़ारा अदा करके उठाना पड़ता है।

ज़िहार का शरई मतलबः- हनफ़ी फ़ुक़हा के नज़दीक ज़िहार की परिभाषा यह है-

'एक मुसलमान मर्द अपनी बीवी को या बीवी के किसी अंग को ऐसी चीज़ से तशबीह (तुलना) दे जो हमेशा के लिये उस पर हराम है और कभी हलाल नहीं हो सकती।

तशबीह के शब्द से ऐसा वाक्य निकल गया जो तुलना के लिये न हो जैसे बीवी से इस तरह कहना कि जिस तरह मैं अपनी माँ की

इ़ज़्ज़त करता हूँ या फूफी का एहतराम करता हूँ, तेरी भी इ़ज़्ज़त करूँगा या जिस तरह मैं अपनी बहन या बेटी से मुहब्बत करता हूँ तुझ से भी मुहब्बत करूँगा। इन शब्दों से ज़िहार उसी वक़्त होगा जब वह ज़िहार के इरादे से कहे। यानी उस को अपने ऊपर हराम कर लेने के लिये। तशबीह दो तरह की होती है सरीह और ज़िम्नी, सरीह की मिसाल तो यही है कि 'तू मेरे लिये माँ की पीठ की तरह है' ज़िम्नी की मिसाल यह है कि वह अपनी बीवी को ऐसी औरत से तशबीह दे जिस के साथ उस के शौहर ने ज़िहार किया हो, यानी तू मेरे लिये ऐसी ही है जैसे फ़लाँ औरत अपने शौहर के लिये, तो यह कहा जा सकता है कि इस तशबीह से ज़िहार करना मक़सद है। ज़िहार को वक़्त के साथ शर्त लगाना भी ऐसा ही है जैसे 'तू एक महीने तक मेरे लिये माँ की पीठ की तरह है' तो यह भी ज़िहार है, अगर इस वक़्त के अन्दर मुबाशरत का इरादा करे तो कफ़्फ़ारा देना ज़रूरी होगा। अगर मिस्ल या बराबर का शब्द इस्तेमाल नहीं किया तो ज़िहार नहीं होगा मगर ऐसा कहना गुनाह है। औरत के बदन के किसी हिस्से से तशबीह देने से मुराद ऐसा हिस्सा या अंग है जिस का देखना हराम है जैसे पीठ या पेट वग़ैरा। इस में वह औरतें भी शामिल हैं जो दूध, ख़ानदान या शादी के रिश्ते से हराम हों। जैसे इस तरह कहा कि तू मेरे लिये मेरी सास या सौतेली बेटी की या फ़लाँ दूध शरीक बहन की पीठ की तरह है तो यह ज़िहार हो जायेगा लेकिन अगर जिस्म के ऐसे हिस्से से तशबीह दी जिस पर नज़र करना हराम नहीं जैसे तू मेरे लिये माँ के सिर या माँ के पैर की तरह है तो यह ज़िहार न होगा। इसी तरह यह भी ज़िहार न होगा अगर बीवी से कहा कि तू मेरे लिये अपनी बहन (यानी मेरी साली) की तरह है क्योंकि बीवी की बहन ख़ुद में हराम नहीं होती बीवी को तलाक़ देने के बाद शादी कर सकता है। इसी तरह मर्द के जिस्म के किसी हिस्से से तशबीह देने से भी ज़िहार नहीं माना जायेगा, अन्दर के हिस्से जैसे जिगर, दिल वग़ैरा को ज़िहार से तशबीह नहीं दिया जा सकता यही हुक्म वीर्य और दूध का है।

ज़िहार के बारे में शरई आदेशः– जैसे कि पहले बताया जा चुका है ज़िहार का तरीक़ा उस समय प्रचलित था जब लोग पढ़े लिखे नहीं होते थे। इस्लाम ने शुरू में इस बारे में कुछ नहीं कहा था मगर जब एक मुसलमान के घर में इस तरीक़े का इस्तेमाल किया गया तो शरई आदेश लागू हो गये। जिस का क़िस्सा यह है कि हज़रत औस बिन सामित की बीवी हज़रत ख़ौला बिन्ते सअलबा (र०) नमाज़ पढ़ रही थीं, उनके शौहर देखते रहे और जब उन्होंने सलाम फेरा तो औस (र०) ने उनसे मुबाशरत करने के लिये कहा, बीवी ने इन्कार किया तो उन्हें गुस्सा आ गया और ज़िहार कर बैठे (यानी तुम आज से मेरे लिये मेरी माँ की पीठ की तरह हो) हज़रत ख़ौला ने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से कहा कि 'औस ने जब मुझ से शादी की मैं नवजवान थी और मुझ में कशिश थी, फिर मैं बूढ़ी हो गई और ज़्यादा बच्चे होने की वजह से कोख फैल गई तो अब वह मुझे अपनी माँ की तरह कहते हैं' ज़िहार का जो तरीक़ा पहले से चला आ रहा था उस के बारे में कोई वह्‌ी अभी तक नहीं उतरी थी। आँहज़रत ﷺ ने हज़रत ख़ौला (र०) से फ़रमाया 'मैं तुम्हारे मुआमले में कुछ बोल नहीं सकता' हुज़ूर का फ़रमान सुन कर हज़रत ख़ौला (र०) फ़रयाद करने लगीं कि 'या रसूलल्लाह मेरे छोटे छोटे बच्चे हैं, अगर मैं उन्हें औस के हवाले कर दूँ तो तबाही है और अपने पास रखूं तो कहाँ से खिलाऊँ' हुज़ूर ﷺ ने फिर वही बात दुहराई तो वह रोकर कहने लगीं कि 'अल्लाह से अपनी भुखमरी और मजबूरी की शिकायत कर रही हूं' उस वक़्त अल्लाह ने यह वह्‌ी उतारी–

قَدْ سَمِعَ اللّٰهُ قَوْلَ الَّتِیْ تُجَادِلُکَ فِیْ زَوْجِهَا وَتَشْتَکِیْٓ اِلَی اللّٰهِ
وَاللّٰهُ یَسْمَعُ تَحَاوُرَکُمَا اِنَّ اللّٰهَ سَمِیْعٌۢ بَصِیْرٌ. (سورۃ مجادلہ:۱۲)

'क़द समिअल्लाहु क़ौलल्लती तुजादिलुका फ़ी ज़ौजिहा वतशतकी इलल्लाहि, वल्लाहु यस्मउ तहावुरकुमा इन्नल्लाहा समीउम्बसीर।'

(सूरः मुजादला, 12)

अनुवाद:- वास्तव में अल्लाह ने उसकी बात सुन ली जो अपने शौहर के बारे में आप से बात कर रही थी और अल्लाह से शिकायत कर रही थी, अल्लाह तुम दोनों की बातें सुन रहा था वह सब कुछ सुनने और देखने वाला है।

इस के बाद ज़िहार का सुबूत और उसकी हैसियत अल्लाह के नज़दीक इस तरह फ़रमाई गई-

اَلَّذِيْنَ يُظٰهِرُوْنَ مِنْكُمْ مِنْ نِّسَائِهِمْ مَاهُنَّ اُمَّهٰتِهِمْ اِنْ اُمَّهٰتُهُمْ اِلَّا الّٰٓـِٔيْ وَلَدْنَهُمْ وَاِنَّهُمْ لَيَقُوْلُوْنَ مُنْكَرًامِنَ الْقَوْلِ وَزُوْرًا.

'अल्लज़ीना युज़ाहिरूना मिनकुम मिन निसाइहिम मा हुन्ना उम्महातिहिम इन उम्माहातुहुम इल्लल्लाई वलदनहुम, व इन्नहुम लयकूलूना मुनकरम्मिनल क़ौलि वज़ूरा।'

अनुवाद:- तुम में से जो अपनी बीवियों से ज़िहार करते हैं यानी माँ कह देते हैं वे हक़ीक़त में उनकी माएँ नहीं, माएँ तो वे हैं जिन्होंने उनको जन्म दिया, वास्तव में ये लोग बड़ी घिनावनी और झूटी बातें कहते हैं।'

अल्लाह तआला ने ज़िहार के बारे में दो हुक्म दिये हैं उख़रवी और दुनयवी, यानी यह काम आख़िरत के अज़ाब को वाजिब करता है इस लिये इस काम के करने वाले को तौबा करना चाहिये और आने वाले समय में इस से दूर रहने का पक्का इरादा करना चाहिये। दूसरा हुक्म दुनिया से संबंध रखता है कि इस गुनाह का कफ़्फ़ारा यानी ज़िहार का कफ़्फ़ारा दे।

जिस काम को अल्लाह तआला ने बुराई और घिनावना कहा है वह आख़िरत का गुनाह और अज़ाब को वाजिब करने वाला है जिस की तलाफ़ी (क्षतिपूर्ति) सिर्फ़ तौबा से हो सकती है। अल्लाह तआला तौबा करने वालों की तौबा कुबूल करता है और उन के गुनाह माफ़ कर देता है। रहा इस बारे में दुनिया का हुक्म तो इस का ज़िक्र इस आयत में है-

وَالَّـذِيْنَ يُظَاهِرُوْنَ مِنْ نِّسَآئِهِمْ ثُمَّ يَعُوْدُوْنَ لِمَا قَالُوْا فَتَحْرِيْرُ رَقَبَةٍ مِّنْ قَبْـلِ اَنْ يَّتَمَآسَّاط ذٰلِـكُـمْ تُوْعَظُوْنَ بِهٖ ط وَالـلّٰهُ بِمَا تَـعْـمَـلُـوْنَ خَبِيْرٌ. فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ شَهْرَيْنِ مُتَتَابِعَيْنِ مِنْ قَبْـلِ اَنْ يَّتَـمَـاسَّـا فَـمَـنْ لَّمْ يَسْتَطِعْ فَاِطْعَامُ سِتِّيْنَ مِسْكِيْنًاط

(سورة مجادله: ٣،٤)

"वल्लज़ीना युज़ाहिरूना मिन निसाइहिम सुम्मा यऊदूना लिमा क़ालू फ़तहरीरू रक़बतिम्मिन क़ब्लि अय्यंतमास्सा, ज़ालिकुम तूअज़ूना बिही, वल्लाहु बिमा तअमलूना ख़बीर। फ़मल्लम यजिद फ़सियामु शहरैनि मुतताबिऐनि मिन क़ब्लि अय्यंतमास्सा, फ़मल्लम यस्ततिअ फ़इतआमु सित्तीना मिस्कीना।" (सूरः मुजादला 3-4)

अनुवादः- जो लोग अपनी औरतों से ज़िहार करें फिर कही हुई बात से वापस लौटें तो एक दूसरे को छूने से पहले उन पर एक गुलाम या लौंडी आज़ाद करना लाज़िम है। यह तुम्हारे लिये चेतावनी और नसीहत है और अल्लाह तुम्हारे कर्मों को ख़ूब जानता है, फिर अगर किसी को इस की ताक़त न हो तो दो महीने लगातार रोज़े रखे एक दूसरे को हाथ लगाने से पहले फिर जिस से यह भी न हो सके तो उस पर 60 मिस्कीनों को खाना खिलाना लाज़िम है।'

इन दो बातों में कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है कि यह काम नापसन्दीदा है और कफ़्फ़ारा अदा करने से पहले बीवी को हाथ लगाना हराम है। क्योंकि 'कफ़्फ़ारा' (प्रायश्चित) उस नापसन्दीदा काम को करने की सज़ा है जिस का करना अल्लाह की नाफ़रमानी थी। बीवी को हाथ लगाने से रोकना शौहर को सज़ा देने के लिये है, इस आयत में मुसलमानों को चेतावनी दी गई है कि मकरूह बात ज़ुबान से न निकालें, और गुस्से की हालत में बीवी से बातचीत करते वक़्त ज़ुबान को क़ाबू में रखें और ज़ुबान से शब्द निकालने में एहतियात करें।

ज़िहार की हालत में औरत से बातचीत करना हराम नहीं है मगर मुबाशरत और इस जैसे दूसरे काम से बचना ज़रूरी है। बग़ैर कफ़्फ़ारा दिये ऐसा करना बहुत ज़्यादा गुनाह है, औरत को भी ऐसी हालत में अपने क़रीब नहीं आने देना चाहिये।

ज़िहार का कफ़्फ़ारा देने का तरीक़ा:- कफ़्फ़ारा देने के तीन तरीक़े हैं-

1. मुसलमान गुलाम या लौंडी का आज़ाद करना (2) या दो महीने लगातार रोज़े रखना इस तरह कि बीच में एक रोज़ा भी छूटने न पाये। अगर एक रोज़ा भी छूट जायेगा तो फिर से रोज़ा शुरू करना पड़ेगा, अगर दो महीने तक लगातार रोज़ा न रख सकता हो तो फिर (3) 60 मुहताजों को खाना खिलाये (या तो एक दिन में 60 मुहताजों को दोनों वक़्त खाना खिलाये) या 60 दिन तक एक मिस्कीन को दोनों वक़्त खाना खिलाए) या सदक़-ए-फ़ित्र के बराबर यानी पौने दो सेर गेहूँ या साढ़े तीन सेर जौ या इन की क़ीमत 60 मुहताजों को दे दे या एक मुहताज को 60 दिन तक देता रहे एक ही दिन एक मुहताज को 60 दिन का ग़ल्ला न देना चाहिये।

नफ़्क़ा का बयान:- "बीवियों के शौहरों पर हुक़ूक़" के बयान में मुख़्तसर तौर से नफ़क़े का ज़िक्र किया जा चुका है अब यहाँ विस्तार से बयान किया जाता है-

लुग़त/डिक्शनरी में नफ़क़े का अर्थ है ख़र्च करना, या माल को ख़रीदने और बेचने का करोबार चालू करना जैसे *'नफ़क़तुद्दाब्बता'* (मैं ने जानवर को निकाल दिया) यह ऐसे मौक़े पर बोलते हैं जब जानवर को उस के मालिक के क़ब्ज़े से निकाल लिया जाये ख़रीद कर या *'नफ़क़तुस्सलअता'* (मैं ने माल को चालू कर दिया) यह उस वक़्त कहते हैं जब ख़रीदना और बेचना चालू हो जाये।

फ़िक़ही परिभाषा:- फ़िक़ह की परिभाषा में उन ज़रूरतों का इन्तिज़ाम करना जिन की ज़िम्मेदारी किसी पर डाली गई हो नफ़क़ा कहलाता है, इस में रोटी, सालन, वस्त्र घर और दूसरी चीज़ें जैसे पानी तेल रोशनी वग़ैरा शामिल हैं।

नफ़्क़े की शरई हैसियत:- इस की शरई हैसियत वाजिब है, चुनाचे शरीअत ने नफ़्क़े का इन्तिज़ाम करना, पति पर, बाप पर और मालिक पर वाजिब क़रार दिया है। इस को वाजिब करने वाली तीन चीज़ें हैं शादी, रिश्तेदारी और मिल्कियत (समपत्ति), इन तीनों सूरतों में नफ़्क़े की अदायगी वाजिब होना कुरआन, सुन्नत और इजमाअ (आम सहमति) से साबित है अल्लाह तआला का फ़रमान है-

اَلرِّجَالُ قَوَّامُوْنَ عَلَى النِّسَآءِ بِمَا فَضَّلَ اللّٰهُ بَعْضَهُمْ عَلٰى بَعْضٍ وَّبِمَآ اَنْفَقُوْا مِنْ اَمْوَالِهِمْ. (نساء:٣٣)

'अर्रिजालु क़व्वामूना अलन्निसाई बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बअज़हुम अला बअज़िवं वबिमा अनफ़कू मिन अमवालिहिम।' (सूर: निसा 33)

अनुवाद:- औरतों के निगराँ और ज़िम्मेदार मर्द हैं उस की वजह से जो अल्लाह ने एक को दूसरे पर दी है और इस वजह से कि वे अपना माल औरतों पर ख़र्च करते हैं।

दूसरी जगह फ़रमाया-

وَعَلَى الْمَوْلُوْدِ لَهٗ رِزْقُهُنَّ وَكِسْوَتُهُنَّ.

'व अलल मौलूदि लहू रिज़क़ुहुन्ना व किस्वतु हन्ना।'

अनुवाद:-औलाद वालों के ज़िम्मे उन औरतों का खाना कपड़ा है।

इन के अलावा और भी आयतें हैं जिन से साबित होता है कि बीवी का, औलाद का, माँ बाप और रिश्तेदारों का नफ़्क़ा वाजिब है।

हदीसें तो अपने परिवारों, रिश्तेदारों और गुलामों पर ख़र्च करने के फ़ज़ाइल से भरी पड़ी हैं एक हदीस है जो बुख़ारी ने रिवायत की है-

تَقُوْلُ الْمَرْاَةُ اِمَّا اَنْ تُطْعِمَنِیْ وَ اِمَّا اَنْ تُطَلِّقَنِیْ وَيَقُوْلُ الْعَبْدُ اَطْعِمْنِیْ وَاسْتَعْمِلْنِیْ وَيَقُوْلُ الْاِبْنُ اَطْعِمْنِیْ اِلٰى مَنْ تَدَعُنِیْ.

'तकूलुल मरअतु इम्मा अन तुतइमनी व इम्मा अन तुतल्लिक़नी व यकूलुल अब्दु अतइमनी वस्तअमिलनी व यकूलुल इब्नु अतइम्नी इला मन तदउनी।'

***अनुवाद*:-** औरत कहती है कि या तो मुझे मेरा खाना (नफ़्क़ा) दो या मुझे तलाक दे कर आज़ाद कर दो और गुलाम कहता है मुझे ख़ुराक दो और मुझ से काम लो और बेटा कहता है मुझे खाना खिलाओ मुझे किस पर छोड़ोगे।

इस हदीस को दूसरे तरीक़े से भी रिवायत किया गया है जिसमें *'अतइमनी'* के बजाये 'अनफ़िक़ अलय्या' है यानी मुझ पर ख़र्च करो।

इजमाअः यानी उम्मत के तमाम उलमा की यह राय है कि जिन हक़दारों के नफ़क़ात का इन्तिज़ाम करने के लिये कुरआन व हदीस में बार बार कहा गया है उन की देख भल करना वाजिब है जिस तरह औरत के बीवी बन जाने पर शौहर पर उस का ख़र्च वाजिब हो जाता है। उसी तरह कभी बीवी का रिश्ता ख़त्म हो जाने पर भी नफ़क़े का देना वाजिब होता है जैसे तलाक़ रजई के ज़रिए बीवी का रिश्ता ख़त्म होना।

बीवी का नफ़्क़ा और उसके मसाइलः- बीवी का नफ़्क़ा तीन क़िस्म की चीज़ों पर आधारित होता है-

(1) नान, नमक और उस के लवाज़मात आटा, गोश्त, दाल, सब्ज़ी, चूल्हा ईंधन पानी वग़ैरा (2) जिस्म ढांकने के लिये वस्त्र, हर मौसम के लिहाज़ से (3) घर जिस में सुकून से रह सके, तीनों क़िस्म से संबंधित मसाइल हैं- पहली क़िस्म यानी खाने से संबंधित चीज़ों का इन्तिज़ाम करना शौहर पर वाजिब है। पकाना खाना तैयार करना आम दसतूर के मुताबिक़ बीवी को करना चाहिये, अल्लाह तआला का फ़रमान है 'व लहुन्ना मिसलुल्लज़ी अलैहिन्ना बिलमअरूफ़ि' यानी जिस अच्छे व्यवहार की वह हक़दार हैं वैसा ही अच्छा व्यवहार करना उन पर भी वाजिब है) चुनाचे रसूलुल्लाह

सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने ज़िन्दगी के फ़राइज़ की जो तक़सीम हज़रत अली और हज़रत फ़ातिमा (र०) के बीच फ़रमाई वही ज़िन्दगी गुज़ारने का तरीक़ा है, आप ने घर के बाहर के कामों और मुआमलात का ज़िम्मेदार हज़रत अली (र०) को ठहराया और घर के अन्दर के कामों का ज़िम्मेदार हज़रत फ़ातिमा (र०) को ठहराया। वह ज़माना ऐसा था कि चक्की भी अपने हाथ से चलाना पड़ती थी और पानी भी अपने हाथ से भरना पड़ता था। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने घर के अन्दर के काम को हज़रत फ़ातिमा (र०) के हवाले किया तो हर मुसलमान औरत पर लाज़िम है कि वह अपने शौहर के घरेलू काम को पूरा करे बग़ैर यह सोचे कि उसकी निजी हैसियत क्या है। शौहर पर जिस तरह खाने पीने के सामान का इन्तिज़ाम करना लाज़िम है उसी तरह उस को बनाने के लिये जो सुहूलते होनी चाहिये जैसे छलनी छाज, आटा गूंधने का बर्तन, तवा, अंगीठी, डोई, चमचा वग़ैरा का ज़रूरत के मुताबिक़ इन्तिज़ाम करना ज़रूरी है फिर जहाँ आटा मशीनों पर पिसवा कर लाया जा सकता है तो उस पर यह ज़िम्मेदारी है कि आटा पिसवा कर लाये, जहाँ मज़दूरी ले कर पानी लाने वालियाँ पानी लाती हों वहाँ मज़दूरी दे कर पानी भरवाये, यानी कि बीवी के लिये घरेलू काम के करने में जहाँ तक हो सके सुहूलत का इन्तिज़ाम करना शौहर की ज़िम्मेदारी है। शौहर पर ज़रूरी है कि वह बीवी की हालत का लिहाज़ करे अगर वह बीमार हो जाये या बच्चे की पैदाइश के ज़माने में वह कोई काम करने के लायक़ न रहे तो उसके लिये पके पकाये खाने का इन्तिज़ाम करे। इसी तरह अगर वह अकेले घर के सारे काम न कर सके तो मदद के लिये किसी नोकरानी का इन्तिज़ाम करना भी शौहर की ज़िम्मेदारी है, इन सब के बावजूद शौहर के घर का प्रबंध चलाने वाली बीवी ही है, वह इस ज़िम्मेदारी से खुद को अलग नहीं कर सकती।

नफ़्क़े की दूसरी क़िस्म लिबास है, शौहर की यह ज़िम्मेदारी होती है कि हर छः महीने के लिये कपड़ा तैयार करा के बीवी को दे

जिस में गर्मी और ठंड से बचने का लिहाज़ भी रखा गया हो और आस पास के माहौल का भी, यानी सुहाग रात गुज़रने के बाद छः महीने से पहले भी कपड़े की माँग कर सकती है।

नफ़्क़े की तीसरी क़िस्म मकान है। शौहर पर लाज़िम है कि बीवी को ऐसे घर में रखे जो मियाँ बीवी के लिये मुनासिब हो जहाँ उस के दूसरे बीवी और बच्चे न हों। हाँ अगर छोटी उम्र के बच्चे हों जो औरत और मर्द के संबंध से बेख़बर हों ऐसे बच्चों की मौजूदगी में कोई हर्ज नहीं है, रही यह बात कि बीवी के साथ उस का शौहर अपनी बाँदी (लौंडी) रख सकता है कि नहीं सही बात इस बारे में यह है कि अगर उस के औलाद पैदा हो चुकी हो तो उस को बीवी के साथ न रखना चाहिये क्योंकि इस में आपसी संबंध ख़राब होने का ख़तरा है, यह आदेश उस हालत में हैं जब कि बीवी उन के साथ न रहना चाहे लेकिन अगर वह शौहर के घर वालों के साथ रहना पसन्द करे तो साथ रहना सही है। घर के लिये यह शर्त है कि उस में तमाम ज़रूरी और काम की चीज़ें मौजूद हों।

ऊपर ज़िक्र किये हुये आदेशों में नफ़्क़े की कम से कम ज़रूरतों का बयान है जिस की माँग बीवी अपने शौहर से कर सकती है। बाक़ी रहा दोनों की रज़ामंदी का मुआमला तो हर शख़्स पर यह ज़िम्मेदारी ख़ुदा की तरफ़ से लागू होती है कि वह अपनी बीवी के साथ अच्छे से अच्छा व्यवहार करे, कुछ फ़ुक़हा के नज़दीक नफ़्क़ा उस फ़ायदा उठाने का बदला है जो शौहर अपनी बीवी से हासिल करता है इस लिये उस पर लाज़िम है कि वह उस की आम ज़िन्दगी को बाक़ी रखने के लिये भी ख़र्च करे जिस से मुराद स्वस्थ ज़िन्दगी है, जब कि हनफ़ी हज़रात की राय में बीवी का नफ़्क़ा शौहर के घर की पाबन्द रहने का बदला है चाहे वह फ़ायदा उठाने के लायक़ हो या न हो। इस इख़्तिलाफ़े राय की बिना पर ताक़त पहुंचाने वाले फलों और दवाओं का इन्तिज़ाम करना और बनाव सिंगार के सामान

का इन्तिज़ाम करना बीवी के लिये शौहर पर ज़रूरी है। अगरचे नफ़्क़ा उस से फ़ायदा उठाने का मुआवज़ा (बदला) है, लेकिन अगर नफ़्क़ा शौहर के घर में पाबन्द रहने का बदला है तो शौहर पर ज़िम्मेदारी नहीं डाली जा सकती कि वह उस के लिये फलों या और ताक़त पहुंचाने वाली गिज़ा व दवा और पलकों आँखों और चेहरे वग़ैरा को ख़ूबसूरत बनाने वाली चीज़ों का भी इन्तिज़ाम करे। राय में इख़्तिलाफ़ होने के बावजूद भी तमाम फ़ुक़हा इस बात को मानते हैं कि इस्लामी शरीअत मियाँ बीवी में मुहब्बत के रिश्ते को ज़्यादा से ज़्यादा मज़बूत बनाये रखने की ताकीद करती है और जिन बातों से नफ़रत पैदा हो उन से दूर रहने का हुक्म देती है।

नफ़्क़े की मात्राः- हनफ़ी मसलक के लिहाज़ से अगर दोनों मियाँ बीवी ख़ुशहाल और धनी हैं तो अमीरों जैसा नफ़्क़ा और अगर ग़रीब हैं तो ग़रीबों जैसा नफ़्क़ा होगा लेकिन अगर इन में से एक ख़ुशहाल है और दूसरा ग़रीब है तो उस में इमामों की दो रायें हैं और दोनों पर अमल किया जा सकता है। पहली राय यह कि नफ़क़ा दोनों की हैसियत सामने रखते हुये मुक़र्रर किया जाये यानी न ज़्यादा और न कम। दूसरी राय यह कि सिर्फ़ शौहर की हैसियत का लिहाज़ रखा जाये अगर वह ख़ुशहाल है तो नफ़्क़ा अमीरों जैसा होगा वर्ना शौहर पर ग़रीबों जैसा नफ़्क़ा फ़र्ज़ है। इमाम शाफ़ई (रह०) इस राय से सहमत हैं लेकिन घर के बारे में बीवी की हैसियत का लिहाज़ रखना पसंदीदा मानते हैं।

नफ़्क़े में नक़द रक़म देनाः- हनफ़ियों के नज़दीक यह बात कि नफ़्क़ा अनाज और ज़रूरत की चीज़ों की शक्ल में मुक़र्रर किया जाये या नक़द की सूरत में। मियाँ बीवी की हैसियत उन की ज़िन्दगी गुज़ारने के तरीक़े और आम रिवाज को सामने रखते हुये मुक़र्रर करना चाहिये। एक मख़सूस रक़म नफ़क़े के लिये मुक़र्रर कर देना इस लिये सही नहीं है कि हर ज़माने के तक़ाज़े अलग अलग होते हैं और

चीज़ों की क़ीमतें भी उतरती चढ़ती रहती हैं, फिर शौहर के हालात को देखना ज़रूरी है अगर उसे महीने के हिसाब से तनख़्वाह मिलती है तो बीवी को भी महीने के हिसाब से नफ़्क़ा दिया जायेगा और अगर हफ़्ते में तनख़्वाह मिल जाती है तो नफ़्क़ा भी हफ़्ते ही में देना होगा। अगर शौहर खेती का काम करता है जिस से साल में या छः महीने में पैदावार हासिल होती है तो बीवी के लिये भी छः महीने में या साल में नफ़्क़ा मुक़र्रर करे।

ख़ुराक लिबास और इस से संबंधित चीज़ों में से तमाम चीज़ों का संबंध नफ़्क़े से होता है उस की मात्रा का मुक़र्रर होना ज़रूरी है फिर अगर इस के दाम नक़द या और किसी शक्ल में बीवी को दिये जायें तो बीवी के लिये ज़रूरी नहीं है कि उसे क़ुबूल करे, इसी तरह यह भी ज़रूरी नहीं कि वह नफ़्क़े की चीज़ो के बजाए नक़्द की मांग करे और शौहर उसे क़ुबूल करे। हाँ अगर दोनों इस पर राज़ी हों तो सही है फिर भी राज़ी होने के बाद भी अपनी बात से रूजूअ कर लेने का दोनों को हक़ है यही मसलक इमाम हंबल का भी है।

नफ़्क़ा वाजिब होने की शर्तें:- एक शौहर पर अपनी बीवी का नफ़्क़ा वाजिब होने की कुछ शर्तें हैं-

(1) पहली शर्त यह है कि बीवी सही निकाह के ज़रिए उस की पत्नी बनी हो। अगर निकाह हो गया और बीवी को नफ़्क़ा दिया गया बाद में उस निकाह का फ़ासिद या ग़लत होना मालूम हुआ तो शौहर को हक़ है कि ख़र्च किया हुआ नफ़्क़ा वापस माँगे क्योंकि नफ़्क़ा बदला है बीवी को अपना पाबन्द और अपने लिये मख़सूस कर लेने का और ग़लत निकाह होने के बाद बीवी उस की पाबन्द नहीं रहती।

(2) दूसरी शर्त यह है कि बीवी मुबाशरत के लायक़ हो, क्योंकि नफ़्क़ा तभी वाजिब होगा जब उस से फ़ायदा हासिल किया जा सके।

(3) तीसरी शर्त यह है कि बीवी नाशिज़ह न हो और ख़ुद को शौहर के हवाले करना चाहती हो। नाशिज़ह वह औरत है जो शौहर के घर से उस की आज्ञा के बग़ैर और बिलावजह चली जाये या शौहर के बुलाने पर उस के पास न आये।

(4) चौथी शर्त यह है कि बीवी मुरतद न हो गई हो यानी इस्लाम धर्म को छोड़ न दिया हो, इस लिये कि मुरतद हो जाने से नफ़्क़ा वाजिब नहीं रहता।

(5) पाँचवीं शर्त यह है कि बीवी से कोई ऐसा काम न हो गया हो जिस से हुर्मते मुसाहिरा लागू हो जाये यानी अपने सौतेले बेटे या ससुर से नफ़्सानी ख़्वाहिश के साथ कोई संबंध रखना पति से पत्नी का रिश्ता ख़त्म कर देता है और उस पर उस का नफ़्क़ा वाजिब नहीं रहता।

(6) छठी शर्त यह है कि बीवी मरे हुए शौहर की इद्दत में न हो।

(7) सातवीं शर्त ऐसी बीवी के लिये जो किसी की लौंडी हो तो अगर उस का निकाह कर के उसे और उस के शौहर को अलग मकान दिया गया है तो शौहर पर नफ़्क़ा वाजिब होगा वर्ना नहीं होगा।

(8) वह औरत जो क़ैद में हो और शौहर से न मिल सकती हो उसे नफ़्क़े का हक़ नहीं है।

(9) वह बीवी जिसे किसी और शख़्स ने ज़बरदस्ती छीन लिया हो और उसे अपने क़ब्ज़े में रखा हो तो उस का नफ़्क़ा भी शौहर पर वाजिब नहीं है।

(10) वह बीवी जिस से निकाह हो गया लेकिन शौहर के घर में आने से पहले बीमार हो गई और शौहर के घर न आ पाई उस का नफ़्क़ा भी वाजिब न होगा।

(11) वह बीवी जो शौहर के अलावा किसी महरम के साथ हज पर गई उस का भी नफ़्क़ा शौहर पर वाजिब नहीं है, क्योंकि ऐसी हालत में वह शौहर के घर में रहने की पाबन्द नहीं है।

नफ़्क़ा लागू होने के बारे में:- जब बीवी सही निकाह के बाद शौहर के घर चली जाये और नफ़्क़ा वाजिब होने की शर्तें पाई जाये तो बीवी का नफ़्क़ा वाजिब हो जाता है और शौहर पर क़र्ज़ रहता है, अगर बीवी कहे कि मैं अपने आप को तुम्हारे हवाले कर चुकी हूँ और शौहर उस से इनकार करे या बीवी अपने आप को उस के हवाले करने की मुद्दत साल भर बताये और शौहर कहे कि नहीं सिर्फ़ एक महीना हुआ है तो दोनों सूरतों में शौहर की बात क़सम खा लेने पर मान ली जायेगी। अगर नफ़्क़ा देने में देर की और बीवी की शिकायत पर हाकिम नफ़्क़ा मुक़र्रर कर दे तो उसे हकम माना जायेगा, हाकिम के फ़ैसले से पहले नफ़्क़ा इस पर वाजिब था लेकिन उस बीच उस ने बीवी से मुलाक़ात नहीं की थी, मौजूद न होने की वजह से या बीमारी वग़ैरा की वजह से तो पिछले दिनों का नफ़्क़ा वाजिब न होगा बल्कि अगर काफ़ी वक़्त गुज़र गया है तो नफ़्क़े का वाजिब होना ख़त्म हो जायेगा। हाँ अगर थोड़ा वक़्त गुज़रा यानी एक महीने से कम गुज़रा हो तो नफ़्क़ा ख़त्म नहीं होगा लेकिन अगर हाकिम के फ़ैसले के ज़रिए कोई नफ़्क़ा मुक़र्रर हो गया है तो वह शौहर के ज़िम्मे बीवी का क़र्ज़ होगा और वह ख़त्म न होगा। जब हाकिम बीवी के लिये नफ़्क़ा मुक़र्रर कर दे तो बीवी को हक़ है कि जो कुछ उसने अपने ऊपर ख़र्च किया है उस को पूरा करने के लिये उस हद तक जितना हाकिम ने उस के हक़ में फ़ैसला कर दिया है शौहर से माँगे। यही उस सूरत में भी है जबकि मियाँ बीवी दोनों ने ख़ुद ही नफ़्क़े की कोई मात्रा तै कर ली हो तो वही शौहर पर फ़र्ज़ होगा और बीवी उसी की माँग भी कर सकेगी अगरचे हाकिम ने इस बारे में फ़ैसला न किया हो, अगर हाकिम के फ़ैसले या आपसी रज़ामन्दी से नफ़्क़ा मुक़र्रर नहीं हुआ और बीवी ने शौहर को नफ़्क़ा

देने से आज़ाद कर दिया तो यह सही न होगा क्योंकि नफ़्क़ा जब तक मुक़र्रर न हो उसे क़र्ज़ नहीं माना जा सकता फिर उससे आज़ाद करने का क्या मतलब? नफ़्क़े से आज़ाद करने का सवाल नफ़्क़ा मुक़र्रर हो जाने और उस को क़र्ज़ मानने के बाद ही पैदा होगा, वाजिब होने से पहले उस से आज़ाद करने की सूरत सही नहीं है।

नफ़्क़े को ख़त्म करने वाली बातें:- नफ़्क़े को ख़त्म करने वाली बातों का ज़िक्र नफ़्क़ा वाजिब होने की शर्तों के बयान में आ चुका है कुछ और बातें यहाँ स्पष्ट कर के बयान की जाती हैं-

1. मियाँ बीवी में से अगर किसी की मृत्यु हो जाये तो नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा, जबकि हाकिम ने उसे क़र्ज़ क़रार दिये जाने का फ़ैसला न कर दिया हो, अगर ऐसा फ़ैसला हुआ है तो उस नफ़्क़े की हैसियत क़र्ज़ की है और किसी की मौत हो जाये तब भी क़र्ज़ ख़त्म नहीं होता क्योंकि वह किसी काम का बदला नहीं होता।

2. अगर बीवी शौहर की नाफ़रमानी करे तो वाजिब नफ़्क़े का देना ख़त्म हो जायेगा, जबकि उसे क़र्ज़ न माना जाये।

3. अगर बीवी धर्म से फिर जाये यानी मुरतद हो जाये तो नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा। इसी तरह शौहर के बेटे या बाप से जिन्सी संबंध क़ायम करने से भी नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा।

4. अगर बीवी को क़तई तलाक़ दे दी या उस ने ख़ुलअ़ कर लिया तो नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा लेकिन अगर तलाक़ रजई है तो ख़त्म न होगा। अगर बीवी को हमल (गर्भ) की हालत में तलाक़ दी गई है तो वह नफ़्क़ा पाने की हक़दार है। अगर पति (शौहर) अपनी पत्नी (बीवी) को तलाक़ दे कर अपनी ज़िन्दगी से इस ख़याल से निकाल दे कि उस के ऊपर जो नफ़्क़ा वाजिब होता है उस से छुटकारा मिल जाये और बीवी मज़लूम हो तो हाकिम बीवी का वाजिब नफ़्क़ा उस को दिये जाने का हुक्म देगा। अगर उसने इस ख़याल से तलाक़ न दी हो कि नफ़्क़े से छुटकारा मिल जाये तो नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा।

मालिकी फ़िक़्ह के मुताबिक़ नफ़्क़ा ख़त्म हो जाने का एक सबब शौहर का निर्धन (ग़रीब) होना भी है बाद में अगर वह धनी हो जाये तो पत्नी को यह हक़ नहीं होगा कि वह उस से ग़रीबी के ज़माने का नफ़्क़ा मांगे। पत्नी अगर पति के साथ खाती पीती है और उस के कपड़े भी पति के कपड़ों के साथ मिलते हैं तो भी ख़ुराक और लिबास का नफ़्क़ा शौहर के ज़िम्मे से ख़त्म हो जायेगा। अगर बीवी अपने आप से फ़ायदा उठाने या मुबाशरत से इनकार करे तो जिस दिन ऐसा हुआ उस दिन का नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा, हाँ अगर फिर उस की आज्ञापालन करने लगे तो नफ़्क़ा लागू हो जायेगा।

इद्दत के दौरान नफ़्क़े का बयानः- जो औरत शौहर की मृत्यु हो जाने के बाद इद्दत गुज़ार रही हो उस का कोई नफ़्क़ा नहीं है चाहे वह गर्भ से हो या न हो, लेकिन वह औरत जो तलाक़ या निकाह तोड़ने की इद्दत में हो उस के नफ़्क़े के बारे में मसाइल निम्न हैं-

हनफ़ी फ़िक़्ह के मुताबिक़ शौहर और बीवी के दर्मियान जुदाई चार कारणों से होती है-

1. तलाक़ रजई (जिस में निकाह बाक़ी रहता हो)
2. तलाक़ बाइन (जिस में पत्नी पति की पत्नी नहीं रह जाती है)
3. फ़स्ख़े निकाह (चाहे वह सही निकाह का फ़स्ख़ (तोड़ना) करना हो या निकाह ही ग़लत हुआ हो)
4. मृत्युः

   चारों हालतों में बीवी को मुक़र्ररह इद्दत पूरी करनी होती है जिस का ज़िक्र इद्दत के बयान में हो चुका है यहाँ इद्दत के दौरान नफ़्क़े का ज़िक्र करना मक़सद है।

पहली सूरत तलाक़े रजई की है तो बीवी इद्दत के ज़माने में हर तरह के नफ़्क़े की हक़दार होगी अगर इस बीच पति की मृत्यु हो जाये तो तलाक़ की इद्दत मृत्यु की इद्दत में बदल जायेगी और मुक़र्रर

किया हुआ नफ़्क़ा समाप्त हो जायेगा लेकिन अगर उस नफ़्क़े को क़र्ज़ मान लिया गया है तो वह समाप्त नहीं होगा।

दूसरी सूरत तलाक़े बाइन की है तो अगर बीवी गर्भ से नहीं है तो वह नफ़्क़े की हक़दार न होगी क्योंकि पति पर उस की कोई ज़िम्मेदारी नहीं है लेकिन अगर गर्भ से हो तो बच्चा पैदा हो जाने तक उस का नफ़्क़ा शौहर पर वाजिब है, शर्त यह है कि बीवी उस घर से न निकले जहाँ इद्दत के दिन गुज़ारने के लिये उसे रखा गया है।

तीसरी सूरत निकाह के फ़स्ख़ (तोड़ने) की है, अगर सही निकाह को तोड़ दिया गया है तो जो हुक्म तलाक़े बाइन से तलाक़ दी हुई बीवी का है वही लागू होगा। लेकिन जुदाई अगर ग़लत निकाह की वजह से हुई है जैसे एक औरत जो इद्दत में थी उस ने किसी और से निकाह कर लिया और उस के साथ मुबाशरत भी हो गई फिर उस निकाह के ग़लत होने की जानकारी हुई और इस वजह से दोनों में जुदाई करा दी गई तो उस औरत को दो इद्दतें गुज़ारना होंगी। उन की शुरूआत जुदाई की तारीख़ से होगी और उस में वह मुद्दत भी दाख़िल होगी जो दूसरे पति से मिलने से पहले गुज़ारी है तो अगर औरत को हैज़ आते हैं तो दूसरे पति से जुदाई के बाद तीन हैज़ आ जाने तक इन्तिज़ार करना होगा। अगर दूसरे पति से मिलने से पहले एक हैज़ आ चुका है तो वह पहले पति की इद्दत में शुमार होगा और दूसरे से मुबाशरत की वजह से इद्दत पूरी करने के लिये दो हैज़ का और इन्तिज़ार करना होगा। इस तरह दोनों इद्दतें एक दूसरे में दाख़िल हो जायेंगी यानी एक साथ पूरी होंगी, अतः ये दो हैज़ दूसरी बार पहली इद्दत में से माने जायेंगे और पहली बार दूसरी इद्दत में से, ऐसी हालत में नफ़्क़े का ज़िम्मेदार पहला पति होगा क्योंकि ग़लत निकाह की बुनियाद पर जुदाई के बाद इद्दत अगरचे वाजिब होती है लेकिन नफ़्क़ा वाजिब नहीं होता। इसी तरह अगर किसी का पति मफ़क़ूदुल-ख़बर (लापता) हो जाये और बीवी यह अफ़वाह सुन कर

कि उस की मृत्यु हो गई किसी और से शादी कर ले, लेकिन कुछ ही दिनों के बाद मफ़कुदुल-ख़बर पति वापस आ जाये तो दूसरे पति से बीवी को अलग कर दिया जायेगा और इद्दत के दौरान का नफ़्क़ा न तो दूसरे पति पर लागू होगा और न पहले पति पर, क्योंकि पहले पति ने तलाक़ नहीं दी इस लिये उस की इद्दत नहीं, और दूसरा निकाह ग़लत हुआ है इस लिये जुदाई के बाद इद्दत तो वाजिब है लेकिन नफ़्क़ा वाजिब नहीं होता।

चौथी सूरत पति की मृत्यु हो जाने की है तो मृत्यु की इद्दत में नफ़्क़ा वाजिब नहीं होता चाहे वह गर्भ से हो या न हो फिर भी पत्नी को पति के घर रहने का हक़ है जब तक इद्दत पूरी न हो जाये जिस की मुद्दत चार महीने दस दिन है। इसी तरह जिस औरत को तलाक़े बाइना हुई हो, वह भी मकान में रहने के अलावा किसी और नफ़्क़े की हक़दार न होगी और रहने का हक़ इद्दत पूरी हो जाने तक है।

अगर पत्नी गर्भ से है और उसे तलाक़े बाइना मिल गई है तो तीन क़िस्म के नफ़्क़े (ख़ुराक, लिबास और मकान) का इन्तिज़ाम करना पति पर वाजिब होगा। यह नफ़्क़ा तलाक़ पाई हुई बीवी का नहीं बल्कि उस गर्भ के लिये है और यह उस वक़्त तक चलता रहेगा जब तक उस बच्चे का जन्म न हो जाये।

अगर तलाक़ पाई हुई औरत कहे कि उस की पाकी का ज़माना लम्बा हो गया है और हैज़ के दिन नहीं आये तो उस के क़सम खा लेने पर बात मान ली जायेगी और इद्दत चलती रहेगी जब तक कि उस का पूरा हो जाना साबित न हो जाये, गर्भ की हालत में तलाक़ पाई हुई औरत को तलाक़ के दिन से दो साल तक नफ़्क़ा हासिल करने का हक़ होगा। दो साल बीत जायें और पता चले कि वह गर्भ से नहीं है तो शौहर को ख़र्च किया हुआ माल वापस नहीं माँगना चाहिये। इद्दत के दौरान का नफ़्क़ा ख़त्म हो जायेगा अगर बीवी ने

उस की माँग नहीं की और गर्भ की मुद्दत गुज़र गई, लेकिन अगर हाकिम के हुक्म से या आपसी फ़ैसले से नफ़्क़ा मुक़र्रर किया जा चुका है तो वह ख़त्म न होगा। वह औरत जो गर्भ से न हो और तलाक़े बाइन पा चुकी हो तो वह नफ़्क़ा पाने की हक़दार नहीं रहती। इस लिये अगर वह इद्दत के ज़माने में यह दावा करे कि उस के तुहर की मुद्दत लम्बी हो गई तो इस से कुछ हासिल नहीं है, यह मालिकी फ़ुक़हा की राय है।

ग़ैर मौजूद पति पर नफ़्क़ा लागू होना:- बीवी को यह हक़ है कि अपने पति से उस के सफ़र पर जाते वक़्त वापसी के वक़्त तक का नफ़्क़ा माँगे लेकिन यह उस सूरत में है जब एक मुक़र्ररह मुद्दत के लिये सफ़र में जाने का इरादा हो लेकिन अगर लम्बी मुद्दत के लिये जिस की मुद्दत मुक़र्रर न हो सफ़र पर जाने का इरादा हो तो बीवी एक ख़ास मुद्दत के लिये नफ़्क़ा माँग सकती है और बाद के लिये किसी कफ़ील (पालकपोषक) को ज़िम्मेदार बनाने की माँग कर सकती है कि वह हैसियत के मुताबिक़ जो ख़र्च बीवी पर होता चला आया है वह उस ख़ास मुद्दत के बाद बीवी को देता रहे। अगर शौहर की मौजूदगी में दोनों मियाँ बीवी किसी कफ़ील (पालकपोषक) की ज़िम्मेदारी पर राज़ी हो जायें कि वह बीवी को मुक़र्ररह नफ़्क़ा देता रहेगा तो इस पर अमल करना लाज़िम है।

अगर ऐसा न हुआ और पति बग़ैर नफ़्क़े का इन्तिज़ाम किये चला गया तो हाकिम उस की बीवी के हक़ में नफ़्क़े का फ़ैसला करेगा जब कि इस बात की गवाही मौजूद हो कि वह फ़लाँ शख़्स की पत्नी है जो ग़ैर हाज़िर है और उस शख़्स का माल जिस की ज़िम्मेदारी में हो वह भी स्वीकार करता हो कि उस का माल मेरे क़ब्ज़े में है और यह औरत उसी की पत्नी है, या ख़ुद हाकिम ही इस बात को जानता हो तो बीवी को उस में से नफ़्क़ा मिलेगा वर्ना उसे क़र्ज़ लेने का हुक्म दिया जायेगा। इमाम हंबल (रह०) के

मसलक में पति पर पत्नी का नफ़्क़ा उस वक़्त तक वाजिब नहीं होता जब तक बीवी अपने आप को उस के हवाले न कर दे इस लिये ग़ैर मौजूद शौहर पर नफ़्क़ा उसी वक़्त लागू होगा जब हाकिम इस बात का एलान कर दे कि पत्नी ख़ुद पति के हवाले करने (यानी रूख़सती) के लिये तैयार है, अगर पत्नी ने ख़ुद को पति के हवाले कर दिया और फिर वह कहीं चला गया तो नफ़्क़े का देना उस पर लाज़िम होगा। जिस तरह पिछले दिनों के बक़ाया नफ़्क़े की ज़मानत सही है उसी तरह आने वाले नफ़्क़े की ज़मानत भी सही है। चुनाचे अगर कोई शख़्स यह कहे कि जब तक यह औरत फ़लाँ शख़्स की पत्नी है मैं इस के नफ़्क़े का ज़िम्मेदार हूँ तो उस शख़्स पर मिसाली नफ़्क़े का देना लाज़िम है।

शौहर का नफ़्क़ा देने से मजबूर होना:- अगर पति अपनी पत्नी का ख़र्च उठाने से मजबूर हो तो बीवी को हक़ है कि वह शौहर से तलाक़ माँगे। इस बारे में हनफ़ी मसलक तो यह है कि इस मजबूरी की वजह से जुदाई नहीं कराई जाये बल्कि क़ाज़ी या हाकिम पत्नी को हुक्म देगा कि वह क़र्ज़ ले और क़र्ज़ का अदा करना पति के ज़िम्मे करे क्योंकि ग़रीबी जब निकाह करने से नहीं रोकती है तो पति पत्नी के रिश्ते को बाक़ी रखने के लिये उसे क्यों रोके हुए रखना (वर्जक) माना जाये। रोज़ी का रास्ता तो अल्लाह पैदा फ़रमाता है, अल्लाह तआला का फ़रमान है-

اَنْ يَّكُوْنُوْا فُقَرَاءَ يُغْنِهِمُ اللّٰهُ مِنْ فَضْلِهٖ

'अंय्यकूनू फ़ुक़राआ युग़निहिमुल्लाहु मिन फ़ज़्लिही।'

अनुवाद:- अगर वेआज निर्धन हैं तो कल अल्लाह अपने फ़ज़्ल से उन्हें धनी बना देगा।

अगर पति ग़रीब है तो हो सकता है कि उस का बाप, चचा, भाई या बेटा (जो उस पत्नी से नहीं है) ख़ुशहाल हो या ख़ुद पत्नी

का बाप, चचा या भाई ख़ुशहाल और धनी हो तो ये लोग उस को नफ़्क़ा दें फिर जब पति को आसानी हो जाये तो जो कुछ पत्नी पर ख़र्च हुआ है वह उस को अदा कर दे। दीन व अख़लाक़ का तक़ाज़ा यही है कि बीवी सब्र से वक़्ती तकलीफ़ को सह ले। हाकिम या इस्लामी जमाअत को कुरआन की इस हिदायत के मुताबिक़ कि 'इन काना ज़ू उसरतिन फ़नज़िरतुन इला मैसरतिन' हुक्म देना चाहिये, यानी जो निर्धन हों उन को धनी हो जाने तक की मुहलत दी जाये। ये मसाइल उस हालत में हैं जब शौहर के पास ज़ाहिर में कोई माल न हो और अगर उस के पास माल है तो उस से ज़बरदस्ती नफ़्क़ा वुसूल किया जायेगा।

इमाम मालिक (रह०) के नज़दीक अगर पति पत्नी का ख़र्च न उठा सके तो वह निकाह को फ़स्ख़ करने की माँग कर सकती है और हाकिम शौहर की तरफ़ से तलाक़ रजई दे सकता है जब कि यह तीन शर्तें पूरी होती हों-

1. पति मौजूदा ज़माने में या आने वाले दिनों में बीवी को खुराक और वस्त्र का इन्तिज़ाम करने से मजबूर हो लेकिन अगर वह सिर्फ़ पिछला बक़ाया अदा करने से मजबूर हो तो पत्नी को निकाह के फ़स्ख़ करने की माँग का हक़ नहीं है क्योंकि वह पति के ज़िम्मे क़र्ज़ है जिस का अदा करना वाजिब है (उस के अदा न करने की बुनियाद पर निकाह फ़स्ख़ नहीं हो सकता)।

2. पत्नी को निकाह करते वक़्त पति की ग़रीबी की जानकारी नहीं थी, अगर थी और वह निकाह पर राज़ी थी तो उसे निकाह के फ़स्ख़ करने की माँग का हक़ नहीं है। हाँ जिस वक़्त शादी हुई थी उस का पति कोई कारोबार करता था बाद में वह छोड़ दिया तब वह माँग कर सकती है।

3. यह साबित होने पर कि पति वास्तव में निर्धन और नफ़्क़ा अदा करने से मजबूर है, हाकिम एक ख़ास मुद्दत तक अपनी समझ

के मुताबिक़ नफ़्के को अदा करने के लिये मुक़र्रर कर दे जितने दिनों में उस की ग़रीबी दूर हो जाने की उम्मीद हो, फिर अगर वह मुद्दत गुज़र जाये और नफ़्क़ा न दे सके तो उस की तरफ़ से तलाक़ रजई दे दी जायेगी।

जो शख़्स ताक़त रखने के बावजूद भी पत्नी का नफ़्क़ा और उस की ज़रूरतें पूरी नहीं करता उस को *'मुतअन्नत'* कहा जाता है। तअन्नुत ज़ुल्म की एक शक्ल है और मज़लूम को ज़ुल्म से निजात दिलाना मुसलमानों का फ़र्ज़ है। फ़िक़ह मालिकी में औरत को यह हक़ दिया गया है कि क़ाज़ी या मुसलमानों की जमाअत के सामने दावा पेश कर के निकाह फ़स्ख़ करा ले। उस को यह दावा तभी करना चाहिये जब कोई दूसरा कमाने का ज़रिया या कोई दूसरा ज़िम्मेदार मौजूद न हो, या उस का पति उस की तरफ़ ध्यान न करता हो और उसे गुनाह कर बैठने का डर हो। मुसलमान हाकिम या इस्लामी जमाअत का फ़र्ज़ होगा कि गवाहों से मुआमले की पूरी तहक़ीक़ कर लें फिर पति से कहें कि तुम को इतनी मुहलत दी जाती है कि तीन महीने के अन्दर तुम तअन्नुत (लापरवाही) की आदत को ख़त्म कर दो वर्ना हम जुदाई करा देंगे। अगर इस मुद्दत में वह अपनी आदत बदल देता है और बीवी उस से संतुष्ट हो जाये तो उसे दावा वापस लेने को कहा जायेगा वर्ना तीन महीने के ख़त्म होते ही जुदाई करा दी जायेगी यानी एक तलाक़ रजई पड़ जायेगी। अब अगर इद्दत पूरी होने से पहले वह हक़तलफ़ियों को छोड़ दे तो बीवी से रुजूअ कर सकता है। इद्दत गुज़रने के बाद भी अगर शर्मिन्दा हो और आइन्दा हक़तलफ़ी न करने का वादा करे तो औरत की रज़ामंदी से फिर से निकाह कर सकता है।

औलाद के लिये नफ़्क़ा:- औलाद लड़के हों या लड़कियाँ कम उम्र के हों या बालिग़ अगर ख़ुद कमा न सकते हों या शिक्षा हासिल कर रहे हों और कोई माल न रखते हों तो उन का नफ़्क़ा बाप पर वाजिब होगा, बाप की मजबूरी की सूरत में माँ पालनपोषण करने वाली होगी और

जो कुछ ख़र्च करेगी वह बच्चों के बाप पर क़र्ज़ रहेगा। बाप और माँ दोनों मजबूर हों तो फिर दादा अगर धनी हों तो वह बच्चों का नफ़्क़ा अदा करेगा लेकिन अगर दादा के पास भी इतना माल न हो और चचा या भाई के पास हो तो उन में से किसी पर नफ़्क़ा वाजिब होगा और बच्चों की माँ को हक़ है कि उन दोनों में से किसी से बग़ैर किसी को तरजीह दिये हुए औलाद के नफ़्क़े की माँग करे। अगर ऐसा नहीं है तो उन बच्चों का जो सब से क़रीब रिश्तेदार हो उस पर वाजिब होगा कि उन का ख़र्च बर्दाश्त करे और हर सूरत में सही यह है कि जो कुछ किसी ने ख़र्च किया है वह बाप से जब भी उसे तौफ़ीक़ हो अपना ख़र्च किया हुआ माल वुसूल कर ले, हाँ एक सूरत ऐसी है जिस में ख़र्च करने वाले को यह हक़ न रहेगा, वह यह है कि दादा ने ख़र्च किया हो और बाप अपाहिज हो तो यह समझा जायेगा जैसे बाप की मृत्यु हो गई है और नफ़्क़ा ख़त्म माना जायेगा फिर जब कोई रिश्तेदार ऐसा न हो जो उन का नफ़्क़ा अदा कर सके तो इस्लामी हुकूमत बैतुल माल से नफ़्क़ा अदा करेगी।

माँ के ज़िम्मे नफ़्क़ा लागू नहीं होता हाँ उस पर लाज़िम है कि जन्म के शुरू में अपना दूध पिलाये क्योंकि जब तक पहले पहल बच्चे को माँ का दूध न मिले वह आम तौर पर ज़िन्दा नहीं रहता।

बाप दादा और रिश्तेदारों का नफ़्क़ा:- बाप दादा जब वह कमा कर खाने से मजबूर हो जायें तो औलाद पर लाज़िम है कि वह उन पर ख़र्च करे। इसी तरह नाना पर ख़र्च करना ज़रूरी है जब वह मुहताज हो, माँ भी बाप की तरह है। अगर कोई बेटा अपने माँ बाप में से किसी एक के लिये नफ़्क़े का इन्तिज़ाम कर सकता है तो माँ को बाप पर तरजीह दी जायेगी। अगर कोई बेटा अपने बाप को नफ़्क़ा न दे और कहे कि मेरा बाप ख़ुशहाल है तो लाज़िम है कि उस दावे को गवाहों से साबित कराये वर्ना बाप का कहना माना जायेगा, अगर किसी बाप के बेटा और बेटी दोनों ख़ुशहाल हैं तो दोनों को बराबरी की मिक़दार (मात्रा) में नफ़्क़ा देना पड़ेगा, वर्ना जो

ज़्यादा मालदार हो उस का हिस्सा बाप के नफ़्के में ज़्यादा होगा। धनी बेटे का यह फ़र्ज़ भी है कि बाप की बीवी को (जो उस की माँ नहीं है) नफ़्क़ा दे और माँ का हक़ सब से बड़ा है, हाँ अगर बाप की कई बीवियाँ हैं तो बेटे पर सिर्फ़ एक बीवी का नफ़्क़ा वाजिब है।

रिश्तेदारों में नसबी रिश्तेदारों को देखा जायेगा यानी बाप या बेटे के ज़रिए बनने वाले रिश्ते को। अगर ऐसा कोई रिश्तेदार मुहताज है तो धनी शख़्स पर उस का नफ़्क़ा वाजिब है, नसबी रिश्ते के बाद क़रीबी रिश्तेदार को तरजीह हासिल है जैसे बाप के लिये नफ़्क़े का इन्तिज़ाम करना बेटे पर ज़्यादा ज़रूरी है पोते के मुक़ाबिले में, क्योंकि वह ज़्यादा क़रीबी है। इसी तरह अगर किसी की एक बेटी है और एक पोता है तो बेटी पोते से ज़्यादा क़रीबी है इस लिये बेटी पर नफ़्क़े की ज़िम्मेदारी पोते के मुक़ाबिले में ज़्यादा है। हक़ीक़ी भाई और बेटी हो तो भी बेटी बाप की ज़्यादा क़रीबी है क्योंकि वह उस का हिस्सा भी है। अगर किसी की एक बहन और बेटा है और वह ईसाई हो गया है तो भी नफ़्क़ा बेटे के ज़िम्मे होगा (अगरचे वह ईसाई होने की वजह से वारिस नहीं है) अगर किसी शख़्स का हक़ीक़ी भाई भी है और नवासा भी मौजूद है तो नफ़्क़ा नवासे के ज़िम्मे होगा (हालाँकि सगे भाई की मौजूदगी में नवासा वारिस नहीं होता।)

मुख़्तसर यह कि नफ़्क़ा माँगने के बारे में सब से पहले जड़ या शाख़ के रिश्तेदारों को देखा जायेगा और उन में भी जो ज़्यादा क़रीबी होगा उस को पहले रखा जायेगा। जैसे एक शख़्स को नफ़्क़े की ज़रूरत है और उस का बाप और बेटा दोनों मौजूद हैं और रिश्ते के एतेबार से दोनों बराबर हैं यहाँ बेटे पर नफ़्क़े की ज़िम्मेदारी इस लिये डाली जायेगी कि उसे इस हदीस के मुताबिक़ तरजीह हासिल है 'अनता व मालुका लिअबीका' (यानी तू ख़ुद और तेरा माल तेरे बाप के लिये है। नफ़्क़ा क़राबतदारों के अलावा किसी और पर वाजिब

नहीं होता जब कि वे मालदार हों। अब सवाल यह पैदा होता है कि मालदार होने का क्या मतलब है? कुछ उलमा ने यह कहा है कि इस का मतलब यह है कि वह ज़कात के निसाब का मालिक हो, कुछ लोगों ने कहा है कि ऐसा शख़्स जो किसान या ताजिर (व्यापारी) हो इतना माल जमा रख सकता हो जिस से उस के और उस के बाल बच्चों का ख़र्च पूरा हो कर इतना बच जाये कि हक़दार को नुफ़्क़े के तौर पर दे सके या ऐसा शख़्स हो जो रोज़ाना मज़दूरी पर काम करता हो और अपने परिवार के रोज़ के ख़र्चे को पूरा कर के कुछ बच जाये तो वह मालदार है।

नफ़्क़ा देने वाला नसबी रिश्तेदार तो होना ही चाहिये उस का महरम होना भी ज़रूरी है। इस लिये चचा की बेटी पर वाजिब नहीं है क्योंकि वह नसबी रिश्तेदार होने के बावजूद भी नामहरम है, दूध के रिश्ते वाले जो क़रीबी रिश्तेदार न हों उन पर भी नफ़्क़ा वाजिब नहीं है, धर्म अलग अलग हों तो भी नफ़्क़ा वाजिब नहीं होता सिर्फ़ दो सूरतों के अलावा जबकि बाप और बेटे का रिश्ता हो, और मियाँ बीवी का रिश्ता हो।

हिज़ानत (बच्चे की परवरिश):- हिज़्न का अर्थ गोद है। हाज़िना वह औरत जो बच्चे को अपनी गोद में पालती है। परवरिश का मतलब यह है कि अपनी ताक़त भर बच्चे को कोई तकलीफ़ न होने दी जाये, उसे साफ़ सुथरा रखा जाये और उस की सेहत का ख़याल रखा जाये। बच्चे की परवरिश के हक़दार और इस्लाह व तर्बियत के ज़िम्मेदार ये लोग हैं-

1. सब से पहले परवरिश का हक़ माँ को है चाहे वह बाप के निकाह में हो या तलाक़ दी हुई हो फिर (2) नानी, पर नानी, (3) दादी पर दादी (4) हक़ीक़ी बहन (5) सौतेली बहन (जो माँ की बेटी हो) (6) ख़ाला (7) फूफी इन्हें तर्तीबवार परवरिश का हक़ हासिल है, इस मुआमले में मादरी (माँ से संबंधित) रिश्तों को पिदरी (बाप से संबंधित) रिश्तों पर अव्वलियत (प्राथमिकता) हासिल है।

ख़ाला की, फूफी की, मामूँ और चचा की बेटियों को परवरिश का हक़ नहीं है इसी तरह लड़की की परवरिश भतीजों के ज़िम्मे नहीं की जायेगी क्योंकि वे उस के महरम नहीं हैं।

परवरिश के लिये शर्तें:- बच्चा जिस को परवरिश के लिये सौंपा जाये उस का आक़िल व बालिग़ होना ज़रूरी है इस के अलावा कुछ और भी शर्तें हैं जिन का ध्यान रखा जायेगा। पहली शर्त यह है कि वह मुरतद यानी इस्लाम से फिर न गया हो। दूसरी शर्त यह कि बदकार न हो, चोरी या ऐसा गिरा हुआ काम जिस को लोग अच्छी नज़र से न देखते हों जैसे नाचने वाली तो ऐसे लोगों को परवरिश का हक़ नहीं है। तीसरी शर्त यह है कि परवरिश करने वाली ने बच्चे के बाप के अलावा किसी और से शादी न कर ली हो। हाँ अगर उस ने पिदरी रिश्तेदार जैसे बच्चे के चचा से शादी की है तो कोई हर्ज नहीं है। अजनबी शख़्स से शादी के बाद परवरिश का हक़ नहीं रहता। लेकिन अगर वह तलाक़ दे दे तो फिर उस को हक़ हासिल हो जायेगा। चौथी शर्त यह है कि बच्चे की देख भाल में ग़फ़लत करने वाली न हो। वे माएँ जो पूरे दिन घर से बाहर रहती हैं और बच्चे की देख भाल नहीं करतीं उन्हें परवरिश का हक़ नहीं। पाँचवीं शर्त यह है कि बच्चे का बाप ख़ुशहाल हो और माँ बच्चे की परवरिश से इनकार कर दे लेकिन फूफी बग़ैर किसी बदले के परवरिश करने पर तैयार हो तो वह कर सकती है, माँ का परवरिश करने का हक़ ख़त्म हो जायेगा। छठी शर्त यह है कि बच्चे की माँ उम्मुल-वलद न हो (यानी वह लौंडी जिस से बच्चा पैदा हुआ हो) उम्मुल-वलद पर परवरिश की ज़िम्मेदारी नहीं डाली जा सकती।

अगरचे फ़ुक़हा के नज़दीक परवरिश के हक़ के लिये मुसलमान होना शर्त नहीं है यानी मुसलमान पति की ईसाई बीवी को बच्चे की परवरिश करने का हक़ है लेकिन अगर यह डर हो कि वह बच्चे को सुवर का गोश्त खिलाये या शराब पिलायेगी या यह देखा जाये

कि वह बच्चे को लेकर गिरजाघर जाती है तो बाप को हक़ है कि बच्चे को उस से अलग कर ले, क्योंकि दीन व अख़लाक़ के अच्छे माहौल में बच्चे की परवरिश होना ज़रूरी है।

परवरिश की मुद्दतः- लड़के की परवरिश के लिये सात साल की मुद्दत और लड़की के लिये 9 साल की उम्र मुक़र्रर की गई है। इमाम मालिक (रह०) के नज़दीक अगर परवरिश करने वाली माँ है तो लड़के के जवान हो जाने तक उस की परवरिश लाज़िम है और लड़की की परवरिश की मुद्दत उस वक़्त तक है जब तक उस की शादी न हो जाये और पति उस के साथ पत्नी का हक़ अदा करेगा।

परवरिश की मज़दूरीः- परवरिश करने वाली चाहे माँ हो या कोई और उसे बच्चे की परवरिश की मज़दूरी लेना साबित है, यह मज़दूरी बच्चे की दूध पिलाई और बच्चे के नफ़्क़े के अलावा है, बाप या वह शख़्स जिस पर औलाद का नफ़्क़ा वाजिब है वही दूध पिलाने और परवरिश करने की मज़दूरी देगा। परवरिश करने वाली के लिए कपड़ा और खाने का इन्तिज़ाम करना और अगर उस का कोई मकान न हो तो उस का भी इन्तिज़ाम करना लाज़िम है। अगर बच्चे की सेवा करने वाले की ज़रूरत हो तो अगर बाप इस की ताक़त रखता है तो इस के लिये भी हुक्म दिय जायेगा। माँ जो पत्नी की सीमा के अन्दर हो और बच्चे के बाप से अलग न हुई हो उसे जिस तरह दूध पिलाने की मज़दूरी का हक़ नहीं है उसी तरह परवरिश की मज़दूरी लेने का भी कोई हक़ नहीं है।

बच्चे का जन्मः- निकाह का मक़सद जहाँ पति और पत्नी की इज़्ज़त व आबरू की सुरक्षा और उन में मुहब्बत व प्रेम, हमदर्दी (सहानूभूति) के जज़्बात पैदा करना है वहीं नेक औलाद का हासिल करना भी है जिस का ज़िक्र अल्लाह तआला ने कुरआन मजीद में किया है और इस को अपना इनआम कहा है। सूरः नहल में अल्लाह तआला फ़रमाता है-

وَاللّٰهُ جَعَلَ لَكُمْ مِنْ اَنْفُسِكُمْ اَزْوَاجًا وَّجَعَلَ لَكُمْ مِنْ اَزْوَاجِكُمْ بَنِيْنَ وَحَفَدَةً. (سورہ نحل آیت:۷۲)

'वल्लाहु जअल लकुम मिन अनफुसिकुम अज़्वाजवं व-जअल लकुम मिन अज़्वाजिकुम बनीना व हफ़दतन।'

(सूरः नहल, 72)

अनुवादः- अल्लाह ने तुम्हारी जिन्स से तुम्हारे जोड़े पैदा किये और उनसे तुम्हारे बेटे और पोते बनाये।

सूरह फुरक़ान में मुसलमानों को यह दुआ सिखाई गई है-

رَبَّنَا هَبْ لَنَا مِنْ اَزْوَاجِنَا وَذُرِّيّٰتِنَا قُرَّةَ اَعْيُنٍ (سورہ فرقان:۷۴)

'रब्बना हब लना मिन अज़्वाजिना व ज़ुरिय्यातिना कुर्रता अअयुनिन।' (सूरः फ़ुर्कान, 74)

अनुवादः- ऐ परवरदिगार हम को हमारी बीवियों और हमारी औलाद में आँखों की ठंडक अता फ़रमा।

कान में अज़ान देनाः- इस्लामी समाज में कान में अज़ान देने का तरीक़ा है। (ज़ादुल मआद) में है कि जब हज़रत हुसैन (र०) पैदा हुए तो नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने उन के कानों में अज़ान दी और इक़ामत पढ़ी। इस सुन्नत की पैरवी (अनुसरण) में हर मुसलमान बच्चे के जन्म के बाद उस को नहला धुला कर दाहिने कान में अज़ान और बाएँ कान में इक़ामत कहना चाहिये।

तहनीकः- हज़रत अस्मा (र०) फ़रमाती हैं कि जब अब्दुल्लाह बिन ज़ुबैर (र०) पैदा हुए तो मैं ने उनको नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की गोद में दिया। आप ने खुर्मा मंगवाया और चबा कर राल मुबारक अब्दुल्लाह के मुंह में लगाया और खुर्मा तालू में मला और ख़ैर व बरकत की दुआ फ़रमाई। (ज़ादुल-मआद) इमाम बुख़ारी, इमाम मुस्लिम और इमाम तिर्मिज़ी ने ऐसी ही रिवायात हज़रत आयशा

(र०) से नक़ल की हैं।

अच्छा नाम रखना:- अबू दाऊद में नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का फ़रमान नक़ल हुआ है आप ﷺ ने फ़रमाया कि क़यामत के दिन तुम्हें अपने अपने नामों से पुकारा जायेगा, इस लिये अच्छा नाम रखा करो, सब से बेहतर तरीक़ा यह है कि जिस दिन अक़ीक़ा हो उसी दिन नाम रखा जाये।

अक़ीक़ा:- जिस तरह क़ुर्बानी की जाती है उसी तरह अक़ीक़े का जानवर भी ज़बह करना चाहिये और बच्चे का जो नाम रखना हो वह रख कर कहे **'अल्लाहुम्मा हाज़िहि अक़ीक़तुब्नी फ़ुलानिन फ़तक़ब्बलहु'** (ऐ अल्लाह यह अक़ीक़ा मेरे बेटे का है इसे क़ुबूल कर ले फ़ुलानिन शब्द की जगह वह नाम ले जो रखना चाहता हो। अगर किसी दूसरे शख़्स के बेटे की तरफ़ से ज़बह कर रहा है तो फ़ुलानिब्ने फ़ुलानिन कहे यानी बच्चे और उस के बाप दोनों का नाम ले।

नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि अगर तुम में से कोई अपने बच्चे की तरफ़ से अक़ीक़ा करना चाहे तो उसे चाहिये कि लड़के की तरफ़ से दो बकरियाँ और लड़की की तरफ़ से एक बकरी की क़ुर्बानी करे। ज़ादुल मआद में आप की यह बात नक़ल हुई है कि हर लड़का अपने अक़ीक़े तक रहन (गिरवी) होता है। इस लिये उस की तरफ़ से सातवें दिन की क़ुर्बानी की जाये, उस का सिर मुंडवाया जाये और उस का नाम रख दिया जाये।

हज़रत अली (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने हसन (र०) का एक बकरी से अक़ीक़ा किया और फ़रमाया फ़ातिमा! इस का सिर मुंडवा दो, और इस के बालों के वज़न के बराबर चाँदी खैरात कर दो, हज़रत अली (र०) फ़रमाते हैं कि हम ने बालों का वज़न किया जो एक दिर्हम या इस से कुछ कम था। (ज़ादुल मआद) फ़ुक़हा ने कहा है कि अगर सातवें दिन

अक़ीक़ा न कर सके तो जब करे पैदाइश के सातवें दिन का ख़याल रखना बेहतर है। अक़ीके़ का गोश्त चाहे कच्चा बाँटे चाहे पका कर बाँटे चाहे दावत कर के खिलाये सब सही है। अक़ीके़ का गोश्त बाप माँ, दादा दादी, नाना नानी सब को खाना सही है।

अगर अक़ीक़ा न कर सके तब भी गुनाहगार न होगा। (बहिश्ती ज़ेवर)

ख़त्नाः- हज़रत इब्ने अब्बास (र०) से रिवायत है कि लोग आम तौर से लड़के का ख़त्ना उस वक़्त तक नहीं करते थे जब तक वह समझदार नहीं हो जाता था। इमाम हंबल (रह०) हज़रत अबू अब्दुल्लाह के वास्ते से फ़रमाते हैं कि अगर सातवें दिन ख़त्ना कर दिया जाये तो कोई हर्ज नहीं है। (ज़ादुल मआद)

बच्चे की हिफ़ाज़त की दुआः- हिस्न हसीन और तिर्मिज़ी में दुआ के कलमात आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से साबित हैं जिन्हें पढ़ कर बच्चे पर दम करना या लिख कर गले में डाल देना चाहिये 'अऊज़ु बि- कलिमातिल्लाहित्ताम्मति मिन शर्रि कुल्लि शैतानिन व हाम्मतिन व मिन शर्रि कुल्लि ऐनिन लामतिन' (मैं अल्लाह के पूरे होने वाले कलिमात की पनाह चाहता हूँ हर शैतान और ज़हरीले जानवर की बुराई से और नुक़सान पहुंचाने वाली हर आँख की बुराई से)

बच्चे को पहली शिक्षाः- नबी करीम ﷺ का फ़रमान है कि जब तुम्हारी औलाद बोलने लगे तो 'लाइलाहा इल्लल्लाह' सिखा दो फिर परवाह न करो कि कब मर जाये, और जब उस के दूध के दाँत गिर जायें तो उसे नमाज़ पढ़ने का हुक्म दो। (तिर्मिज़ी, ज़ादुल मआद)

किताबुल यमीन

यमीन की परिभाषाः- लुग़त/डिक्शनरी में यमीन का शब्द तीन अर्थ में इस्तेमाल हुआ है (1) दायाँ हाथ (2) कुव्वत व ताक़त (3) क़सम। बाद में इस का इस्तेमाल हलफ़ यानी क़सम खाने के लिये होने लगा, क्योंकि इस्लाम से पहले यह दस्तूर था कि जब लोग आपस में किसी बात पर हलफ़ उठाते तो एक दूसरे का हाथ थाम कर क़सम खाते या इस लिये कि किसी बात की मज़बूती वादे और कुव्वत को ज़ाहिर करने के लिये यमीन यानी दाएँ हाथ से इस लिये तशबीह दी जाती कि वह बाएँ हाथ से ज़्यादा ताक़तवर समझा जाता था।

यमीन (क़सम) का हुक्मः- किसी बात में मज़बूती और उस में ज़ोर पैदा करने के लिये क़सम खाई जाती है। निकाह व तलाक़, ईला व खुलअ़, और तिजारत में क़सम खाने की ज़रूरत अकसर पेश आती है, चुनांचे इस बाब में क़सम खाने का ज़िक्र आया है। फ़िक़्ह की पुस्तकों में जहाँ मुआमलात कर्ज़, रहन (गिर्वी) और व्यापार का बयान किया गया है वहीं क़सम के मसाइल का ज़िक्र किया गया है। क़सम का इस्तेमाल जिस तरह व्यापार लेनदेन और खेती बाड़ी में होता है उसी तरह निकाह व तलाक़, ईला व खुलअ़ में भी होता है। इसी लिए हम ने समाजी मुआमलात के साथ यहाँ बयान कर देना मुनासिब समझा। क़सम की शरई हैसियत हालात के साथ बदलती रहती है। जब हलफ़ (क़सम) पर किसी ज़रूरी काम का करना निर्भर हो तो वह वाजिब हो जाता है जैसे एक बेकुसूर इन्सान को जिस ने ख़ून नहीं किया मौत से बचाना अगर हल्फ़ पर निर्भर हो तो हलफ़ उठाना वाजिब है, इसी तरह किसी ऐसे काम के लिये हलफ़

उठाना जो नाजाइज़ या हक़ बात के ख़िलाफ़ है हराम है। क़सम खाना तभी मुसतहब होता है जब किसी नेक काम की अहमियत बताना हो, उस की तरफ़ उभारना या बुरी बात से नफ़रत दिलाना मक़सद हो इसी तरह झगड़ा मिटाने के लिये हल्फ़ उठाना, मुसलमान के दिल से कीना दूर करने के लिये या किसी को किसी की बुराई से बचाने के लिये हल्फ़ उठाना, वग़ैरा भी मुस्तहब है। किसी अच्छे काम को छोड़ने और नापसंदीदा बात को अपनाने की क़सम मकरूह है। इस के विपरीत ख़ुदा की इताअत के लिये या गुनाह को छोड़ने के लिये हलफ़ उठाना मुबाह (जाइज़) है। अपने दावे को या अपने आप को सच्चा साबित करने के लिये हल्फ़ उठाना भी जाइज़ है, जैसे आँहज़रत ﷺ का फ़रमान है। फ़वल्लाहि ला यमल्लुल्लाहु हत्ता तमल्लू ('ख़ुदा की क़सम अल्लाह तो नहीं उकतायेगा मगर तुम उकता जाओगे') किसी चीज़ की अहमियत बताने की मिसाल आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह फ़रमान है। वल्लाहि ला तअलमून मा अअलम लज़हक़तुम क़लीला वलबक़यतुम कसीरा। (ख़ुदा की क़सम वह बात जो मुझे मालूम है अगर तुम्हें मालूम हो जाये तो तुम वास्तव में कम हंसो और ज़्यादा रोओ)।

जिस तरह क़सम खाना वाजिब व हराम, मकरूह व मुस्तहब और मुबाह हो जाता है इसी तरह से क़सम तोड़ना भी कभी वाजिब हो जाता है। अगर किसी ने क़सम खा कर कहा कि शराब पियूँगा या नमाज़ नहीं पढ़ूँगा तो उस पर वाजिब है कि क़सम तोड़ दे और कफ़्फ़ारा दे। कभी क़सम तोड़ना हराम होता है जब इस के विपरीत सूरत हो। जैसे बुरा काम न करने की क़सम खाना और फ़र्ज़ नमाज़ों को पढ़ने की क़सम खाना तो ऐसी क़सम का तोड़ना हराम है। कभी क़सम तोड़ना मुस्तहब होता है। अगर किसी मुस्तहब काम के न करने का हल्फ़ उठाया इसी तरह अगर किसी मकरूह काम के न करने का हल्फ़ उठाया तो उस का तोड़ना भी मकरूह है। कभी क़सम खाना मुस्तहब के ख़िलाफ़ होता है जैसे किसी मुबाह काम के न

करने का हलफ़ उठाया जैसे किसी गिज़ा के न खाने की क़सम खाई तो बेहतर यही है कि अल्लाह के नाम का लिहाज़ करते हुए उस को पूरा करे और अगर तोड़ दी तो कफ़्फ़ारा तो देना ही होगा, खुलासा यह है कि अगर किसी ने गुनाह करने की क़सम खाई तो उस पर वाजिब है कि क़सम तोड़ दे। जैसे यह कि मैं अपने माँ बाप से एक दिन या एक महीना बात चीत नहीं करूँगा। अगर किसी गुनाह को न करने की क़सम खाई तो उस पर फ़र्ज़ हो गया कि क़सम पर क़ायम रहे उसे हरगिज़ न तोड़े वाजिब को न छोड़े, अगर वाजिब छूटता हो तो क़सम को तोड़ देना फ़र्ज़ है। अगर ऐसे काम की क़सम खाई जिस को न करना बेहतर था या जिस का करना न करने से बेहतर था या करना न करना दोनों बराबर थे। उस की मिसालें यह हैं, खुदा की क़सम मैं आज प्याज़ खाऊँगा या खुदा की क़सम मैं आज चाश्त की नमाज़ पढ़ूँगा या खुदा की क़सम मैं आज रोटी नहीं खाऊँगा तो अल्लाह तआला का फ़रमान है *'वहफ़ज़ू ऐमानकुम'* अपनी क़स्मों पर क़ायम रहा करो। क़सम में अगर वक़्त की क़ैद नहीं लगाई गई तो क़सम खाने वाला उम्र भर क़सम की हालत में रहेगा और उस को तोड़ने पर कफ़्फ़ारा वाजिब होगा। इसी लिये बेवजह या बेमक़सद क़सम खाना शरीअत में नापसंदीदा है। इस से खुदा की ज़ात या उस की किसी सिफ़त (गुण)की बेइज़्ज़ती होती है और वह शख़्स भी बेइज़्ज़ती और गिरी हुई नज़रों से देखा जाता है।

क़सम का शरई सुबूतः- अल्लाह तआला की या उस की सिफ़ात में से किसी सिफ़त की क़सम खाना ताकि अहद (वचन) को पूरा करने की तरग़ीब और अल्लाह की अज़्मत का यक़ीन हो। कुरआन व हदीस और इजमाअ (आम सहमति) से साबित है कुरआन में है-

لَا يُؤَاخِذُكُمُ اللّٰهُ بِاللَّغْوِ فِيْٓ اَيْمَانِكُمْ وَلٰكِنْ يُّؤَاخِذُكُمْ بِمَا عَقَّدْتُّمُ الْاَيْمَانَ

(مائدہ:۸۹)

'ला युवाख़िज़ु कुमुल्लाहु बिल्लग़्वि फ़ी ऐमानिकुम वलाकियं युवाख़िज़ुकुम बिमा अक़त्तुमुलऐमाना।'

अनुवाद:- अल्लाह तुम्हारी बेमक़सद क़स्मों पर पकड़ नहीं करता, हाँ उन क़स्मों पर पकड़ करेगा जो तुमने किसी मक़सद से खाई हैं।

अबूदाऊद में आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का यह फ़रमान है 'वल्लाहि लअग़ज़ुवन्ना कुरैशन' (ख़ुदा की क़सम मैं कुरैश से ज़रूर जिहाद करूँगा) ये शब्द हुज़ूर ने तीन बार फ़रमाये और आख़िरी बार इन्शाअल्लाह को बढ़ा कर कहा। रिवायतों में इन शब्दों के साथ आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम का क़सम खाना ज़िक्र हुआ है 'ला वमुक़ल्लिबिल कुलूबि' (दिलों को बदलने वाले की क़सम) और 'वल्लज़ी नफ़्सी बियदिही' (उस ज़ात की क़सम जिस के हाथ में मेरी जान है)।

उम्मत के तमाम फुक़हा की राय एक ही है कि क़सम शरीअत के कामों में से है।

क़सम की क़िस्में:- क़सम की तीन क़िस्में होती हैं (1) लग़्व (2) मुनअक़िद: (3) ग़ुमूस।

लग़्व क़सम वह है जो बेकार और बेमक़सद खाई जाये, इस में न गुनाह है न कफ़्फ़ारा। लग़्व क़सम की दो सूरतें हैं, किसी गुज़री हुई बात को सच जानते हुए या सही समझते हुए क़सम खा लेना, हालाँकि वह बात सही न हो या बिलाइरादा ज़ुबान से क़सम के शब्द का निकल जाना जिस की न ज़रूरत हो और न मक़सद। कुछ लोग बात करते करते 'क़सम ख़ुदा की' कह जाते हैं जिस से इनका इरादा क़सम खाने का नहीं होता, ऐसी क़स्मों के बारे में इमाम मुहम्मद (रह०) ने लिखा है कि 'हमें उम्मीद है कि अल्लाह उन पर पकड़ नहीं करेगा'।

मुनअक़िद क़सम : क़समें मुनअक़िद मुसतक़बिल (भविष्यकाल) में किसी काम के करने या न करने की क़सम खाना है तो जिस काम के करने की क़सम खाई है। अगर वह न करे या जिस काम के न

करने की क़सम खाई है अगर वह करे तो उस पर कफ़्फ़ारा देना लाज़िम होगा। इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) के नज़दीक ख़ुदा तआला या उस की सिफ़ात में से किसी सिफ़त का नाम ले कर कोई बात साबित करने या किसी काम के करने की क़सम खाई जाये तो वह पड़ जाती है। क़स्द व इरादा या भूल चूक या ज़बरदस्ती का सवाल उठा कर उस को लग़्व नहीं माना जायेगा मगर इमाम शाफ़ई और इमाम मालिक (रह०) क़स्द व इरादे की शर्त ज़रूरी मानते हैं क्येंकि कुरआन में *'बिमा अक़दतुमुल ऐमाना'* कहा गया है यानी जिन क़समों को तुम ने बाँधा लिया हो। दूसरी जगह **'बिमा कसब त कुलूबुकुम'** यानी जो कुछ तुम्हारे दिलों ने कमाया। इस से मालूम हुआ कि क़सम में दिल का इरादा और नियत न हो तो वह क़सम न होगी। इस तरह भूल चूक और ज़बरदस्ती की क़सम लागू न होगी। नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की एक हदीस में है 'मेरी उम्मत से हुई ग़लती और भूल माफ़ है और वह काम भी माफ़ है जिस पर मजबूर किया गया हो'।

क़समे गुमूस यह है कि कोई शख़्स जान बूझ कर अल्लाह की झूटी क़सम खा ले, यह ज़रूरी नहीं कि वह गुज़रे हुये ज़माने का ही क़िस्सा हो बल्कि हो सकता है कि वह उसी वक़्त का हो, गुज़रे हुए ज़माने की मिसाल यह है कि किसी ने जानते बूझते ज़ैद को मारा और फिर उस ने ख़ुदा की क़सम खा कर कहा मैं ने ज़ैद को नहीं मारा या उस ने ख़ालिद से एक हज़ार रूपये लिये और फिर कहा ख़ुदा की क़सम ख़ालिद से मैं ने एक हज़ार रूपये नहीं लिये, मौजूदा ज़माने की मिसाल यह है कि किसी ने कहा कि ख़ुदा की क़सम यह तो सोना है हालाँकि वह जानता है कि यह चाँदी है। झूटी क़सम आमतौर पर किसी का हक़ मारने या नुक़सान पहुंचाने के लिये खाई जाती है या अपने लिये नाजाइज़ फ़ायदा कमाने के लिये। इस बुराई के अलावा दूसरी बुराई यह है कि अल्लाह का नाम लेकर झूट बोला जाता है जो बहुत ही बुरी बात है। इसी लिये शरीअत में यह बड़ा

गुनाह है। आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने क़त्ल और माँ बाप की नाफ़रमानी के साथ इस को भी बड़ा गुनाह बताया है। आप ने फ़रमाया कि जो शख़्स झूटी क़सम खा कर किसी का हक़ मार बैठता है उस पर जन्नत हराम है और उस का ठिकाना दोज़ख़ है, दिल में कुछ और हो और क़सम के ज़रिये ज़ुबान से कुछ और ज़ाहिर किया जाये तो यह झूटी क़सम है जिस का रिश्ता निफ़ाक़ से मिल जाता है-

اِنَّ الْمُنَافِقِيْنَ لَكَاذِبُوْنَ اِتَّخَذُوْا اَيْمَانَهُمْ جُنَّةً فَصَدُّوْا عَنْ سَبِيْلِ اللّٰهِ.

(منافقون:۱-۲)

'इन्नल मुनाफ़िक़ीना लकाज़िबूना इत्तख़ज़ू ऐमानहुम जुन्नतन फ़सद्दू अन सबीलिल्लाहि।'

अनुवादः- वास्तव मेंमुनाफ़िक़ीन झूठे हैं जो अपनी क़समों को ढाल बनाते हैं अल्लाह के रास्ते से रोकने के लिये।

सूरः मुनाफ़िक़ून की यह आयत उन मुनाफ़िक़ों के लिये है जो आपﷺ को सच्चा जानते हुए क़समें खा कर आप के रसूल होने का इनकार करते थे ऐसी क़सम का कफ़्फ़ारा नहीं। इस को ग़मूस (डुबो देने वाली) इस लिये कहते हैं क्योंकि इस क़िस्म की क़सम गुनाह में डुबो देती है उस के लिये जहन्नम है।

क़सम पड़ जाने की शर्तेंः- क़सम पड़ने की कुछ शर्तें हैं, एक यह कि क़सम खाने वाला मुकल्लफ़ (आक़िल व बालिग़) हो। इस लिये नाबालिग़ और दीवाने की क़सम नहीं पड़ती। दूसरी यह कि अपनी मर्ज़ी से क़सम खाये, इस लिये अगर ज़बरदस्ती क़सम खिलाई गई है तो वह नहीं पड़ेगी लेकिन क़सम खाने के बाद अगर ज़बरदस्ती तुड़वाई गई हो, तो वह हानिस (यानी क़सम तोड़ने वाला) माना जायेगा। तीसरी शर्त यह है कि क़सम जानबूझ कर खाई गई हो। इस लिये ऐसी क़सम जो ज़ुबान पर बग़ैर इरादे के आदत के तौर पर आ

जाये उसे क़सम नहीं माना जायेगा, लेकिन अगर जान बूझ कर खाई हुई क़सम भूल चूक से टूट जाये तो वह क़सम तोड़ने वाला हो जायेगा। चौथी शर्त यह है कि जिस की क़सम खाई वह अल्लाह तआला के नामों में से कोई नाम या उस की सिफ़ात में से कोई सिफ़त हो, पाँचवीं शर्त यह है कि जिस बात की क़सम खाई है वह खुद बखुद ज़ाहिर हो जाने वाली न हो, न आदतन और न अक़्लन। इस लिये ऐसी तमाम क़समें लग़्व हैं जैसे खुदा की क़सम सूरज पूरब से निकलेगा या खुदा की क़सम हम मर जायेंगे, या अल्लाह की क़सम यह जिस्म ठोस है या खुदा की क़सम मैं कल का दिन आज नहीं लौटा कर लाऊँगा या खुदा की क़सम मैं इस पत्थर को सोना नहीं बनाऊँगा, तो इस तरह की क़समें नहीं पड़ेंगी।

हाँ वे बातें जिन का करना आदतन और अक़्लन मुम्किन है अगर उन की क़सम खाई जायेगी तो पड़ जायेगी जैसे अगर क़सम खा कर कहा कि मैं इस घर में ज़रूर जाऊँगा या इस घर में हरगिज़ न जाऊँगा तो ये क़समें पड़ जायेंगी, क्योंकि ये बातें अक़्लन और आदतन मुम्किन हैं ऐसी बात जो सिर्फ़ आदतन नामुम्किन हो तो उस पर क़सम खाते ही वह टूट भी जायेगी जैसे क़सम अल्लाह कि मैं पहाड़ को उठा कर लाऊँगा या आसमान पर चढ़ जाऊँगा, अक़्लन और आदतन दोनों तरह नामुम्किन बात पर क़सम खाने का भी यही हुक्म है यानी क़सम खाने वाला हानिस माना जायेगा। क़सम पड़ने की शर्तों में से एक शर्त यह भी है कि वह इस्तिस्ना अर्थात *'इन्शाअल्लाह'* के शब्द से ख़ाली हो। हनफ़ी उलमा की राय में क़सम के लिये लाज़िम है कि उस में *इन्शाअल्लाह* या *माशाअल्लाह* जैसे शब्द न हों या बग़ैर इन शब्दों के जैसे 'इस के अलावा कि कोई बात समझ में आ जाये' या 'मैं ऐसा न करूँगा बिला सोचे' या 'मैं ऐसा नहीं करूँगा बग़ैर इस के कि कोई और सूरत पसन्द आ जाये।'

इस तरह इस्तिस्ना के बाद अगर वह बात कर ली तो हानिस

नहीं माना जायेगा। इसी तरह अगर इस तरह कहा 'ऐसा नहीं करूँगा मगर इस शर्त पर कि अल्लाह मेरी मदद करे' या 'ऐसा ज़रूर करूँगा मगर इस शर्त पर कि अल्लाह आसानी पैदा कर दे' वग़ैरा वग़ैरा। अब इस तरह क़सम खाने के बाद अगर वही काम कर लिया तो न क़सम टूटी न कफ़्फ़ारा लाज़िम हुआ, सिर्फ़ अल्लाह की क़सम में इस्तिस्ना प्रभावी है, लेकिन तलाक़ के बारे में अगर 'अल्लाह ने मदद की' या 'अल्लाह की मदद से' के शब्द इस्तेमाल किये और उन से मुराद इस्तिस्ना हो तो उस का फ़ैसला उस के और अल्लाह के बीच है क़ाज़ी की अदालत इस बुनियाद पर कोई फ़ैसला नहीं देगी।

इस्तिस्ना के सही होने की एक शर्त यह है कि क़सम खाने वाला शब्दों को इस तरह बोले कि सुने और समझे जा सकें। दूसरी शर्त यह है कि जिस बात पर क़सम खाई उस बात के साथ ही इस्तिस्ना के शब्द बोले जायें। अगर दोनों के बीच ग़ैर ज़रूरी दूरी होगी तो इस्तिस्ना बेफ़ायदा है। जैसे किसी ने अपनी पत्नी से कहा कि तुझे तलाक़ और साथ ही इन्शाअल्लाह या कोई इस्तिस्नाई शब्द जुबान से निकल गया तो तलाक़ न होगी, चाहे बग़ैर इरादे के ही वह शब्द निकला हों। इसी तरह वह क़सम भी सही नहीं है जहाँ क़सम के शब्द और उस बात में जिस पर क़सम खाई जा रही है दूरी हो, इस लिये क़सम लेने का यह तरीक़ा कि किसी से अल्लाह की क़सम खिलवाई जब उस ने क़सम खा ली तो कहा कि अब यह कहो मैं ने ऐसा नहीं किया तो यह क़सम नहीं पड़ी क्योंकि उस ने दूसरे की बात को सिर्फ़ दोहराया है और अल्लाह का नाम लेने और उस बात के बीच जो ख़ामोशी रही वही दूरी है।

वे शब्द जिन से क़सम पड़ जाती है:- अल्लाह का नाम ले कर या अल्लाह की सिफ़ात में से किसी सिफ़त का ज़िक्र कर के क़सम खाई जाये तो वह क़सम पड़ जाती है जैसे अल्लाह की क़सम, ख़ुदा की क़सम, ख़ुदा को हाज़िर नाज़िर जान कर, अल्लाह को गवाह बना

कर कहता हूँ कि यह काम ज़रूर करूँगा या जैसे रहमान व रहीम की क़सम, इज़्ज़त व जलाल वाले की क़सम, परवरदिगार की क़सम, रब्बुल आलमीन की क़सम, उसकी क़सम जिसे कुदरत व बड़ाई हासिल है, तो इन सब सूरतों में अगर किसी काम के करने की क़सम खाई तो उसे न करने पर क़सम टूट जायेगी और अगर न करने की क़सम खाई तो उसे करने पर क़सम टूट जायेगी, ख़ुदा की ज़ात व सिफ़ात की हुर्मत का तक़ाज़ा यह है कि इस जुर्म में वह कफ़्फ़ारा अदा करे क्योंकि उस ने ख़ुदा को अपने आमाल की ढाल बनाया और उस में एहतिराम का लिहाज़ न रखा। अगर किसी ने इस तरह कहा कि मैं क़सम खा कर कहता हूँ कि यह काम न करूँगा तो यह भी ख़ुदा की क़सम खाना है। अल्लाह के कलाम की क़सम खाने से भी क़सम पड़ जाती है क्योंकि वह भी अल्लाह की सिफ़त में से एक सिफ़त है, अल्लाह की किताब की क़सम पड़ जाती है क्योंकि उस से मुराद यह होती है कि उस में जो कुछ लिखा है उस की क़सम खाई गई। हल्फ़, शहादत, क़सम और अज़्म के शब्दों से क़सम खाई जाती है। अरबी में अक़सम्तु बिल्लाह आलैतु बिल्लाह' शहिदतु बिल्लाह हलफ़तु बिल्लाह या अज़म्तु बिल्लाह' कहने से क़सम पड़ जाती है अगर इन शब्दों के साथ अल्लाह का नाम न लिया जाये मगर दिल में अल्लाह की नियत हो तो भी क़सम पड़ जायेगी। हाँ इन शब्दों से क़सम नहीं पड़ेगी चाहे क़सम का ही इरादा हो 'अस्तईनु बिल्लाह' (मैं अल्लाह से मदद माँगता हूँ) *'अअतसिम बिल्लाह'* या *'अतवक्कलु अलल्लाह'* (ख़ुदा पर भरोसा करता हूँ) *'अलिमल्लाह'* (अल्लाह को इल्म है) *'इज़्ज़ुल्लाह'* (इज़्ज़त अल्लाह की है) *'तबारकल्लाह'* (अल्लाह की ज़ात बरकत वाली है) *'अलहमदु लिल्लाह'* (सारी तारीफ़ें अल्लाह के लिये हैं) या *'सुब्हानल्लाह'* (अल्लाह पाक है) वग़ैरा।

अल्लाह के अलावा किसी और की क़सम खाने का हुक्मः- अल्लाह के अलावा किसी और की क़सम खाने से क़सम नहीं

पड़ती, तो अगर कोई नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की या काबे की जिब्रील की या किसी वली या बुजुर्ग शख़्स की क़सम खाये तो क़सम नहीं पड़ेगी। ऐसी क़सम खा कर तोड़ दी जाये तो उस का कफ़्फ़ारा भी नहीं है। ऐसी क़समों में अगर किसी को अल्लाह के बराबर समझने का ख़याल है तो शिर्क है और अगर रसूलुल्लाह या काबे या फ़रिश्ते वग़ैरा की तौहीन होती हो तो कुफ़्र है। हदीस में है 'मन हलफ़ा लिगैरिल्लाहि फ़क़द अशरक '(जिसने ख़ुदा के अलावा किसी और की क़सम खाई तो उस ने शिर्क किया) कुछ फ़ुक़हा ने कुरआन की क़सम खाने को भी ग़ैर-अल्लाह की क़सम खाने में शुमार किया है, अगर उस से कुरआन की जिल्द मुराद हो और अल्लाह का कलाम मुराद न हो।

हल्फ़ बित्तअलीक़ यानी क़सम के साथ किसी काम को जोड़ देना जैसे इस तरह कहना कि 'ख़ुदा की क़सम ऐसा नहीं करूँगा चाहे मुझे बीवी को तलाक़ देना पड़ जाये।' हनफ़ी उलमा के नज़दीक यह कहना उसी वक़्त जाइज़ है जब दूसरे शख़्स को सिर्फ़ अपनी क़सम की मज़बूती का यक़ीन दिलाना मक़सद हो, लेकिन अगर यह मक़सद न हो तो यह एक मकरूह क़ौल है। यही हाल इन क़स्मों का है- तेरे बाप की क़सम, तेरी जान की क़सम, तेरे सिर की क़सम वग़ैरा।

दूसरे की तरफ़ से क़सम खाना या दिलानाः- किसी ने दूसरे से कहा कि वल्लाह या बख़ुदा तुम ऐसा ज़रूर करोगे तो अगर इस से मक़सद मुख़ातिब (संबोधक) को क़सम दिलाना हो तो न तो यह क़सम होगी और न इस से किसी पर कुछ वाजिब होगा लेकिन अगर मुख़ातिब को क़सम दिलाने का मक़सद न हो तो उस को कहने वाले की तरफ़ से क़सम समझा जायेगा, इस लिये अगर मुख़ातिब (संबोधक) ने वह काम न किया तो कहने वाला हानिस हो जायेगा और उस पर कफ़्फ़ारा लागू होगा। मुख़ातिब पर कुछ लाज़िम न होगा लेकिन अगर वह कहता है कि मेरा मक़सद इस तरह कहने से सिर्फ़

मुख़ातिब का इरादा जानना था तो यह क़सम नहीं समझी जायेगी। यह है हनफ़ी उलमा की राय, बाक़ी तीनों इमामों के नज़दीक भी यही सूरत है फिर भी वह यह भी कहते हैं कि जब किसी से अल्लाह की क़सम के साथ कोई काम करने को कहा जाये और उस काम को कर देने में उसका कोई नुक़सान न होता हो तो मुस्तहब यह है कि उस की क़सम को पूरा कर दिया जाये।

क़सम का कफ़्फ़ारा कब वाजिब होगा:- क़सम पड़ने की शर्तें बयान की जा चुकी हैं तो अगर उन शर्तों के मुताबिक़ क़सम पड़ जाने वाली क़स्मों को तोड़ा जाये तो कफ़्फ़ारा वाजिब होगा और अगर क़सम नहीं टूटी तो कफ़्फ़ारा वाजिब न होगा, इसी तरह अगर कोई यह कहे कि मैं ने मन्नत मानी है कि यह काम करूँगा और वह काम नहीं किया तो कफ़्फ़ारा वाजिब हो जायेगा। या कहा कि मुझे क़सम है ऐसा ज़रूर करूँगा, अगरचे यहाँ अल्लाह का नाम नहीं लिया फिर भी क़सम हो जायेगी और अगर वह टूट गई तो कफ़्फ़ारा देना वाजिब होगा, यह बात भी कफ़्फ़ारा वाजिब करती है अगर कोई शख़्स हलाल चीज़ को कहे कि मुझ पर इस का खाना हराम है तो उस से चीज़ तो हराम नहीं हो जाती लेकिन अगर उसे खाया तो क़सम का कफ़्फ़ारा देना होगा। हाँ अगर उस ने सिर्फ़ ख़बर देने के लिये कहा कि फ़ुलाँ शख़्स का माल या कोई चीज़ मुझ पर हराम है तो यह क़सम नहीं है, इसी तरह अगर यह कहा कि 'अगर ऐसा करूँ तो अल्लाह से फिरूँ, या अल्लाह की किताब से फिरूँ या रसूलुल्लाह ﷺ से फिरूँ, तो अगर उस ने वह काम किया तो क़सम टूटने वाला कफ़्फ़ारा लाज़िम होगा, मगर यह कि ख़ुदा गवाह है या फ़रिश्ते गवाह हैं मैं ऐसा करूँगा या अगर न करूँ तो रसूल अल्लाह ﷺ की शिफ़ाअत से महरूम हो जाऊँ तो इन शब्दों से कफ़्फ़ारा लाज़िम न होगा। यह कहना कि अगर मैं ने ऐसा किया तो काफ़िरों में से हूँ तो अब अगर वह उसे करता है तो कफ़्फ़ार देना पड़ेगा,

और अगर वह इस बात को कर चुका है फिर यह कह रहा है वह क़सम तोड़ने का मुजरिम और गुनहगार होगा।

क़सम का कफ़्फ़ारा अदा करने का तरीक़ाः- क़सम का कफ़्फ़ारा दस मुहताजों को खाना खिलाना या कपड़े पहनाना या एक गुलाम आज़ाद करना है। इन तीनों बातों में से एक बात अपनाई जा सकती है, गुलामों को अब ख़रीदा और बेचा नहीं जाता है इस लिये उसे कफ़्फ़ारे में आज़ाद करने का तरीक़ा अब ख़त्म हो गया है, बस अब दो ही तरीक़े हैं, लेकिन अगर इन दो में से कोई बात न कर सकता हो यानी हक़ीक़त में मजबूर हो तो तीन रोज़े रख सकता है यानी कफ़्फ़ारे में रोज़े तभी रखे जायेंगे जब पहले ज़िक्र की गुई बातों में से कोई बात न कर सकता हो।

खाना खिलाने के बारे में इस बात का ध्यान रखा जाये कि दस मुहताजों को दोनों वक़्त खाना खिला दे। यानी जिन दस मुहताजों को सुब्ह खिलाये उन्हीं दस मुहताजों को शाम को भी खिलाये या फिर सदक़-ए-फ़ित्र में जितना ग़ल्ला दिया जाता है उतना उतना ग़ल्ला दस फ़क़ीरों को दे। यानी हर एक को पौने दो सेर गेहूँ या साढ़े तीन सेर जौ या उस की क़ीमत, गेहूँ के बजाये गेहूँ का आटा और जौ के बजाये जौ का आटा दिया जा सकता है। दस आदमियों का आटा बीस आदमियों में बाँटना सही नहीं है। इसी तरह कफ़्फ़ारे की पूरी मात्रा एक ही मुहताज को एक ही दिन एक ही बार में दे देना या दस बार कर के दे देना भी जाइज़ नहीं है, हाँ अगर दस दिन तक हर दिन एक मुहताज को पूरी मात्रा में कोई भी चीज़ दी गई या उस की क़ीमत दी गई तो जाइज़ है, क्योंकि दस मिस्कीनों की शर्त इस तरह पूरी हो जायेगी। एक शख़्स की ख़ुराक दो आदमियों में बाँटना सही नहीं है। हाँ यह हो सकता है कि जिस मिस्कीन को सुब्ह खाना खिलाया जाये तो उसी को शाम के खाने की क़ीमत दे दी जाये।

कपड़ा पहनाने के बारे में इस बात का ध्यान रहना चाहिये कि

दस मिस्कीन अगर मर्द हैं तो उन में हर एक का जोड़ा ऐसा होना चाहिये कि जिस्म ढक जाये। कुर्ता या क़मीस और पाजामा या लुंगी, औरतें अगर हैं तो ओढ़नी भी देनी चाहिये ताकि नमाज़ पढ़ सकें। कपड़ा पुराना न हो और इतना मज़बूत हो कि तीन महीने से ज़्यादा तक पहना जा सके और दरमियानी दर्जे के लोगों के पहनने के लायक़ हो।

रोज़े का कफ़्फ़ारा सिर्फ़ उसी हाल में सही है जब ख़िलाने और पहनाने की ताक़त न रखता हो। वह शख़्स ताक़त वाला माना जायेगा जिस के पास इतना माल हो कि गुज़ारे का ख़र्च निकाल कर कफ़्फ़ारा दे सके, जो शख़्स ताक़त नहीं रखता है उस को इस बात की इजाज़त है कि वह क़सम के कफ़्फ़ारे में तीन रोज़े रखे, अगर लगातार तीन नहीं रख सका तो इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) फ़रमाते हैं कि कफ़्फ़ारा अदा नहीं होगा, क्योंकि रोज़े का कफ़्फ़ारा और ज़िहार का कफ़्फ़ारा उस वक़्त तक अदा नहीं होता जब तक मुक़र्रर की हुई संख्या लगातार न पूरी की जाये, बाक़ी तीन इमाम क़सम के कफ़्फ़ारे में लगातार रोज़ा रखना ज़रूरी नहीं समझते। उन की दलील यह है कि क़सम के कफ़्फ़ारे में जो हुक्म कुरआन व हदीस में ज़िक्र है उस में लगातार की क़ैद नहीं लगाई गई है-

فَمَنْ لَّمْ يَجِدْ فَصِيَامُ ثَلٰثَةِ اَيَّامٍ ط ذٰلِكَ كَفَّارَةُ اَيْمَانِكُمْ. (مائده: ٨٩)

फ़मल्लम यजिद फ़सियामु सलासति अय्यामिन, ज़ालिका कफ़्फ़ारतु ऐमानिकुम।' (सूरः मायदा 89)

***अनुवाद*:-** जिस को खाना कपड़ा देने की ताक़त न हो वह तीन दिन के रोज़े रखे तो यह तुम्हारी क़समों का कफ़्फ़ारा है।

ज़रूरी नोटः फ़िक़ह की किताबों में कई क़िस्म की मिसालें क़समों की दे कर यह बताया गया है कि वह किन किन चीज़ों से टूट जाती हैं और किन चीज़ो से नहीं टूटतीं। इसी तरह क़सम के

शब्दों से भी जो परिवर्तन उस के अदा करने में वाके़ होते हैं, बहस की गई है। खाने पीने के बारे में क़सम, ख़रीद व फ़रोख़्त करने के बारे में क़सम, निकाह करने या न करने, क़र्ज़ देने या न देने और तरह तरह की क़समों के बारे में विस्तार के साथ मसाइल बयान किये गये हैं, हम ने सिर्फ़ उसूली बातें इस किताब में बयान कर दी हैं।

नज़्र के मसाइल

नज़्र की परिभाषाः- नज़्र यह है कि मुकल्लफ़ (आक़िल व बालिग़) इन्सान अपने ऊपर कोई ऐसी बात वाजिब कर ले जिसे नबीﷺ ने ज़रूरी क़रार न दिया हो। इस्तिलाह (परिभाषा) में इसे मन्नत मानना कहते हैं।

नज़्र की हैसियत और सुबूतः- शरीअत ने मन्नत मानी हुई बात का पूरा करना वाजिब क़रार दिया है इस शर्त पर कि मानने वाला सेहतमन्द हो और शर्तों को पूरा करता हो जिस का बयान आगे आ रहा है इस का सुबूत अल्लाह तआला के इस फ़रमान से होता है 'वलयूफ़ू नुज़ूरहुम '(चाहिये कि वे अपनी नज़्रों को पूरा करें,) आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया-

> 'जिस ने ऐसी मन्नत मानी कि वह अल्लाह की इताअत है तो उसे ज़रूर करे और जिस ने ऐसी मन्नत मानी जो अल्लाह की नाफ़रमानी है तो नाफ़रमानी बिल्कुल न करे।'

मन्नत को पूरा करना उस वक़्त लाज़िम होता है जब वह बात हो जाये जिस के लिये मन्नत मानी है।

हज़रत इमाम अहमद बिन हंबल (रह०) नज़्र को अगरचे वह इबादत ही क्यों न हो मकरूह मानते हैं, क्योंकि आँहज़रत सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने नज़्र के बारे में फ़रमाया है कि 'इस से कुछ फ़ायदा नहीं' हाँ बख़ील (कंजूस)से कुछ ख़र्च करवाने का ज़रिया है। नज़्र अल्लाह के हुक्म को नहीं टाल सकती, हाँ अगर वह बात जिस की मन्नत मानी है पूरी हो जाये तो नज़्र का पूरा करना वाजिब है।

इमाम मालिक, इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम शाफ़ई (रह०) के नज़दीक अगर नज़्र के सवाब का काम समझ कर और अल्लाह का शुक्र करने के तौर पर कोई अपने ऊपर वाजिब कर ले कि जब अल्लाह का इनआम उस पर हुआ या कोई मुश्किल टल गई या किसी तकलीफ़ से निजात मिल गई या बीमार को अल्लाह ने सेहत दे दी तो शुक्राने के तौर पर वह सवाब का काम करेगा, तो इस सूरत में मन्नत मानना मुस्तहब और उसे पूरा करना फ़र्ज़ है। नज़्र उसी हाल में जाइज़ है जब यह ख़याल न हो कि उस नज़्र के मानने की वजह से फ़ुलाँ काम हो जायेगा। ऐसा ख़याल हो तो वह नज़्र हराम मानी जायेगी, ऐसी ही नज़्र को नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने मना फ़रमाया है-

'मन्नत न माना करो क्योंकि मन्नत अल्लाह के हुक्म में से ज़रा सी चीज़ को भी नहीं टाल सकती।' (मुस्लिम)

अगर मन्नत पूरी करने को सवाब का काम या अल्लाह का शुक्र अदा करने पर नहीं बल्कि किसी और काम पर निर्भर रखा तो उस के महरूह होने में कोई इख़्तिलाफ़ नहीं है नज़्र को सवाब का काम इस वजह से कहा जाता है कि उस में कोई सवाब का काम जैसे रोज़ा, नमाज़, हज सदक़ा वग़ैरा अदा करना होता है और शरई काम इस लिये कहते हैं कि अल्लाह का हुक्म 'वलयूफ़ू नुज़ूरहुम' (चाहिये कि वे अपनी नज़्रें पूरी करें) कुरआन पाक में मौजूद है।

नज़्र की क़िस्में:- नज़्र की दो क़िस्में हैं (1) नज़्रे तबर्रू(2) नज़्रे लिजाज।

(1) तबर्रू बिर शब्द से बना है जिस का अर्थ है नेकी। ऐसी नज़्र जिस में नेक काम और अल्लाह की नज़दीकी हासिल करना मक़सद हो वह नज़्रे तबर्रू है, इस की भी दो सूरतें हैं (1) नज़्र जो किसी दिली मुराद के पूरे होने पर निर्भर हो जैसे अगर मरीज़ को सेहत मिल गई तो शुक्राने में रोज़ा रखूंगा, इस को नज़्रे मुजाज़ात कहते हैं

क्योंकि जो मन्नत मानी है वह किसी बात के जवाब में है। (2) नज़्र जो किसी बात के हो जाने पर निर्भर न हो जैसे मैं नें नज़्र मानी है कि अल्लाह को खुश करने के लिये रोज़ा रखूंगा ये दोनों क़िस्में नज़्रे तबर्रू की हैं।

2. लिजाज, ज़िद या अनुरोध की बिना पर या गुस्सा और नाराज़गी के मौक़ों पर यह नज़्र मानी जाती है इस का मक़सद कभी किसी काम से दूर रहना होता है जैसे अगर मैं फुलाँ शख़्स से बात करूँ तो मुझ पर खुदा का यह फ़र्ज़ लागू होगा या अगर फुलाँ शख़्स ऐसा करे तो मुझ पर यह फ़र्ज़ लागू होगा। पहली मिसाल में अपने आप को दूसरे से बात चीत करने से रोके रहना है और दूसरी मिसाल में दूसरे शख़्स को काम से रोकना है और कभी इस नज़्र का मक़सद किसी काम पर खुद को उभारना होता है, या किसी और को उभारना होता है, जैसे अगर घर में न गया तो मुझ पर यह काम लाज़िम होगा या अगर उस ने यह काम न किया तो मुझ पर यह वाजिब होगा और कभी इस नज़्र से मक़सद किसी बात की तसदीक़ (पुष्टि) होती है जैसे अगर वह बात न हुई जो तुम ने मुझ से कही थी तो मुझ पर खुदा की तरफ़ से यह लाज़िम होगा।

इस तरह नज़्रे तबर्रू की दो क़िस्में हैं और नज़्रे लिजाज की तीन क़िस्में हैं। कुल पाँच क़िस्में हुईं। नज़्रे तबर्रू की दोनों सूरतों में जो बात मानी है उस का पूरा करना फ़र्ज़ है और मन्नत मानने वाले पर लाज़िम है कि शर्त वाली नज़्र में मुराद पूरी होने पर जो नज़्र मानी थी उसे पूरा करे और जिस में शर्त नहीं लगाई थी अगर वक़्त मुक़र्रर किया है तो उसी वक़्त पर पूरा कर दे और अगर वक़्त मुक़र्रर नहीं किया है तो कुछ देरी भी की जा सकती है। नज़्रे लिजाज की तीनों सूरतों में जो मन्नत भी मानी हो अगर वह सवाब के काम की है तो सही है, जो काम सवाब के काम नहीं हैं उन की नज़्र मानना सही नहीं, तमाम जाइज़ नज़्रों को पूरा करना होगा वर्ना क़सम का कफ़्फ़ारा लागू होगा। (यानी क़सम तोड़ने का कफ़्फ़ारा)

नज़्रे तबर्रू सही होने की शर्तें ये हैं कि नज़्र मानने वाला मुसलमान हो, नज़्र पूरी करने की ताक़त रखता हो। बच्चा, नाबालिग़ या मजनून न हो, (नाबालिग़ या मजनून की नज़्र अगर रोज़े या नमाज़ की हो तो सही है, माल की नज़्र मानना सही नहीं है।)

जिस बात की नज़्र मानी गई है उस की शर्त यह है कि वह कोई सवाब का काम हो जिस का तऐय्युन (नियुक्ति) बुनियादी तौर पर शरेअ में न किया गया हो (अगर नज़्र में कोई फ़र्ज़े ऐन माना तो वह नज़्र लागू न होगी क्योंकि फ़राइज़ यानी पाँचों वक़्त की नमाज़ और रमज़ान के महीने के रोज़े वग़ैरा तो पहले ही शरई तौर पर लाज़िम हैं) नफ़्ल काम या फ़र्ज़े किफ़ाया (जनाज़े की नमाज़ वग़ैरा) हो और नफ़्ल को जमाअत के साथ अदा करना हो तो नज़्र मानी जा सकती है लेकिन वे तमाम काम जो सवाब के नहीं हैं चाहे वे हराम व मकरूह हों या मुबाह, सब नज़्र मानने के क़ाबिल नहीं समझे जायेंगे, और हराम की नज़्र सही नहीं है क्योंकि यह नाफ़रमानी है और हदीस में साफ़-साफ़ बयान है-

'गुनाह के काम की नज़्र और ऐसी बात की नज़्र मानना जो आदमी के बस में न हो सही नहीं है।'

मकरूह काम की नज़्र भी मकरूह होगी जैसे हमेशा रोज़ा रखने की मन्नत मानी तो वह सही न होगी। मुबाह काम की नज़्र जैसे मैं गोश्त नहीं खाऊँगा, या एक मील तक पैदल जाऊँगा तो अगर यह नज़्र पूरी न की तो कफ़्फ़ारा लाज़िम आयेगा, कुछ फ़ुक़हा की राय यह है कि कफ़्फ़ारा वाजिब न होगा और वे नज़्रें जिन में सवाब का काम या अल्लाह को ख़ुश करने के लिये कुछ मन्नत मानी गई हो तो उन्हें पूरा करना या क़सम का कफ़्फ़ारा अदा करना लाज़िम है। इस बात का ध्यान रहे कि गुनाह के काम की नज़्र मानने को सही नहीं कहा गया है, इस में वह बात भी शामिल है जो ख़ुद में गुनाह न हो मगर ख़ारिजी सबब की वजह से गुनाह हो जाये जैसे नमाज़

पढ़ना खुद में सवाब का काम है लेकिन ज़बरदस्ती या नाजाइज़ कब्ज़ा की हुई ज़मीन पर नमाज़ पढ़ना हराम है इस लिये उस की नज़्र मानना भी सही नहीं है।

विरासत

मुआमलात के विषय में अमानत, आरियत, हिबा और वसियत का बयान अलग से किया गया है यहाँ विरासत के बारे में बयान किया जाता है क्योंकि इस का संबंध इन्सानी समाजी हुकूक़ व वाजिबात और सिलारहमी से है।

विरासत का अर्थः- लुग़त/डिक्श्नरी में विरासत का अर्थ है मुनतक़िल (स्थानांतरित) करना। इस का इस्तेमाल ख़ास तौर पर माल और जायदाद, इज़्ज़त व शर्फ़ के लिये होता है, जैसे *'वरसल-माला वल-मज्दा अन फुलानिन'* (वह फ़लाँ शख़्स के माल और उस की अज़मत का वारिस हुआ')। शरीअत की परिभाषा में किसी शख़्स की मृत्यु के बाद उस के छोड़े हुए माल व जायदाद को उस के हक़दारों की तरफ़ पहुँचा देने को विरासत कहते हैं।

विरासत को बाँटने का तरीक़ा और वारिसों के हिस्से शरीअत में मुक़र्रर कर दिये हैं उन को बयान करने से पहले कुछ इस्तिलाहों (परिभाषाओं) का जान लेना ज़रूरी है।

मय्यत- मर जाने वाला शख़्स जिस ने माल और ज़िन्दगी के सामान छोड़े हों।

तरका- वह माल व जायदाद जो मरने वाले ने छोड़ा इसे मीरास भी कहते हैं।

वारिस- वह शख़्स जो मर जाने वाले शख़्स के माल और सामान का शरीअत के हुक्म से मालिक हो जाता है।

मूरिस (पूर्वज) - तरका छोड़ने वाला यानी मय्यत जो अपनी

ज़िन्दगी में उस माल व जायदाद का मालिक था।

ज़विलफ़ुरूज़- वे लोग जिन का मय्यत से नसबी संबंध हो और उन का हिस्सा शरीअत ने तरके में मुक़र्रर कर दिया हो।

असबा- जिस का मय्यत से नसबी संबंध मर्द के वास्ते से हो और ज़विलफ़ुरूज को देने के बाद जो बाक़ी बचे वह उन का हो।

ज़विल अरहाम- वे रिश्तेदार जिन का संबंध मय्यत से औरत के वास्ते से हो जैसे ख़ाला और नवासी वग़ैरा।

हक़ीक़ी भाई बहन- जिन्हें ऐनी भी कहते हैं वे हैं जो मय्यत के बाप और माँ की औलाद हों।

अख़याफ़ी भाई बहन- जो मय्यत की माँ की औलाद हों, लेकिन उस के बाप की औलाद न हों।

अल्लाती भाई बहन- जो मय्यत के बाप की औलाद हों लेकिन उस की माँ की औलाद न हों।

महरूम- वह शख़्स जो अपने किसी ग़लत काम की वजह से तरके में अपना हक़ खो चुका हो।

महजूब- वह शख़्स जो किसी वारिस की मौजूदगी में ख़ुद वारिस न माना जाये इस की दो सूरतें हो सकती हैं, या तो विरासत में उस का हिस्सा दूसरे वारिस की वजह से कम हो जायेगा, उसे हुज्बे नुक़सान कहते हैं या उस का हिस्सा दूसरे वारिस की वजह से बिल्कुल न रहेगा उसे हुज्बे हिरमान कहते हैं।

उसूल- मय्यत के बाप दादा, पर दादा।

फ़ुरूअ- मय्यत के बेटे पोते और बेटी पोती।

मूरिस की मृत्यु के बादः- मुरिस का छोड़ा हुआ माल उस के वारिसों की मीरास है लेकिन उसे उस वक़्त तक बाँटा नहीं जायेगा

जब तक तीन चीज़ों का ख़र्च उस से पूरा न कर लिया जाये (1) कफ़न दफ़न (2) क़र्ज़ (3) वसियत। क़र्ज़ व वसियत का बयान दूसरी जगह मिलेगा, यहाँ सिर्फ़ कफ़न दफ़न का ज़िक्र किया जाता है।

मय्यत ने जो कुछ छोड़ा है उस में से सब से पहले कफ़न और दफ़न के सामान का इन्तिज़ाम किया जायेगा मगर इस में फ़ुज़ूल ख़र्ची जाइज़ नहीं है बल्कि फ़ुज़ूल ख़र्ची करने वाले को ऐसे फ़ुज़ूल ख़र्च को ख़ुद बर्दाश्त करना होगा। कफ़न उसी हैसियत के कपड़े का हो जैसा मरने वाला अपनी ज़िन्दगी में इस्तेमाल करता रहा हो लेकिन ज़्यादा कम क़ीमत का कफ़न न देना चाहिये और इस बारे में बराबरी का लिहाज़ रखना चाहिये ताकि फ़ुज़ूल ख़र्ची न हो।

क़ब्र हर हाल में कच्ची बनाना चाहिये चाहे मय्यत ग़रीब की हो या मालदार की। क़ब्र की खुदाई का ख़र्च तर्के से लेना चाहिये, अगर क़ब्र के लिये ज़मीन ख़रीदने की ज़रूरत पेश आ जाये तो उसकी क़ीमत भी तरके से ली जा सकती है, मगर आम हालत में इस से ज़्यादा उस पर ख़र्च करना जाइज़ नहीं है। क़ब्र के तख़्तों की क़ीमत भी तरके से लेना चाहिये, अगर ज़रूरत हो तो नहलाने वालों और क़ब्र तक पहुंचाने वालों को भी मज़दूरी दी जा सकती है। अगर उस के घर और ख़ानदान वाले या रिश्तेदार वग़ैरा ख़ुशी से ख़र्च बर्दाश्त कर लें तो इस में कोई हर्ज नहीं है। इस बात का ध्यान रखना ज़रूरी है कि मय्यत का तरका उसके वारिसों का हक़ है इस लिये फ़ुज़ूल ख़र्ची दोहरे गुनाह का सबब होगी। एक सुन्नते नबवी की मुख़ालिफ़त का गुनाह दूसरे वुरसा का हक़ मारने का जिसकी अहमियत इतनी ज़्यादा है कि अगर मूरिस अपने कफ़न दफ़्न पर हक़ीक़ी ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च करने को कहा जाये तो शरीअत इसकी इजाज़त नहीं देती।

कफ़न दफ़्न के वक़्त सदक़े देना या मय्यत को दफ़्न करने के लिये जो लोग आयें उन की आवभगत करना तो अगर बालिग़ वुरसा अपने हिस्से से उस पर ख़र्च करते हैं तो कोई हर्ज नहीं मगर जो

वारिस ऐसा अपनी ख़ुशी से नहीं करते बल्कि सिर्फ़ नाम और दिखावे के लिये करते हैं तो यह जाइज़ नहीं है। इसी तरह नाबालिग़ वारिसों के हिस्से से भी सदक़ा ख़ैरात करना जाइज़ नहीं है। तीजा, चेहलुम, बर्सी का तरीक़ा चाहे इस में तरके से ख़र्च करें या अपने पास से सही नहीं है। यह तरीक़ा न तो सुन्नत है और न सहाबा और ताबईन ने ऐसा किया है, इस लिये इस से बचना चाहिये।

वारिस के अलावा किसी शख़्स की तरफ़ से कफ़न दफ़न करना:- अगर कोई शख़्स सवाब की नियत से या मुहब्बत में कफ़न दफ़न करना चाहे तो वारिसों की मर्ज़ी से कर सकता है। वारिसों को इस बात की इजाज़त देने या न देने का हक़ है।

पत्नियों के कफ़न दफ़न का ख़र्च:- पत्नी के कफ़न दफ़न का ख़र्च सब से पहले पति पर है, अगर पति मौजूद न हो तो पत्नी के तरके से लिया जायेगा।

जिस ने तरका न छोड़ा हो उसके कफ़न दफ़न का ख़र्च:- तरका छोड़ने की सूरत में जो लोग उस के वारिस होते हैं वे लोग मय्यत के कफ़न दफ़न पर ख़र्च करेंगे, अगर उस ने तरका न छोड़ा हो तो आधा ख़र्च वह उठायेगा जो आधे तरके का हक़दार होगा और बाक़ी आधा उन वारिसों को देना होगा जो तरके के चौथाई हिस्से के हक़दार होते हैं।

लावारिस का कफ़न दफ़न:- ऐसी मय्यत का कफ़न दफ़न जिस का न कोई वारिस हो न रिश्तेदार, इस्लामी हुकूमत पर या जहाँ इस्लामी हुकूमत न हो तो मुहल्ले के या बस्ती के लोगों पर वाजिब है। हुकूमत बैतुल माल से ख़र्च करेगी और बस्ती के लोग आपस में इकट्ठा कर के ख़र्च करेंगे।

मूरिस के ज़िम्मे क़र्ज़:- मूरिस मरने से पहले किसी का क़र्ज़दार हो और उस की जानकारी वारिसों को हो या उस का इक़रार उस ने मरने से पहले किया हो तो कफ़न दफ़न के बाद इस तरह के तमाम

क़र्ज़ अदा करने के बाद तरका वारिसों में बाँटा जायेगा। क़र्ज़ में बीवी का महर और अगर किसी चीज़ का नुक़सान हो गया हो तो उस का हरजाना भी शामिल है। वे फ़राइज़े इबादत जिन के अदा न करने पर फ़िदिया वाजिब हो गया हो या नमाज़ का कफ़्फ़ारा देना हो या ज़कात वाजिब हो तो हुक्म यह है कि ज़कात तो उस के माल से दे देना चाहिये लेकिन क़र्ज़ दे देने के बाद जो कुछ बचे उस में से 1/3 हिस्सा कफ़्फ़ारा फ़िदिया और वसियत को पूरा करने में ख़र्च किया जायेगा। अगर उन की मात्रा 1/3 से ज़्यादा हो तो फिर वुरसा की मर्ज़ी पर है कि वे ज़्यादा मात्रा को अदा करें या न करें, बहरहाल 1/3 के अन्दर वसियत के मुताबिक़ अदा करना वाजिब है।

तरके की तक़सीमः- क़र्ज़ को अदा करने और वसियत को पूरा करने के बाद मय्यत का तरका शरीअत के मुक़र्रर किये हुए हिस्सों के मुताबिक़ वारिसों में बाँटा जायेगा, कभी ऐसे असबाब भी पैदा हो जाते हैं जिन की वजह से एक वारिस तरके में अपने हक़ से महरूम रह जाता है या उस का हिस्सा कम हो जाता है।

महरूम होने के कारणः- बिल्कुल महरूम हो जाने के दो कारण हैं, मूरिस का क़त्ल और दीन (धर्म) में इख़्तिलाफ़।

1. अगर किसी बालिग़ वारिस के हाथ से मूरिस का क़त्ल हो गया चाहे वह जान बूझकर और अत्याचार के रूप में किया हो या ग़लती से हुआ हो तो वह मूरिस के तरके से बिल्कुल महरूम हो जायेगा। महरूम होने की तीन शर्तें हैं, एक यह कि वह अक़्ल व होश रखता हो, दूसरे यह कि वह बालिग़ हो, तीसरे यह कि क़त्ल अपने बचाव के लिये न किया गया हो। पागल और नाबालिग़ शरई पाबन्दी से आज़ाद होने की वजह से सज़ा के हक़दार नहीं हैं इस लिये उनके ज़रिए क़त्ल हो जाने से उनको सज़ा नहीं दी जाऐगी इसी तरह अगर वारिस ने अत्याचार के रूप में क़त्ल नहीं किया बल्कि अपना बचाव करने में मूरिस का क़त्ल हो गया तो विरासत से महरूम नहीं होगा।

2. कोई मुसलमान न ग़ैर मुस्लिम का वारिस हो सकता है और न कोई ग़ैर मुस्लिम मुसलमान मूरिस की विरासत पा सकता है। इस्लामी शरीअत दोनों को एक दूसरे का वारिस नहीं मानती, यही हुक्म इस्लाम से फिर जाने वाले का है यह भी मुसलमान की विरासत से महरूम रहेगा।

महजूब हो जाने वाले वारिसः- वे वारिस जो अपने काम की वजह से नहीं बल्कि दूसरे किसी वारिस के बीच में आ जाने की वजह से पर्दे में आ जाते हैं और इस वजह से या तो उन का हिस्सा मीरास में कम हो जाता है या बिल्कुल नहीं रहता। पहली सूरत को शरीअत में हुज्बे नुक़सान और दूसरी सूरत को हुज्बे हिरमान कहते हैं।

वे वारिस जो दूसरे वारिस की वजह से महजूब नहीं होतेः- हुज्बे नुक़सान या हुज्बे हिरमान से दो वारिस प्रभावित नहीं होते। यानी वह न इस वजह से विरासत से महरूम हो सकते हैं और न इस बुनियाद पर उन का हिस्सा कम किया जा सकता है वे दो वारिस मय्यत का बेटा और बेटी हैं।

हुज्बे नुक़सान की तफ़सीलः- जिन वारिसों का हिस्सा दूसरे वारिसों की वजह से कम हो जाता है उन की तफ़सील यह है-

1. अगर ज़विल फ़ुरूज़ (वारिसों) में सिर्फ़ मय्यत के माँ बाप हों तो उन की मीरास का 1/3 मिलता है लेकिन अगर मय्यत के बेटा बेटी वग़ैरा भी हों तो फिर माँ बाप का हिस्सा घट कर 1/6 रह जाता है।

2. माँ का हिस्सा मीरास में 1/3 है। जिस तरह उस के लड़कों की मौजूदगी में माँ का हिस्सा घट जाता है उसी तरह मय्यत के भाई बहन या उस की बीवी के होते हुए भी माँ का हिस्सा 1/3 से 1/6 हो जायेगा।

3. पति के तरके में बीवी का हिस्सा चौथाई 1/4 है लेकिन अगर पति ने औलाद छोड़ी है तो उन की मौजूदगी में बीवी का हिस्सा आठवाँ 1/8 हो जायेगा।

4. बीवी के तर्के में पति का हक़ आधा 1/2 है। लेकिन अगर बीवी के पेट से कोई औलाद है तो फिर पति को सिर्फ़ चौथाई 1/4 का हक़ होगा।

5. इसी तरह पोती का हिस्सा हक़ीक़ी बेटी की मौजूदगी में, अल्लाती बहन का हिस्सा हक़ीक़ी बहन की मौजूदगी में, दादा का हिस्सा औलाद की मौजूदगी में कम हो जाता है।

हज्बे हिरमान की तफ़सीलः- वे वारिस जो कुछ वारिसों की मौजूदगी में बिल्कुल महरूम हो जाते हैं ये हैं-

1. अगर मय्यत के वारिसों में बेटा, बेटी, पोता, पोती, या बाप दादा में कोई मौजूद हो तो हक़ीक़ी और अख़्याफ़ी (माँ की तरफ़ से) भाई बहन महरूम हो जाते हैं।

2. अगर मय्यत के बेटे मौजूद हों तो पोता पोती का विरासत में कोई हिस्सा नहीं होगा, शरीअत ने ज़विलफ़ुरूज़ में तरके को बाँटने की जो तर्तीब क़ायम की है वह इस तरह है कि पहले सब से क़रीबी को मिले फिर उस से दूर को यानी बेटे फिर पोते और फिर उन से नीचे के लोग, इसी तरह बाप फिर दादा और फिर उन से ऊपर के लोग, यानी जो लोग नसबी संबंध और तर्तीब के एतबार से क़रीबी होंगे वे तरका पाने के हक़दार होंगे और जो इसी तर्तीब से जितने दूर होंगे वे क़रीबी लोगों के होने की वजह से महजूब हो जायेंगे जैसे बाप से दादा महजूब हो जायेगा, और दादा से परदादा, इसी तरह लड़कों से पोते महजूब हो जायेंगे और पोतों से परपोते। इसी तरह माँ की मौजूदगी में नानियाँ और दादियाँ महजूब हो जायेंगी।

3. सारे ज़विल अरहाम,ज़विलफ़ुरूज़ और असबात की मौजूदगी में तरके से हिस्सा नहीं पायेंगे जैसे नाना, नानी, भानजा, भानजी, ख़ाला, मामूं, फूफी वग़ैरा महजूब हो जायेंगे अगर मय्यत के बेटे, बेटी, माँ बाप और भाई मौजूद हैं।

महजूब पोते का मसला:- शरीअत ने विरासत को बाँटने की जो तर्तीब रखी है वह बड़ी मज़बूत व मुस्तहकम (शक्तिशाली) है जिस को अगर ज़रा भी बदला जाये तो मज़बूती बाक़ी नहीं रहती। पोता विरासत से महरूम हो जाता है जब उस के बाप, चचा और दोनों में से कोई एक मौजूद हो। अब अगर मूरिस की ज़िन्दगी में एक बेटे की मृत्यु हो गई और वह अपने पीछे कोई औलाद छोड़ गया तो शरीअत के मुताबिक़ मूरिस का तरका उस के ज़िन्दा बेटों को मिलेगा और वह पोता जो यतीम है महरूम हो जायेगा। इस्लाम ने शरई क़ानून के साथ साथ अख़्लाक़ी हिदायात भी दी हैं। क़ानून पर पूरी तरह अमल करते हुए भी यतीम पोते के विरासत से महरूम होने की तलाफ़ी की गई है। शरीअत ने हर मूरिस को हक़ दिया है कि वह अपने माल में से 1/3 हिस्सा जिस अच्छे काम में लगाना चाहे उस की वसियत करे। इस लिये मूरिस को अपने पोते के लिये 1/3 की वसियत करने का हक़ है। इस के अलावा वह अपनी ज़िन्दगी में यतीम पोते के लिये दूसरी सूरतें भी निकाल सकता है। यतीम पोते के अलावा यतीम नवासे, यतीम भानजे और यतीम भाई बहन के लिये यहीं कुछ किया जा सकता है लेकिन शरई क़ानून में तबदीली करने का हक़ किसी को नहीं पहुंचता।

यतीम और बेसहारा लोगों के बारे में कुरआन व हदीस की हिदायतें:- यतीम और बेसहारा लोगों के लिये उन के सरपरस्तों (संरक्षक), ख़ानदान वालों, इस्लामी जमाअतों और हुकूमत की जो ज़िम्मेदारियाँ हैं उन्हें कुरआन की आयतों और नबी ﷺ के फ़रमान के मुताबिक़ दिया जाये और उन आदेशों पर अमल किया जाये।

कुरआन करीम में उस के उतरने के शुरू से आख़िर तक अल्लाह के हुकूक़ की बुनियादी बातों के साथ ही साथ ख़ुदा के बन्दों के हुकूक़ पर भी बराबर आदेश उतारे जाते रहे हैं। माँ बाप के बाद यतीमों और बेसहारा लोगो के साथ अच्छा व्यवहार करने को बहुत बड़ी नेकी बताया गया है। सूर: अल बलद में अल्लाह का फ़रमान है-

فَلَا اقْتَحَمَ الْعَقَبَةَ. وَمَا أَدْرٰكَ مَا الْعَقَبَةُ. فَكُّ رَقَبَةٍ. أَوْ إِطْعَامٌ فِي يَوْمٍ ذِي مَسْغَبَةٍ. يَتِيمًا ذَا مَقْرَبَةٍ. أَوْ مِسْكِينًا ذَا مَتْرَبَةٍ. (سورة البلد:١١تا١٦)

'फ़लक़्तहमल अक़्बह, वमा अदराका मलअक़्बह, फ़क्कु रक़्बतिन, औ इतआमुन फ़ी यौमिन ज़ी मस्ग़बह, यतीमन ज़ा मक़्रबह, औ मिस्कीनन ज़ा मतरबह।' (सूर:अलबलद, 11-16)

अनुवाद:- तो उस ने वह घाटी नहीं पार की और जानते हो कि वह क्या घाटी है? किसी की गर्दन गुलामी से छुड़ाना या तकलीफ़ और फ़ाक़े के दिन किसी रिश्तेदार यतीम को खाना खिलाना या किसी ख़ाकबसर (परेशानहाल) ग़रीब, नादार को खिलाना।

यानी जो इन्सानी हमदर्दी की इस बुलंदी तक भी न आ सका कि किसी इन्सान को गुलामी के फन्दे से छुड़ा दे या किसी अपने रिश्तेदार यतीम को खाना खिला दे जबकि वह ग़रीबी और फ़ाक़े में पड़ा हुआ हो या किसी ख़ाकनशीन (परेशानहाल) का पेट भर दे तो वह इन्सानियत के ऊँचे मरतबे पर कैसे पहुंच सकेगा। सूरह जुहा में है-

فَأَمَّا الْيَتِيمَ فَلَا تَقْهَرْ. وَأَمَّا السَّائِلَ فَلَا تَنْهَرْ. (الضحى:٩،١٠)

फ़अम्मल यतीमा फ़ला तक़्हर, वअम्मस्साइला फ़ला तनहर।

(सूर: जुहा, 9-10)

अनुवाद:- तो तुम यतीम पर कोई ज़ुल्म और दबाव न डालो और माँगने वालों को न झिड़को।

इन्सान अपनी ज़रा सी तकलीफ़ पर शिकायत करने लगता है लेकिन किसी ग़रीब की तकलीफ़ का उसे दुख महसूस नहीं होता। इस ख़ुदग़र्ज़ी पर अल्लाह तआला ने मुसलमानों को चेतावनी दी है-

كَلَّا بَلْ لَّا تُكْرِمُوْنَ الْيَتِيْمَ. وَلَا تَحٰٓضُّوْنَ عَلٰى طَعَامِ الْمِسْكِيْنِ.
وَتَاْكُلُوْنَ التُّرَاثَ اَكْلًا لَّمًّا. (سورۂ فجر:١٦تا١٩)

'कल्ला बल्ला तुकरिमूनल यतीम, वला तहाज़्ज़ूना अला तआमिल मिस्कीन, वताकुलूनत्तुरासा अकलल्लम्मा।'

(सूरः फ़ज्र 16-19)

अनुवादः- हरगिज़ ऐसा नहीं बल्कि तुम ख़ुद यतीम की दिलदारी नहीं करते और न दूसरों को हौसला दिलाते हो कि मिस्कीन को खाना दें और तरके का सारा माल समेट कर खा जाते हो।

नबी करीम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने यतीम पर दया करने और उस के अज्र और सवाब के बारे में फ़रमाया कि-

'जिस ने ख़ुदा की मर्ज़ी के लिये यतीम के सिर पर हाथ फेरा तो उस यतीम के सिर के हर बाल के बदले उसके नामए-आमाल में एक नेकी लिखी जायेगी।' (तिर्मिज़ी)

आप ﷺ ने फ़रमाया-

'यतीम की परवरिश करने वाला और मैं जन्नत में इस तरह होंगे (आप ने दो उंगलियाँ मिला कर दिखाई)' (बुख़ारी)

आप ﷺ ने फ़रमाया जो शख़्स यतीम को अपने खाने में शरीक कर ले अल्लाह तआला उसके लिये जन्नत वाजिब कर देगा।'

आप ने यतीमों के साथ अच्छा व्यवहार करने को भलाई का मेयार और उनके साथ बुरा व्यवहार करने को बुराई का मेयार बताया है-

خَيْرُ بَيْتٍ مِنَ الْمُسْلِمِيْنَ بَيْتٌ فِيْهِ يَتِيْمٌ يُحْسَنُ اِلَيْهِ وَشَرُّ بَيْتٍ مِنَ
الْمُسْلِمِيْنَ بَيْتٌ فِيْهِ يَتِيْمٌ يُسَاءُ اِلَيْهِ (ابن ماجه)

'ख़ैरू बैतिन मिनल मुस्लिमीना बैतुन फ़ीहि यतीमुन युहसनु इलैहि व शर्रू बैतिन मिनल मुस्लिमीना बैतुन फ़ीहि यतीमुन युसाउ इलैहि।'

अनुवादः- मुसलमानों के घरों में बेहतरीन घर वह है जिस में कोई यतीम हो और उस के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता हो और बदतरीन घर मुसलमानों का वह है जिस में यतीम हो और उसके साथ बुरा व्यवहार किया जाता हो।

इन हिदायतों के बाद यह कहना कि इस्लामी क़ानून पोते को दादा के तरके से महरूम कर के इन्साफ़ नहीं करता बिल्कुल ग़लत है। पोता अपने बाप के तरके से किसी हाल में महरूम नहीं है। दादा के तरके से बराहेरास्त हिस्सा न पाने के बावजूद यतीम होने की सूरत में उस को ऐसी रिआयतें दी गई हैं जो उसे महरूमी का एहसास भी नहीं होने देतीं। मुस्लिम समाज जिन अख़लाक़ी क़द्रों पर क़ायम है वह समाज के किसी भी व्यक्ति को बेसहारा नहीं रखेगा।

कम उम्री और विधवा हो जाना विरासत के हक़ से नहीं रोकतीः-

1. अगर मय्यत का एक लड़का बालिग़ और एक नाबालिग़ है तो तरके से हिस्सा दोनों को बराबर मिलेगा।

2. कोई औरत विधवा हो जाये तो पति के तरके से क़ानून के मुताबिक़ हिस्सा पायेगी चाहे उस ने दूसरे पति से निकाह कर लिया हो, दूसरा निकाह उसे तरके से महरूम नहीं करता।

नाफ़रमान औलाद और विरासत का हक़ः- बुरा और नाफ़रमान लड़का जिसे आमतौर पर लोग आक़ (जायदाद से महरूम) कर देते हैं, विरासत से महरूम नहीं किया जा सकता। उस को अपने मूरिस की मृत्यु के बाद शरई हिस्सा मिलेगा। हाँ अगर छोड़ी हुई जायदाद के बरबाद हो जाने का डर हो तो ऐसे वारिस के लिये हजर का क़ानून लागू कर के जायदाद और माल पर क़ब्ज़ा करने से आरिज़ी

तौर पर रोका जा सकता है, बिल्कुल महरूम नहीं किया जा सकता।

मय्यत के रिश्तेदार जो वारिस नहीं होते:- 1. सौतेले लड़के अपने सौतेले बाप के और बाप अपनी सौतेली औलाद के वारिस नहीं हो सकते। अगर एक औरत ने एक के बाद दूसरे दो पतियों से निकाह किया जैसे अफ़ज़ल से फिर ख़ालिद से, और दोनों की औलादें हैं तो अफ़ज़ल के लड़के ख़ालिद की जायदाद से कोई तरका नहीं पायेंगे और न अफ़ज़ल के लड़कों की जायदाद से ख़ालिद को कोई तरका मिलेगा।

2. इसी तरह एक मर्द की औलाद दो बीवियों से हो तो औलाद अपने बाप के तरके से तो हिस्सा पायेगी लेकिन एक बीवी के लड़के दूसरी बीवी के तरके से हिस्सा नहीं पायेंगे। इसी तरह दोनों माएँ अपनी सौतेली औलाद की मीरास से हिस्सा नहीं पायेंगी।

पति और पत्नी के रिश्तेदारों का तरका:- पति के बाप दादा, माँ और भाई बहन के और पत्नी के बाप दादा, माँ और भाई बहन के बीच अगर कोई ख़ूनी रिश्ता न हो तो न तो पत्नी अपने सास, सुसर, देवर और नन्द की मीरास से हिस्सा पा सकती है और न पति अपने सुसर, साले, सास और सालियों की मीरास से हिस्सा पा सकता है।

मीरास की बुनियाद ख़िदमत व एहसान नहीं है:- एक शख़्स अपने दोस्त की ख़िदमत करता रहा और उस की ज़रूरतें पूरी करता रहा तो इस ख़िदमत व एहसान के बदले वह अपने दोस्त की मीरास का हक़दार नहीं होगा, मीरास उस के क़ानूनी वारिसों को ही मिलेगी। इस्लामी समाज अपने व्यक्तियों के बीच कारोबारी संबंध को क़राबत के संबंध का दर्जा नहीं देता। हाँ बेग़र्ज़ ख़िदमत व एहसान का बदला अल्लाह तआला की ख़ुशनूदी क़रार देता है जो दुनिया और आख़िरत दोनों में हासिल होगी।

अगर किसी मूरिस के दो वारिस हों एक फ़रमाँबरदार (आज्ञाकारी) और दूसरा नाफ़रमान (अवज्ञाकारी) और सरकश हो तो भी तरके को

दोनो में क़ानून के मुताबिक़ ही बाँटा जायेगा, फ़रमाँबरदार होने का बदला और नाफ़रमान होने की सज़ा आख़िरत में मिलेगी।

मुतबन्ना (गोद लिया हुआ) का मीरास में हक़ नहीं है:- मीरास सिर्फ़ उन रिश्तेदारों के लिये है जो उस के मुस्तहिक़ (योग्य) हैं। अब अगर किसी ने कोई लड़का या कोई लड़की पाल ली तो उस के साथ चाहे जो व्यवहार अपनी ज़िन्दगी में कर सकता है लेकिन उस का हक़ उस के तरके पर नहीं है जो उस की मौत के बाद रह जाने वाला है जो उस तरके के हक़दार हैं उन को महरूम करना गुनाह है।

नाजाइज़ औलाद वारिस नहीं:- ज़िना से जो लड़का लड़की पैदा हों वे ज़ानी के तरके से हिस्सा नहीं पा सकते और न ज़ानिया का उस मर्द की मीरास में कोई हिस्सा है, हाँ ये लड़के लड़कियाँ अपनी माँ के तरके से हिस्सा पायेंगे।

वह मय्यत जिस का वारिस न हो:- अगर कोई शख़्स मरने के बाद तरका छोड़े लेकिन क़ानूनी विरासत का हक़ किसी को न पहुंचता हो तो अगर इस्लामी हुकूमत है तो वह माल उस के क़ब्ज़े में चला जायेगा और जहाँ इस्लामी हुकूमत न हो वहाँ मुसलमानों की जमाअत के अमानतदार, दीनदार लोग उसे या तो निर्धनों और मिसकीनों में बाँट दें या किसी नेक काम में लगा दें जिससे लोगों को फ़ायदा पहुंचता रहे, निर्धनों व मिसकीनों में वे लोग सब से पहले होंगे जो मय्यत के क़रीबी रिश्तेदार हों मगर तरके में शरई हक़ न होगा।

तरका बाँटने के मसाइल

ऊपर जो कुछ बयान हुआ वह तमहीद (भूमिका) थी यह समझने के लिये कि विरासत के हक़दार कौन लोग होते हैं और जिन को हक़ नहीं पहुंचता वे कौन लोग हैं। इसी में महरूम और महजूब का भी ज़िक्र आ गया है। अब तरके को बाँटने के तरीक़े और

वारिसों की संख्या के लिहाज़ से तरके में हिस्से लगाने के मसाइल और हिस्सों की मात्रा का विवरण बयान किया जाता है।

जैसा कि शुरू में बताया जा चुका है विरसा पाने वाले रिश्तेदार तीन तरह के होते हैं (1) ज़विल फुरूज़ (2) अस्बा (3) ज़विल अरहाम, हर एक के हिस्से का अलग अलग विवरण यह है।

ज़विलफ़ुरूज़:- ज़विलफ़ुरूज़ उन वारिसों को कहते हैं जिन के हिस्से की मात्रा कुरआन व हदीस में मुक़र्रर कर दी गई है। जब तक उन लोगों को तरके से हिस्सा न मिल जाये दूसरे क़िस्म के वारिस को कुछ नहीं मिलेगा। सूरह निसा के दूसरे रूकुअ में उन तमाम ज़विल फुरूज़ का ज़िक्र है, यह कुल 13 आदमी हैं (1) बाप (2) दादा (3) माँ (4) बेटी (5) पोती (6) पति (7) पत्नी (8) हक़ीक़ी बहन (9) अख़्याफ़ी भाई (10) अख़्याफ़ी बहन (11) अल्लाती बहन (12) जद्द-ए-सहीहा (दादी) (13) जद्द-ए-फ़ासिदा (नानी)। इन आयतों की शुरूआत *'यूसीकुमुल्लाहु'* से हुई है यानी अल्लाह तआला तुम को ये वसियत करता है। इन शब्दों से कही जाने वाली बातों की अहमियत को पहले से वाज़ेह फ़रमाया है और आख़िर में है *'तिलकाहुदूदुल्लाहि'* यह अल्लाह की सीमाएँ हैं *'वमय्यं* **असिल्लाहा व रसूलहू व यतअद्दा हुदूदह युदख़िलहू नारन ख़ालिदन फ़ीहा व लहू** *अज़ाबुम्मुहीन'* जो कोई अल्लाह और उस के रसूल के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी करेगा और उन सीमाओं से बाहर जायेगा उसे हमेशा के लिये आग में डाला जायेगा और ज़िल्लत का अज़ाब दिया जायेगा।

1 बाप की हैसियत और उस का हिस्सा:- बाप ज़विल फुरूज में है और उस की असल हैसियत यही है लेकिन कुछ वारिसों के न होने की वजह से वह असबा भी हो जाता है और उस का हिस्सा बढ़ जाता है। ज़विल फुरूज की हैसियत से उस का हिस्सा 1/6 से कभी कम नहीं होता मगर इस के साथ जब वह असबा भी होता है तो कभी 1/3 और कभी उस से ज़्यादा हो जाता है।

बाप को बेटे की मीरास से तरका मिलने की तीन सूरतें हो सकती हैं, नीचे उन की मिसालें दी जाती हैं-

(1) मरने वाले ने कोई लड़का छोड़ा तो बाप का हिस्सा 1/6 होगा, जैसे ख़ालिद ने मृत्यु पाई और उस की पत्नी, एक लड़का और बाप ज़विलफ़ुरूज़ में हैं तो बीवी को आठवाँ और बाप को छठा और बाक़ी लड़के का हिस्सा होगा। 8 और 6 का ज़ूअज़आफ़ अक़ल(सबसे छोटा वह अंक जो कई अंको पर पूरा तक़सीम हो सके) 24 होता है। इस लिये कुल जायदाद को 24 हिस्सों में बाँट कर 1/8 यानी तीन हिस्से पत्नी को और 1/6 यानी चार हिस्से बाप को और बाक़ी 17 हिस्से लड़के को मिलेंगे। यानी जब मय्यत की कोई पुरुष औलाद होगी तो बाप को 1/6 ही मिलेगा इस से ज़्यादा नहीं मिल सकता।

2. मरने वाले ने कोई लड़का नहीं छोड़ा लेकिन बेटी (या पोती) छोड़ी तो इस सूरत में भी ज़विलफ़ुरूज़ की हैसियत से बाप का हिस्सा तो 1/6 ही रहेगा लेकिन लड़की की मौजूदगी में वह ज़विल फ़ुरूज़ के साथ असबा भी हो गया इस लिये ज़विल फ़ुरूज़ को देने के बाद जो बाक़ी रह जायेगा वह भी बाप को मिलेगा, जैसे ऊपर दी हुई मिसाल में अगर लड़के की जगह लड़की होती तो तक़सीम इस तरह होती 24 हिस्सों में से 1/8 यानी तीन हिस्से बीवी को और 1/2 यानी 12 हिस्से लड़की को और 1/6 यानी चार हिस्से बाप को मिलने के बाद जो हिस्से बाक़ी बचे वह बाप को अस्बा होने की हैसियत से मिलेंगे, इस तरह बाप को 9 हिस्से मिलेंगे और अगर बेटी न होती तो वह 12 हिस्से भी बाप को मिल जाते।

3. मय्यत ने कोई औलाद नहीं छोड़ी तो इस सूरत में बाप का कोई ख़ास हिस्सा मुक़र्रर नहीं है। दूसरे ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बच जायेगा वह सब बाप को मिलेगा जैसे ख़ालिद ने तीन वारिस छोड़े माँ, बाप और पत्नी, तो माँ को 1/3 और बीवी को 1/4 दे कर जो कुछ बाक़ी रहेगा वह सब बाप को मिलेगा।

इस विवरण से ज़ाहिर है कि मय्यत का बाप कभी ज़विल फ़ुरूज़ रहता है जैसे पहली मिसाल में, कभी ज़विल फ़ुरूज़ भी रहता है और अस्बा भी जैसे दूसरी मिसाल में है और कभी सिर्फ़ असबा ही रहता है जैसे तीसरी मिसाल में है।

कुरआन में इन तीनों सूरतों का ज़िक्र है पूरी आयत 'माँ' के ज़िक्र के सिलसिले में नक़ल की जायेगी।

2. दादा की हैसियत और उस का हिस्सा:- ज़विलफ़ुरूज़ में दूसरा दादा है। कुरआन में आबा शब्द की तफ़सीर (व्याख्या) इस तरह फ़रमाई गई है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने बाप की ग़ैर मौजूदगी में दादा को विरासत में बाप का दर्जा दिया है जिस तरह बाप ज़विलफ़ुरूज़ में है उसी तरह दादा भी है और जिस तरह बाप कुछ वुरसा के न होने की सूरत में असबा भी हो जाता है उसी तरह दादा भी असबा हो जाता है गोया दादा की वही तीन हैसियतें हैं जो बाप की हैं मगर यह उसी वक़्त जब बाप ज़िन्दा न हो। बाप के होते हुये दादा के तरके में कोई हिस्सा नहीं होगा, एक फ़र्क़ यह भी है कि मरने वाले की माँ की मौजूदगी में बाप का हिस्सा कम नहीं होता मगर दादा का हिस्सा माँ की मौजूदगी में कम हो जाता है।

3. माँ की हैसियत और उस का हिस्सा:- ज़विलफ़ुरूज़ में तीसरी शख़्सियत माँ की है। बाप की तरह माँ भी कभी तरके से महरूम नहीं होती है और जिस तरह बाप का हिस्सा 1/6 से कम नहीं होता उसी तरह माँ का भी 1/6 से कम नहीं होता। हिस्से के एतेबार से उस की तीन हैसियतें हैं-

पहली यह कि (1) अगर मरने वाले का लड़का या लड़की (या पोता पोती) मौजूद हों तो माँ को तरके का 1/6 मिलेगा (2) अगर ये वारिस न हों मगर दो भाई या दो भाई बहन या सिर्फ़ दो बहनें हों (चाहे हक़ीक़ी या अख़्याफ़ी या अल्लाती) तो भी सिर्फ़ 1/6 मिलेगा।

दूसरी यह कि मरने वाला अगर मर्द है और उस ने माँ के साथ पत्नी और बाप दोनों छोड़े हैं तो पत्नी का हिस्सा निकाल कर जो बाक़ी रहेगा उस में माँ को तिहाई (1/3) मिलेगा और अगर मरने वाली औरत है तो उस के पति का हिस्सा निकाल कर बाक़ी में से 1/3 माँ को मिलेगा।

तीसरी यह कि ऊपर ज़िक्र किये हुए वारिसों में से अगर कोई भी न हो तो फिर मय्यत के कुल तरके का 1/3 उस की माँ पायेगी, यानी यह कि मय्यत की माँ को पूरे तरके का तिहाई हिस्सा उस वक़्त मिलेगा जब (1) मय्यत की कोई औलाद न हो (2) उसके दो या दो से ज़्यादा भाई बहन न हों (3) मय्यत की पत्नी या उस का पति और उस का बाप साथ साथ मौजूद न हों।

कुरआन में माँ बाप के हिस्से का ज़िक्र इन शब्दों में किया गया है-

وَلِأَبَوَيْهِ لِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ مِمَّا تَرَكَ إِنْ كَانَ
لَهُ وَلَدٌ فَإِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهُ وَلَدٌ وَّوَرِثَهُ أَبَوَاهُ فَلِأُمِّهِ الثُّلُثُ.

(نساء:١١)

'वलिअबवैहि लिकुल्लि वाहिदिम मिनहुमस सुदुसु मिम्मा तरका इन काना लहू वलदुन फ़इल्लम यकुल्लहू वलदुवं व वरिसहू अबवाहु फ़लिउम्मिहिस्सुलुसु।' (सूरः निसा 11)

अनुवादः- अगर मय्यत की औलाद मौजूद है तो माँ बाप के लिये तरके में छटा हिस्सा है और अगर कोई औलाद न हो (यानी सिर्फ़ माँ बाप ही वारिस हों) तो माँ का हिस्सा एक तिहाई है।

इस से ख़ुदबख़ुद यह बात निकलती है कि बाक़ी जो दो तिहाई रह गया वह बाप को मिलेगा।

4. **बेटी की हैसियत और उसका हिस्साः-** ज़विल फ़ुरूज़ में चौथा नम्बर बेटी का है। जिस तरह माँ बाप तरके से महरूम नहीं होते उसी

तरह बेटी भी कभी महरूम नहीं होती। हाँ अगर उस का भाई (यानी मय्यत का बेटा) मौजूद हो तो वह असबा बन जाती है, इस के हिस्से पाने की तीन सूरतें हैं और तीनों सूरतों में उस का हिस्सा कम व ज़्यादा हो जाता है-

(1) अगर मय्यत ने सिर्फ़ एक लड़की छोड़ी हो और लड़का न हो तो लड़की को तरके का आधा (1/2) मिलेगा, अगर उस के अलावा दूसरे वारिस हों तो बाक़ी 1/2 उन में बाँटा जायेगा, और अगर कोई दूसरा वारिस न हो तो फिर वह आधा भी लड़की ही को मिलेगा।

(2) अगर वारिसों में दो या दो से ज़्यादा लड़कियाँ हैं और लड़का नहीं है तो फिर उन लड़कियों को कुल तरके का दो तिहाई (2/3) मिलेगा और यही तमाम लड़कियाँ बराबर बाँट लेंगी। अब अगर कोई और वारिस मौजूद न हो तो बाक़ी 1/3 भी इन लड़कियों को मिल जायेगा।

(3) अगर वारिस लड़का और लड़की दो हैं तो भाई बहन दोनों असबा हो जायेंगे, कोई हिस्सा मुक़र्रर नहीं रहेगा बल्कि दूसरे ज़विल फ़ुरूज़ को दे कर जो बाक़ी बचेगा वह उन दोनों में इस तरह बाँटा जायेगा कि कुल बाक़ी माल के तीन हिस्से किये जायेंगे दो हिस्से लड़के को और एक हिस्सा लड़की को मिलेगा। कुरआन में बेटी का हिस्सा इन शब्दों में ज़िक्र है-

يُوصِيكُمُ اللّٰهُ فِىٓ اَوْلَادِكُمْ لِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ
الْاُنْثَيَيْنِ ج فَاِنْ كُنَّ نِسَآءً فَوْقَ اثْنَتَيْنِ فَلَهُنَّ ثُلُثَا
مَا تَرَكَ وَاِنْ كَانَتْ وَاحِدَةً فَلَهَا النِّصْفُ ط

(نساء :۱۱)

'यूसीकुमुल्लाहु फ़ी औलादिकुम लिज़्ज़करि मिस्लु हज़्ज़िल उनसयैनि, फ़इन कुन्ना निसाअन फ़ौक़स्नतैनि फ़लहुन्ना सुलुसा मा तरका वइन कानत वाहिदतन फ़लहान्निस्फ़ु।'(सूरः निसा 11)

अनुवादः- अल्लाह तआला तुम्हारी औलाद के बारे में लड़के को दो लड़कियों के हिस्से के बराबर देने का हुक्म देता है, अगर सब लड़कियाँ हों और दो से ज़्यादा हों तो उन सब के लिये तरके का दो तिहाई हिस्सा है (जो सब में बराबर बाँटा जायेगा) और अगर सिर्फ़ एक लड़की ही हो तो उस के लिये आधा है।

यहाँ लड़की का तरके में हक़ बयान किया गया है। लड़के के बारे में शुरू में बता दिया कि उस को लड़की के हिस्से का दोहरा मिलेगा, तो इस से खुद लड़के का हुक्म भी मालूम हो गया (इस का बयान आगे आता है) बाप से विरसा पाने वाले लड़के और लड़कियाँ आपस में हक़ीक़ी या अल्लाती भाई बहन होंगे। इसी तरह माँ से विरसा पाने वाले लड़के और लड़कियाँ आपस में हक़ीक़ी या अख़्याफ़ी भाई बहन होंगे, ऊपर का हुक्म सब तरह के लड़के और लड़कियों का है जो मय्यत का विरसा पाने वाले हो सकते हैं।

5. पोती और परपोती का तरके में हिस्साः- ज़विल फ़ुरूज़ में पाँचवीं हक़दार पोती है। अगर मय्यत की लड़कियाँ और लड़के ज़िन्दा न हों और एक या कई पोतियाँ हों तो वह अपने दादा की मीरास पायेंगी, पोती से मुराद सिर्फ़ बेटे की लड़की ही नहीं बल्कि पोते की लड़की और पोती भी मुराद है। इन के मीरास पाने की कई सूरतें हैं और हर सूरत के लिहाज़ से हिस्सा कम और ज़्यादा हो जाता है-

(1) अगर मय्यत की लड़की या लड़का ज़िन्दा न हो सिर्फ़ एक पोती हो तो बेटी की तरह उस को तरके का आधा (1/2) मिलेगा और फिर अगर कोई दूसरा विारिस न हो तो बाक़ी आधा (1/2) भी उसी को मिल जायेगा।

(2) अगर सिर्फ़ दो पोतियाँ हों तो जिस तरह दो बेटियाँ दो तिहाई (2/3) की वारिस होती हैं उसी तरह ये दोनों भी वारिस होंगी और यह विरसा दोनों में बराबर बाँट दिया जायेगा।

(3) अगर मय्यत की एक पोती और एक पोता मौजूद हो (बेटी या बेटा ज़िन्दा न हो) तो जो हुक्म बेटी के लिये तीसरी सूरत में बयान किया जा चुका है वही लागू होगा। यानी ज़विल फ़ुरूज़ को देने के बाद जो बचेगा पोती और पोते पर बाँटा जायेगा मगर पोती को पोते से आधा हिस्सा मिलेगा, इस तीसरी सूरत में परपोती पोती की मौजूदगी में महजूब हो जायेगी, जिस तरह बेटे की मौजूदगी में पोतियाँ महजूब हो जाती हैं।

(4) अगर मय्यत के सिर्फ़ एक बेटी और पोतियाँ हों बेटा या पोता ज़िन्दा न हों तो पोतियों को सिर्फ़ 1/6 हिस्सा मिलेगा चाहे एक हों या कई हों लेकिन अगर दो या दो से ज़्यादा बेटियाँ हों तो फिर पोतियाँ कुछ न पायेंगी।

इस्तिदराक (समझना):- पोतियों को मीरास से जो हिस्सा मिलने का बयान किया गया है यह ज़रूरी नहीं कि वह एक ही बेटे की औलाद हों अगर मय्यत के कई बेटों की औलाद होंगी जब भी सब को बराबर हिस्सा मिलेगा। यह नहीं हो सकता कि अगर एक बेटे की एक लड़की और दूसरे बेटे की दो लड़कियों हों तो एक लड़की को एक तिहाई और दो लड़कियाँ को एक तिहाई में से आधा आधा दिया जाये बल्कि तीनों को बराबर हिस्सा मिलेगा।

विरासत का हक़ बाप का दादा की तरफ़ चला जाता है अगर बाप मौजूद न हो इसी तरह पोती बेटी की जगह ले लेती है।

6. पति की हैसियत और उस का हिस्सा:- ज़विलफ़ुरूज़ में छठा वारिस पति है। पत्नी की मृत्यु हो जाये और तरका छोड़ा हो तो उस

में पति को भी हिस्सा मिलेगा। माँ, बाप, बेटा, बेटी की तरह यह भी कभी महरूम नहीं होता। मीरास पाने के संबंध में इस की दो हालतें हो सकती हैं या तो मरने वाली पत्नी औलाद वाली होगी या बेऔलाद।

(1) अगर ज़ाहिदा ने मरने के बाद पति माँ और बाप छोड़े तो उस के तरके के छः हिस्से कर के तीन हिस्से यानी आधा पति को और बाक़ी आधा माँ बाप को इस तरह मिलेगा कि 1/3 माँ को 2/3 बाप को।

(2) अगर ज़ाहिदा के कोई लड़का लड़की भी है तो उस के पति को आधे के बजाये चौथाई हिस्सा तरके से मिलेगा (चाहे यह लड़का पहले पति का हो या उसी पति का) कुरआन में पति के हिस्से का ज़िक्र इन शब्दों में है-

وَلَكُمْ نِصْفُ مَا تَرَكَ أَزْوَاجُكُمْ إِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهُنَّ وَلَدٌ فَإِنْ كَانَ

لَهُنَّ وَلَدٌ فَلَكُمُ الرُّبُعُ. (نساء:١٢)

'वलकुम निसफु मा तरका अज़वाजुकुम इल्लम यकुल्लहुन्ना वलदुन फ़इन काना लहुन्ना वलदुन फ़लकुमुर्रुब्उ।' (सूरह निसा, 12)

अनुवादः- तुम्हारे लिये पत्नी के छूटे हुए माल में आधे का हक़ है अगर उन के कोई औलाद न हो, तो अगर उन की औलाद मौजूद हो तब तुम्हें चौथाई हिस्सा मिलेगा।

7. पत्नी की हैसियत और उस का हिस्साः- ज़विलफ़ुरूज़ में सातवीं वारिस पत्नी है। जिस तरह पति अपनी पत्नी के तरके से महरूम नहीं होता उसी तरह पत्नी भी अपने पति के तरके से महरूम नहीं हो सकती, तरका पाने के लिहाज़ से भी पत्नी की दो हैसियतें हैं-

(1) अगर पति ने मरने के बाद अपना बेटा, बेटी या पोता पोती नहीं

छोड़े हैं तो पत्नी को उस के कुल तरके का चौथाई मिलेगा।

(2) अगर पति ने इन औलाद में से कोई छोड़ा है (चाहे पहली पत्नी के पेट से हो) तो पत्नी को चौथाई के बजाये आठवाँ हिस्सा मिलेगा। कुरआन में इन दोनों सूरतों का ज़िक्र इन शब्दों में किया गया है–

وَلَهُنَّ الرُّبُعُ مِمَّا تَرَكْتُمْ إِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّكُمْ وَلَدٌ فَإِنْ كَانَ لَكُمْ وَلَدٌ فَلَهُنَّ الثُّمُنُ. (نساء : ١٢)

"वलहुन्नर्रुब्उ मिम्मा तरकतुम इल्लम यकुल्लकुम वलदुन, फ़इन काना लकुम वलदुन फ़लहुन्नस्सुमुनु।"

(सूरः निसा 12)

अनुवादः- पत्नियों के लिये तुम्हारे तरके से चौथाई हिस्सा है जब तुम्हारी कोई औलाद मौजूद न हो, अगर कोई औलाद हो तो फिर उनका हिस्सा आठवाँ है।

तलाक़ दी हुई पत्नी भी मीरास पायेगी अगर पति की मृत्यु इद्दत के दिन गुज़रने से पहले हुई, अगर बाद में हुई तो फिर मीरास का हक़ नहीं रहेगा, लेकिन जिस औरत ने तलाक़ ली हो या खुलअ़ व अलैहिदगी कराई हो तो फिर वह मीरास की बिल्कुल हक़दार न होगी।

8. अख़यातफ़ी भाईः- माँजाया भाई जिस का बाप दूसरा हो, ज़विल फ़ुरूज़ में आठवाँ वारिस है। ऐसे भाई कभी हिस्सा पाते हैं और कभी महरूम भी हो जाते हैं। इस का विवरण यह है–

मय्यत के उसूल व फ़ुरूअ (बुनियादी जड़े) में से कोई भी मौजूद होगा तो अख़यातफ़ी भाई तरके से महरूम रहेंगे, उसूल में बाप

दादा, परदादा और फ़ुरूअ में बेटा बेटी पोता परपोता हैं लेकिन अगर इन में से कोई न हो तो यह महरूम नहीं होंगे।

1. अब अगर सिर्फ़ एक अख़्याफ़ी भाई हो तो उस को सिर्फ़ छठा हिस्सा यानी तरके का 1/6 मिलेगा।

2. अगर दो या दो से ज़्यादा हों तो तरके का एक तिहाई (1/3) मिलेगा जो आपस में बराबर बट जायेगा। क़ुरआन में ये दोनों सूरतें बयान की गई हैं जो आगे लिखी जा रही हैं।

9. अख़्याफ़ी बहनः- ज़विल फ़ुरूज़ में नवीं वारिस माँजाई बहन है जिस तरह अख़्याफ़ी भाई के हिस्सा पाने या न पाने की सूरतें बयान की गई हैं वही सूरतें अख़्याफ़ी बहन के हिस्सा पाने या न पाने की हैं। क़ुरआनी आयत में भाई के साथ ही बहन का ज़िक्र है, फ़रमाया गया है-

وَاِنْ كَانَ رَجُلٌ يُّوْرَثُ كَلٰلَةً اَوِامْرَاَةٌ وَّلَهٗ اَخٌ اَوْ اُخْتٌ فَلِكُلِّ وَاحِدٍ مِّنْهُمَا السُّدُسُ ۚ

(نساء:١٢)

"वइन काना रजुलुय्यूरसु कलालतन अविमरअतवं वलहू अख़ुन उख़्तुन फ़लिकुल्लि वाहिदिम मिनहुमस सुदुसु।"

(सूरः निसा 12)

अनुवादः- अगर कोई मय्यत (चाहे मर्द हो या औरत) ऐसी है जिस के उसूल व फ़ुरूअ (बुनियादी जड़े) कोई ज़िन्दा नहीं है और उस के एक अख़्याफ़ी भाई या बहन है तो दोनो में से हर एक को उसके तरके से छठा हिस्सा मिलेगा।

यह तो एक भाई या बहन के लिये हुक्म है। लेकिन अगर दो

या दो से ज़्यादा भाई या बहन हों तो-

فَإِنْ كَانُوا أَكْثَرَ مِنْ ذٰلِكَ فَهُمْ شُرَكَاءُ فِي الثُّلُثِ. (نساء:١٢)

"फ़इन कानू अकसरा मिन ज़ालिका फ़हुम शुरकाउ फ़िस्सुलुसि।"

(सूरह निसा. 12)

अनुवादः- अगर यह एक से ज़्यादा हों तो फिर एक तिहाई (1/3) में सब बराबर के शरीक रहेंगे।

यानी तरके का एक तिहाई हिस्सा मिलेगा जिस को यह सब आपस में बराबर बराबर बाँट लेंगे। यहाँ वह क़ायदा जो पहले ज़िक्र किया गया और आगे भी मिलेगा कि भाई को बहन से दोगुना हिस्सा दिया जायेगा लागू नहीं किया गया है। यह सिर्फ़ अख़याफ़ी भाई बहनों की खुसूसियत है कि दोनों का हिस्सा बराबर होगा।

10. हक़ीक़ी बहनें:- ज़विलफ़ुरूज़ में दसवीं वारिस हक़ीक़ी बहनें हैं। इनका हिस्सा तरके में कुछ हालतों में होता है और कुछ हालतों में नहीं होता और फिर हिस्से की मात्रा भी हालात के एतबार से बदल जाती है। इस मुआमले में इनका हाल अख़याफ़ी भाई बहनों की तरह है, जिस तरह मय्यत के बाप दादा या बेटे और पोते की मौजूदगी में वह महजूब हो जाते हैं, उसी तरह हक़ीक़ी बहनें भी तरका नहीं पातीं। मगर जब ऊपर ज़िक्र किये गये वारिसों में से कोई मौजूद न हो तो हक़ीक़ी बहनों को तरके में से हिस्सा पाने की चार सूरतें हैं-

1. मय्यत की अगर सिर्फ़ एक हक़ीक़ी बहन मौजूद हो तो उस को कुल तरके का आधा यानी 1/2 मिलेगा।
2. दो हक़ीक़ी बहनें या ज़्यादा हों तो तरके का दो तिहाई यानी 2/3 सब में बराबर बाँट दिया जायेगा।

3. अगर मय्यत की बेटी, पोती या परपोती में से कोई मौजूद हो तो फिर हक़ीक़ी बहन असबा हो जायेगी यानी तमाम ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह हक़ीक़ी बहन को मिलेगा जैसे अगर किसी ने अपने मरने के बाद पत्नी, बेटी और हक़ीक़ी बहन छोड़ी तो तरका आठ हिस्सों में बट जायेगा, आधा (चार हिस्से) बेटी को और 1/8 (यानी एक हिस्सा) पत्नी को मिलेगा और बाक़ी (यानी तीन हिस्से) हक़ीक़ी बहन को मिलेंगे।

4. अगर मय्यत की बहन के साथ एक या दो भाई भी हों तो बहन भाई के साथ असबा हो जायेगी यानी ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी रहेगा वह उन भाई और बहन के बीच इस तरह बाँटा जायेगा कि भाई को बहन से दोगुना मिले, जैसे सलमा ने अपने पीछे पति, माँ और एक बेटी छोड़ी, उस की एक बहन और एक भाई भी हैं तो उस के तरके को 36 हिस्सों में बाँट कर पति को 1/4 (यानी 9 हिस्से) माँ को 1/6 (यानी 6 हिस्से) लड़की को आधा (यानी 18 हिस्से), दिये जायेंगे। तीन हिस्से बाक़ी बचेंगे वह बहन और भाई को इस तरह दिये जायेंगे कि भाई को दो हिस्से और बहन को एक हिस्सा मिले। अगर हक़ीक़ी भाई ज़िन्दा न हों और अल्लाती भाई ज़िन्दा हों तो हक़ीक़ी बहन की मौजूदगी में उन्हें कुछ नहीं मिलेगा और तीनों हिस्से बहन को मिल जायेंगे, कुरआन करीम में ये चारों सूरतें बयान फ़रमा दी गई हैं-

اِنِ امْرُؤٌا هَلَكَ لَيْسَ لَهٗ وَلَدٌ وَّلَهٗٓ اُخْتٌ فَلَهَا نِصْفُ مَا تَرَكَ ۚ وَهُوَ يَرِثُهَآ اِنْ لَّمْ يَكُنْ لَّهَا وَلَدٌ ۚ فَاِنْ كَانَتَا اثْنَتَيْنِ فَلَهُمَا الثُّلُثٰنِ مِمَّا تَرَكَ ؕ وَاِنْ كَانُوْٓا اِخْوَةً رِّجَالًا وَّنِسَآءً فَلِلذَّكَرِ مِثْلُ حَظِّ الْاُنْثَيَيْنِ

(نساء:۱۷۶)

'इनिमरूउन हलका लैसा लहू वलदुवं वलहू उख़तुन फ़लहा निस्फ़ु मा तरका, वहुवा यरिसुहा इल्लम यकुल्लहा वलदुन, फ़इन कानतसनतैनि फ़लहुमस्सुलुसानि मिम्मा तरका, व इन कानू इख़वतर्रिजालन्व

वनिसाअन फ़लिज़्ज़करि मिस्लु हज़्ज़िल उनसयैनि। (सूरः निसा ।77)

अनुवादः- अगर एक मर्द जिसके कोई औलाद नहीं मर जाये और उस की एक बहन हो तो तरके का आधा उसे मिलेगा और भाई उस बहन का वारिस है अगर उस का बेटा न हो, फिर अगर बहनें दो हों तो उन दोनों को तरके का दो तिहाई मिलेगा और अगर कई भाई बहनें हैं तो मर्द का हिस्सा दो औरतों के बराबर होगा।

11. अल्लाती बहनें:- ग्यारहवीं ज़विलफ़ुरूज़ हक़ीक़ी बहन के मौजूद न होने की सूरत में अल्लाती बहनें हैं जो हक़ीक़ी बहन के बराबर होंगी और उन का हिस्सा तरके में भी वही होगा जो हक़ीक़ी बहन का होता है हाँ जिस तरह हक़ीक़ी बहन हक़ीक़ी भाई के साथ असबा हो जाती है अल्लाती बहन असबा नहीं होगी बल्कि महरूम हो जायेगी, और हक़ीक़ी बहन के साथ महरूम नहीं होगी मगर हिस्सा कम हो जायेगा।

1. यह बात तो पहले बताई जा चुकी है कि मरने वाले के उसूल व फ़रूअ में जब कोई न हो तभी भाई बहनों को तरके का हिस्सा पहुंचता है वर्ना नहीं पहुंचता, हाँ बेटी पोती या परपोती की मौजूदगी में ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह बहनों को मिलेगा।
2. अगर बेटी पोती वग़ैरा में से कोई मौजूद न हो लेकिन हक़ीक़ी बहनें ज़िन्दा हों तो अल्लाती बहन को छठा हिस्सा मिलेगा। एक से ज़्यादा अल्लाती बहनें अगर होंगी तो यही हिस्सा सब पर बराबर बंट जायेगा।
3. अगर हक़ीक़ी बहन कोई न हो और सिर्फ़ एक अल्लाती बहन हो तो हक़ीक़ी बहन की तरह उस को तर्के का आधा मिलेगा।
4. अगर अल्लाती बहन एक से ज़्यादा हों (और मय्यत की बेटी

पोती और हक़ीक़ी बहन में से कोई न हो) तो इस सूरत में तरके का दो तिहाई (2/3) उन को मिलेगा जिसे आपस में बराबर बाँट लिया जायेगा।

लेकिन अगर अल्लाती बहनों के साथ अल्लाती भाई भी हों तो अल्लाती बहनें भाई के साथ असबा हो जायेंगी और ज़विलफ़ुरूज़ को उन का शरई हिस्सा दे चुकने के बाद जो कुछ बचेगा वह अल्लाती भाई बहनों में बंट जायेगा। भाई का हिस्सा बहन से दोगुना होगा, ऊपर ज़िक्र की गई सूरतों में कुछ न कुछ हिस्सा तरके से अल्लाती बहन को मिल जाता है लेकिन जिन सूरतों में वे महरूम रहती हैं ये हैं-

1. अगर मय्यत का एक हक़ीक़ी भाई या कई हक़ीक़ी भाई बहन मौजूद हों तो अल्लाती बहन तरके से महरूह रहेगी।

2. मय्यत की बेटी मौजूद न हो और न हक़ीक़ी या अल्लाती भाई हों मगर दो या दो से ज़्यादा हक़ीक़ी बहनें मौजूद हों तो अल्लाती बहन तरके से महरूम रहेगी, हाँ अगर कोई अल्लाती भाई ज़िन्दा होता तो वह असबा हो कर हिस्सा पातीं। ऊपर ज़िक्र किया गया है कि एक हक़ीक़ी बहन की मौजूदगी में अल्लाती बहन को 1/6 मिलेगा मगर यह उसी वक़्त होगा जब मय्यत के कोई लड़की या पोती वग़ैरा न हो, अगर हक़ीक़ी बहन के साथ बेटी या पोती भी होगी तो अल्लाती बहन बिल्कुल महरूम हो जायेगी क्योंकि इस सूरत में हक़ीक़ी बहन असबा हो कर पूरे हिस्से की हक़दार हो जाती है, हक़ीक़ी बहन के सिलसिले में जो कुरआन की आयत नक़ल की गई है उस में अल्लाती बहन का हुक्म मौजूद है।

12. दादी और नानी का तरके में हिस्सा:- ज़विलफ़ुरूज़ में बारहवाँ नाम दादी और नानी का है। दादी और नानी के सिलसिले में

दोनों के मसाइल क़रीब क़रीब एक जैसे हैं, मगर इन मसाइल को समझने से पहले कुछ चीज़ों को समझ लेना चाहिये। पहली बात यह कि दादी सिर्फ़ बाप की माँ ही नहीं बल्कि दादा की माँ और दादी की माँ भी है। इसी तरह नानी सिर्फ़ माँ की माँ नहीं बल्कि नानी की माँ और उस की माँ को भी नानी कहते हैं और इन सब दादियों और नानियों को मय्यत की तरफ़ से तरका पहुंच सकता है। दूसरी बात यह है कि इन दादियों नानियों में जो क़रीबी हैं उन्हें जद्द-ए-सहीहा और जो दूर की हैं उन्हें जद्द-ए-फ़ासिदा कहा जायेगा और उन की गिनती ज़विलफ़ुरूज़ में नहीं बल्कि ज़विलअरहाम में होगी। उन के हिस्सों का बयान भी वहाँ आयेगा, नानियों में वह नानी दूर की कही जायेगी जिस के रिश्ते में कोई मर्द बीच में आये जैसे माँ के बाप की माँ दूर की नानी है, माँ की माँ और नानी की माँ के विपरीत। ये सब क़रीब की नानी हैं क्योंकि बीच में मर्द का रिश्ता नहीं है।

जद्द-ए-सहीहा का हुक्मः- 1. जद्द-ए-सहीहा यानी क़रीब की दादी और नानी की मौजूदगी में जद्द-ए-फ़ासिदा यानी दूर की दादियों नानियों को हिस्सा नहीं मिलेगा वे महरूम रहेंगी।

2. अगर मय्यत के माँ बाप में से कोई ज़िन्दा हो तो फिर बाप की मौजूदगी में दादियाँ और माँ की मौजूदगी में नानियाँ हिस्सा नहीं पायेंगी।

3. अगर मय्यत का दादा ज़िन्दा हो तो दूसरी तमाम दादियाँ महरूम रहेंगी, हाँ अगर बाप की माँ ज़िन्दा है तो वह हिस्सा पायेगी।

4. ऊपर ज़िक्र किये गये वारिसों की ग़ैर मौजूदगी में दादी और नानी को तरके का 1/6 हिस्सा मिलेगा, अगर क़रीब की दादी और क़रीब की नानी दोनों मौजूद हों तो ये 1/6 में शरीक होंगी और सब को बराबर मिलेगा।

5. अगर क़रीब की नानी और दूर की दादी मौजूद हों या क़रीब

की दादी और दूर की नानी मौजूद हों तो दोनों हालतों में दूर की दादी और नानी महरूम हो जायेंगी।

6. दादी महजूब होगी अगर बाप या दादा मौजूद हों लेकिन नानी उन की वजह से महरूम नहीं होगी। नानी सिर्फ़ मय्यत की माँ यानी अपनी बेटी की वजह से महरूम हो जायेगी।

असबात का बयान:- मीरास को बाँटने में ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह असबात को मिलेगा, असबात दो तरह के होते हैं-

1. **असबा बिनफ़्सिही-** वे वुरसा हैं जो या तो खुद मर्द हों या किसी दूसरे मर्द की वजह से मय्यत से रिश्ता रखते हों जैसे बेटा, बाप, दादा, पोता, चचा, भतीजा।

2. **असबा बिलग़ैर-** वे वुरसा हैं जो या तो खुद औरत हों या किसी औरत के वास्ते से मय्यत से रिश्ता रखते हों, जैसे बेटी बेटे के साथ और बहन बेटी के साथ असबा बिलग़ैर हैं।

तरका बाँटने में असबात की दर्जाबन्दी:- तरके में हिस्सा पाने के लिहाज़ से असबात के चार दर्जे हैं जिन के एतबार से एक के बाद दूसरा उन को हिस्सा मिलता है यानी अगर पहले दर्जे के असबात मौजूद होंगे तो दूसरे दर्जे वालों को असबा होने की हैसियत से कोई हिस्सा नहीं मिलेगा। इसी तरह जब दूसरे दर्जे के असबात को (पहले दर्जे के असबात के न होने की सूरत में) हिस्सा मिलेगा तो तीसरे और चौथे दर्जे के असबात महरूम रहेंगे। महरूमी का मतलब यह है कि असबा होने की हैसियत से तरके में हिस्सा नहीं होगा। लेकिन अगर उनमें कोई ज़विलफ़ुरूज़ भी है तो इस हैसियत से हिस्सा मिलेगा जैसे, बेटे की मौजूदगी में बाप को ज़विलफ़ुरूज़ में होने की वजह से 1/6 मिलता है अब अगर बेटा मौजूद नहीं है तो बाप ज़विलफ़ुरूज़ होने की हैसियत से हिस्सा तो पायेगा लेकिन असबा

होने की हैसियत से भी उस को वह हिस्सा मिल जायेगा जो ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद बाक़ी रह जाये।

पहले दर्जे के असबातः- पहले दर्जे में मय्यत के फ़ुरूअ (यानी जो उस की नस्ल से हों) आते हैं जिन में सब से पहले लड़का है फिर पोता फिर उस के नीचे के लोग, इन की मौजूदगी में दूसरे दर्जे के वारिसों को असबा की हैसियत से कुछ न मिलेगा लेकिन ज़विलफ़ुरूज़ की हैसियत से जो हिस्सा होता है वह मिलेगा।

दूसरे दर्जे के असबातः- दूसरे दर्जे में मय्यत के उसूल (यानी जिन की नस्ल से वह ख़ुद हो) आते हैं जिन में सब से पहले बाप है फिर दादा फिर परदादा वग़ैरा। इनकी मौजूदगी में तीसरे दर्जे के असबात को कुछ न मिलेगा।

तीसरे दर्जे के असबातः- तीसरे दर्जे के असबात में वे वारिस हैं जो मय्यत के अलावा उस के बाप की नस्ल से हों जैसे मय्यत के भाई और भतीजे और भाई के पोते वग़ैरा।

चौथे दर्जे के असबातः- चौथे दर्जे के असबात में वे लोग हैं जो मय्यत के बाप के अलावा उस के दादा की नस्ल से हों जैसे मय्यत के चचा, चचाज़ाद भाई, और चचा के पोते वग़ैरा।

असबात में तरके को बाँटने के उसूलः- 1. पहले दर्जे के असबात के होते हुए दूसरे दर्जे के असबात को और दूसरे दर्जे के असबात के होते हुए तीसरे और इसी तरह चौथे दर्जे के असबात को हिस्सा नहीं मिलता।

2. हर दर्जे के वारिसों में मय्यत के ज़्यादा क़रीबी होने वाले को अफ़ज़लियत (महानता) हासिल होगी, जैसे पहले दर्जे के असबात में बेटा और पोता दोनों मौजूद हों तो पोते को कुछ नहीं मिलेगा क्योंकि बेटा मय्यत से ज़्यादा क़रीबी है, यह नियम कि क़रीब की मौजूदगी में दूर वाले को नहीं मिलेगा सब जगह लागू होगा क्योंकि बग़ैर इस

के विरासत को बाँटने में कोई क़ानून क़ायम ही नहीं रह सकता। इसी उसूल की वजह से यतीम पोती को भी महरूम होना पड़ता है और इस की पूर्ति के लिये शरीअत ने दूसरी सूरतें पैदा की हैं जैसा कि पहले ज़िक्र किया जा चुका है, हाँ अगर पहले दर्जे के असबात में कई वारिस एक ही दर्जे के हों जैसे पोते ही पोते हों तो फिर सब को बराबर का हिस्सा मिलेगा, क्योंकि हक़ के एतबार से सब लड़के एक ही दर्जे के हैं। यही हाल दूसरे दर्जे के असबात का है जैसे बाप की मौजूदगी में दादा को और दादा की मौजूदगी में परदादा को हिस्सा नहीं मिलेगा क्योंकि बाप दादा के मुक़ाबले में मय्यत से ज़्यादा क़रीब है और दादा परदादा के मुक़ाबले में।

पहले दर्जे के असबात को तरका मिलने की सूरतें:- चूँकि पहले दर्जे के असबात कई तरीक़े से हिस्सा पाते हैं इस लिये उन में से हर एक के हिस्सा पाने की कैफ़ियत विस्तार के साथ बयान की जाती है-

बेटे का हिस्सा:- असबात में सब से पहले मय्यत के बेटे हैं जिन के होते हुए कोई असबा वारिस हिस्सा नहीं पा सकता, मय्यत की बेटियों के अलावा जो असबा बिलग़ैर हो कर हिस्सा पाती हैं। बेटों का कोई हिस्सा मुक़र्रर नहीं है, इसी लिये उन की गिनती ज़विलफ़ुरूज़ में नहीं होती लेकिन ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह बेटों और उन के साथ बेटियों को मिल जायेगा। इसी लिये उन का हिस्सा कभी कम और कभी ज़्यादा हो जाता है। अगर ज़विलफ़ुरूज़ वारिसों में कोई न हो और सिर्फ़ एक लड़का और एक लड़की हो तो लड़के का दो तिहाई 2/3 लड़के को और एक तिहाई लड़की को मिल जायेगा, अगर लड़की भी न हो तो कुल लड़के को मिल जायेगा। जितने ज़विलफ़ुरूज़ ज़्यादा होंगे लड़के का हिस्सा उतना ही कम होता जायेगा मगर कभी ऐसा मौक़ा नहीं आ सकता कि वह बिल्कुल महरूम हो जाये बल्कि उसकी मौजूदगी में ज़विलफ़ुरूज़ का

हिस्सा कम हो जाता है इस लिये उस को ज़रूर हिस्सा मिलता है।

2. अगर मय्यत के कई बेटे हों तो वे सब बराबर के हिस्सेदार होंगे।

3. अगर बेटों के साथ बेटियाँ भी हों तो वे असबा बिलग़ैर हो कर अपने भाईयों का आधा पायेंगी, मिसाल के तौर पर एक शख़्स की मृत्यु हो गई और उस के दो लड़के और तीन लड़कियाँ हैं तो तरके को सात हिस्सों में बाँटा जायेगा (क्योंकि लड़के का हिस्सा लड़की से दोगुना होता है) इस लिये दो लड़कों को चार लड़कियों के बराबर समझा जायेगा। उन सात हिस्सों को इस तरह बाँटा जायेगा-

लड़का	लड़का	लड़की	लड़की	लड़की	कुल
दो हिस्से	दो	एक	एक	एक	7 हिस्से

जैसा कि ऊपर नम्बर 2 में कहा गया है कि कई बेटे हों तो बाप का तरका उन पर बराबर बाँट दिया जायेगा। इस सिलसिले में यह बात याद कर लेना चाहिये कि अगर बाप की दो बीवियाँ रही हों, एक से एक लड़का और दूसरी से दो लड़के हों तो ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह तीन बराबर के हिस्सों में बट कर तीनों लड़कों को दिया जायेगा। इसी तरह अगर माँ एक के बाद दूसरे दो पतियों के निकाह में रही और दोनों से उस की औलाद है तो माँ का तरका दोनों पतियों की औलाद को बराबर बराबर हिस्सों में दिया जायेगा, चाहे एक पति से एक ही लड़का हो और दूसरे पति से कई हों, यह नहीं होगा कि आधा एक पति की औलाद को और आधा दूसरे पति की औलाद को दिया जायेगा।

पोते का हिस्सा:- बेटे के बाद असबात में दूसरा दर्जा पोते का है यानी अगर मय्यत के कोई बेटा ज़िन्दा न हो मगर पोते मौजूद हों तो वह बाप के बराबर होंगे यानी ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी बचेगा वह सब पोते का होगा और अगर कोई ज़विलफ़ुरूज़ वारिसों में से न हो तो कुल तरका पोते को मिल जायेगा, और अगर

कई पोते होंगे तो वह सब बराबर बट जायेगा चाहे वह सब एक बेटे से हों या दो तीन बेटों से।

2. अगर इन पोतों के साथ पोतियाँ भी हों तो पोतों के साथ असबा बिलग़ैर बन कर वह भी हिस्सा पायेंगी जिस तरह बेटे के साथ बेटी हिस्सा पाती है।

पहले ज़िक्र किया जा चुका है कि पोते बेटों के सामने महरूम हो जाते हैं वह इस सूरत में जब उन के चचा ज़िन्दा हों लेकिन अगर उन के बाप ने कोई जायदाद छोड़ी है तो ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो बचेगा उस में फिर चचा का हिस्सा नहीं होगा, उस के वही मालिक होंगे। दादा का तरका बाप या चचा की मौजूदगी में बिल्कुल नहीं मिलेगा। ऐसे पोते जो दादा के सामने यतीम हो जायें और उन के बाप ने कोई जायदाद उन के लिये छोड़ी हो तो दादा पर अख़लाक़ी फ़र्ज़ लागू होता है कि वह अपने माल और जायदाद से कुछ उन को देने की वसियत कर जायें या अपनी ज़िन्दगी में उन को दे जायें, अगर ऐसा न करेगा तो उन चेतावनियों का हक़दार होगा जो यतीम पर क़हर करने और उन की इज़्ज़त न करने पर आई हैं।

ऊपर नम्बर (1) में कहा गया है कि पोते बाप के बराबर होंगे यह उस सूरत में जब बाप और चचा न हों तो वे दादा से वही तरका पायेंगे जो बाप और चचा पाते, सिर्फ़ दो बातों में बेटे और पोते में फ़र्क़ है।

(क) एक यह कि मय्यत के बेटों की मौजूदगी में बेटियाँ ज़विलफ़ुरूज़ नहीं रहतीं बल्कि असबा बिलग़ैर हो कर बेटों का आधा हिस्सा पाती हैं, लेकिन पोतों के साथ वे ज़विलफ़ुरूज़ ही रहती हैं यानी मय्यत की बेटी को आधा तरका मिलेगा बाक़ी दूसरे ज़विलफ़ुरूज़ और पोतों के लिये होगा, अगर मय्यत की कई बेटियाँ होंगी तो दो तिहाई 2/3 उन सब को निकालने के बाद बाक़ी में दूसरे ज़विलफ़ुरूज़ और पोतों का हिस्सा होगा।

(ख) दूसरे यह कि बेटे की मौजूदगी में पोतियाँ महरूम रहती हैं लेकिन पोते के साथ पोतियाँ असबा हो जाती है और जितना पोते को मिलता है उस का आधा पोती को मिलता है।

परपोते का हिस्साः- जिस तरह बेटे की मौजूदगी में पोता और पोतियाँ महजूब रहती हैं उसी तरह पोते की मौजूदगी में परपोतियाँ और परपोते महजूब रहते हैं और जिस तरह बेटे के ज़िन्दा न होने की सूरत में पोता वारिस होता है उसी तरह पोते के न होने की सूरत में परपोते वारिस होते हैं और विरासत के मुआमले में जो मसाइल पोते के बारे में बयान किये गये हैं वे परपोतों के लिये भी हैं।

दूसरे दर्जे के असबात को तरका मिलने की सूरतें:- दूसरे दर्जे के असबात की हैसियत दोहरी हो जाती है जब पहले दर्जे के असबात में से कोई न हो, उन की एक हैसियत तो ज़विलफ़ुरूज़ की है और दूसरी हैसियत असबा की क्योंकि ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी बचेगा वह दूसरे दर्जे के असबात में बट जायेगा।

बाप का हिस्साः- बाप अपने बेटे के तरके से ज़विलफ़ुरूज़ होने की हैसियत से जो हिस्सा पायेगा उस को पहले बयान किया जा चुका है। बाप उस वक़्त असबा भी हो जाता है जब पहले दर्जे के असबा मौजूद न हों और न मय्यत की कोई बेटी या पोती मौजूद हो तो ज़विलफ़ुरूज़ वारिसों के हिस्से निकालने के बाद जो बाक़ी बचेगा वह बाप को असबा होने की हैसियत से (और ज़्यादा) मिल जायेगा।

2. अगर मय्यत की कोई बेटी या पोती हो तो पहले बाप को ज़विलफ़ुरूज़ की हैसियत से तरके का छठा हिस्सा (1/6) मिलेगा फिर तमाम ज़विलफ़ुरूज़ वारिसों को देने के बाद जो कुछ बच जायेगा वह भी असबा होने की हैसियत से बाप को मिलेगा।

3. पहले दर्जे के असबात की मौजूदगी में बाप असबा नहीं होगा, ज़विलफ़ुरूज़ होने की हैसियत से तरके का $^1/_6$ हिस्सा ही पायेगा।

दादा का हिस्सा:- ज़विलफ़ुरूज़ के बयान में ज़िक्र किया जा चुका है कि बाप की मौजूदगी में दादा महरूम है और उस के मौजूद न होने की सूरत में उसके बराबर है बिल्कुल यही हैसियत असबा होने की है यानी बाप की मौजूदगी में दादा को असबा की हैसियत से कुछ न मिलेगा लेकिन अगर मय्यत का बाप ज़िन्दा नहीं है और दादा मौजूद है तो वह उसी तरह हिस्सा पायेगा जिस तरह बाप के हिस्से का ज़िक्र विस्तार के साथ ऊपर किया गया है, यही हाल परदादा का भी है।

बाप और दादा की विरासत के सिलसिले में दो फ़र्क़ हैं। एक यह कि अगर मय्यत की बीवी और दादा दोनों मौजूद होंगे तो माँ का हिस्सा कम न होगा यानी कुल तरके में 1/3 मिलेगा जबकि बाप और पत्नी की मौजूदगी में माँ का हिस्सा कम हो जाता है। दूसरा फ़र्क़ यह है कि दादा की मौजूदगी में दादी महरूम नहीं होगी जबकि बाप की मौजूदगी में दादी महरूम रहती है।

तीसरे दर्जे के असबात को तरका मिलने की सूरतें:- अगर पहले और दूसरे दर्जे के असबात मौजूद न हों तो फिर ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी रहे वह तीसरे दर्जे के असबात आपस में बाँट लेंगे, इस दर्जे में भाई, भतीजे और भतीजे के बेटे पोते शामिल हैं। तीसरे दर्जे के असबात में सब से पहले भाई है और उस के बाद भतीजे वग़ैरा हैं।

हक़ीक़ी भाई:- जैसा कि शुरू में कहा गया है पहले और दूसरे दर्जे के असबात अगर न होंगे तो ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी रहेगा वह कुल हक़ीक़ी भाई को मिल जायेगा।

2. अगर कई हक़ीक़ी भाई हों तो सब में बराबर बाँटा जायेगा।

3. अगर भाई के साथ हक़ीक़ी बहनें मौजूद हैं तो वे भाईयों के

साथ असबा हो जायेंगी और भाई के हिस्से का आधा पायेंगी।

4. हक़ीक़ी भाई की मौजूदगी में अल्लाती भाई और अल्लाती बहनें महरूम रहेंगी।

अल्लाती भाईः- पहले और दूसरे दर्जे के असबात भी न हों और हक़ीक़ी भाई भी न हो तो अल्लाती भाई मय्यत का वारिस होगा, यह भी अगर कई होंगे (तो ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो बाक़ी रहेगा) उसे बराबर बाँट लेंगे, अगर अल्लाती भाई के साथ अल्लाती बहनें भी हों तो सब भाई के साथ असबा हो जायेंगी और भाई का आधा हिस्सा लेंगी।

अल्लाती भाई बहन उस वक़्त महरूम रहेंगे जब मय्यत की हक़ीक़ी लड़की मौजूद हो।

हक़ीक़ी भतीजाः-1. जब मय्यत का हक़ीक़ी या अल्लाती कोई भाई मौजूद न हो तो फिर भतीजा वारिस होगा।

2. अगर मय्यत की हक़ीक़ी या अल्लाती बहनों में से कोई है तो वह भाई के साथ तो असबा हो जाती है मगर भतीजों के साथ असबा नहीं होती बल्कि असली हालत ही में रहती हैं यानी ज़विलफ़ुरूज़।

3. भतीजियाँ चाहे सगे भाई की बेटियाँ या सौतेले भाई की वह न असबात में हैं न ज़विलफ़ुरूज़ में बल्कि उन की गिनती ज़विल अरहाम की तीसरी क़िस्म में है।

4. हक़ीक़ी भतीजे के होते हुए मय्यत के अल्लाती भाई के लड़के महरूम रहेंगे।

अल्लाती भतीजाः- अगर हक़ीक़ी भाई का लड़का न हो और अल्लाती भाई का लड़का मौजूद हो तो वह हक़ीक़ी भतीजे की जगह मय्यत का वारिस होगा और उस का हाल भी लगभग वही है जो हक़ीक़ी भतीजे का बयान किया जा चुका है।

हक़ीक़ी और अल्लाती भाईयों के पोते:- अगर मय्यत के भाई हक़ीक़ी या अल्लाती ज़िन्दा न हों और न उन के लड़कों में कोई ज़िन्दा हो तो फिर हक़ीक़ी भाई के पोते और वे भी न हों तो अल्लाती भाई के पोतों पर मय्यत की विरासत बाँटी जायेगी।

मय्यत की हक़ीक़ी या अल्लाती बहनें अगर हैं तो वे भाई के पोतों के साथ भी असबा न होंगी और वे ज़विलफ़ुरूज़ रहेंगी।

चौथे दर्जे के असबात का तरके में हिस्सा:- पहले दूसरे और तीसरे दर्जे के असबात को देखा जायेगा जिन में सब से पहले चचा है। ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बचेगा वह चचा को मिलेगा फिर चचा के बेटे फिर चचा के पोते फिर मय्यत के बाप के चचा फिर उन के लड़के फिर उन के पोते।

चचा का हिस्सा:- मय्यत के बाप का भाई चाहे वह छोटा भाई हो या बड़ा भाई हो, अम्म कहलाता है अगर तीनों दर्जे के असबात में से कोई न हो तो चौथे दर्जे के असबात में सब से पहले चचा है यानी अगर ज़विलफ़ुरूज़ में इत्तिफ़ाक़ से कोई न हो तो मय्यत के तमाम तरके का हक़दार चचा होगा, अगर कई चचा होंगे तो जो तरका मिलेगा सब को आपस में बराबर बराबर बाँटना होगा।

2. मय्यत की फूफी यानी बाप की बहन चचा की मौजूदगी में हिस्सा नहीं पायेगी।

3. चचा की बीवी यानी मय्यत की चची को इस हैसियत से कोई हिस्सा मीरास से नहीं मिलेगा कि वह चची है। हाँ अगर इस के अलावा कोई दूसरा नसबी रिश्ता हो तो मीरास में से हिस्सा पा सकती है।

4. असबा होने की हैसियत से चचा की बेटियों को भी कोई हिस्सा नहीं मिलेगा उन की गिनती ज़विलअरहाम में है।

अल्लाती चचा:- अगर मय्यत के बाप का सगा भाई मौजूद न हो

बल्कि अल्लाती भाई मौजूद हो तो हक़ीक़ी चचा के मौजूद न होने की सूरत में अल्लाती चचा को वही हिस्सा मिलेगा और हक़ीक़ी चचा के लड़के हिस्सा नहीं पायेंगे। जिस तरह भाई की मौजूदगी में भाई के लड़के हिस्सा नहीं पाते।

हक़ीक़ी और अल्लाती चचा के लड़के:- 1. चचा (हक़ीक़ी या अल्लाती) की मौजूदगी में उन के लड़के मय्यत के तरके से हिस्सा नहीं पायेंगे हाँ अगर मय्यत के चचा कोई भी मौजूद न हों तो पहले हक़ीक़ी चचा के लड़कों को, अगर वे न हों तो फिर अल्लाती चचा के लड़कों को तरका मिलेगा, अगर ये भी न हों तो फिर हक़ीक़ी चचा के पोतों को और वे भी न हों तो अल्लाती चचा के पोतों को हिस्सा मिलेगा।

बाप के हक़ीक़ी और अल्लाती चचा:- अगर मय्यत का ऊपर ज़िक्र किये गये असबात में से कोई वारिस मौजूद न हो तो फिर बाप के चचा यानी मय्यत के दादा के हक़ीक़ी भाई को तरका मिलेगा अगर वह न हो तो फिर मय्यत के दादा के अल्लाती भाई को, अगर वह भी न हो तो उन के हक़ीक़ी लड़कों को और फिर अगर वे भी न हों तो उन के पोतों को मिलेगा।

ज़विलअरहाम और मय्यत के तरके में उन के हिस्से:- विरासत का बयान शुरू करते वक़्त यह बताया जा चुका है कि तरके को बाँटने में सब से पहले ज़विलफ़ुरूज़ को हिस्सा दिया जायेगा उस के बाद असबा को लेकिन अगर असबात में कोई न हो तो फिर ज़विलअरहाम को दिया जायेगा। ये तीसरे दर्जे के वारिसीन कहलाते हैं।

ज़विलअरहाम मय्यत के वे रिश्तेदार हैं जो औरत के वास्ते से नसबी संबंध रखते हैं या ख़ुद औरत हों जैसे ख़ाला, फूफी और उन

की लड़कियाँ वग़ैरा नवासियाँ और नवासे, सिर्फ़ माँ और नानी ज़विलअरहाम में इस लिये शामिल नहीं हैं कि माँ और माँ की माँ का हिस्सा ज़विलफ़ुरूज़ में मुक़र्रर हो चुका है हालाँकि ये दोनों भी औरतें हैं। ऊपर यह बयान हो चुका है कि ज़विलफ़ुरूज़ और असबा की मौजूदगी में ज़विलअरहाम को कुछ नहीं मिलेगा, और मुश्किल ही से कोई मरने वाला ऐसा निकलता हो जिस का कोई न कोई असबा (क़रीब या दूर का) निकल न आये। इस लिये तरके को बाँटने की नौबत ज़विलअरहाम तक पहुंचने की बहुत कम होती है, शायद यही वजह है कि इमाम मालिक, इमाम शाफ़ई और इमाम अहमद बिन हंबल रहमतुल्लाह अलैहिम वारिसों की दो ही क़िस्में मानते हैं यानी ज़विलफ़ुरूज़ और असबा। अगर इन दोनों में से कोई वारिस न पाया जाये तो फिर सारा तरका इस्लामी हुकूमत के बैतुलमाल में दे देने का हुक्म देते हैं, उन के नज़दीक ज़विलअरहाम की गिनती वारिसों में नहीं है, सिर्फ़ इमाम अबू हनीफ़ा (रह०) मय्यत का पूरा तरका बैतुलमाल में दाख़िल करने से पहले ज़विलअरहाम को भी देखने का हुक्म देते हैं और आमतौर पर इस्लामी मुल्कों में उन के मसलक ही को अपनाया गया है फिर अगर ज़विलअरहाम भी न हों तो छोड़ा हुआ माल बैतुलमाल में जायेगा और अगर इस्लामी हुकूमत न हो तो वहाँ ग़रीबों में बाँट दिया जायेगा।

ज़विलअरहाम की हैसियतः- ज़विलफ़ुरूज़ और असबात के होते हुए ज़विलअरहाम को मय्यत की मीरास में से कुछ पाने का हक़ नहीं है, ज़विलफ़ुरूज़ के हुकूक़ मुक़र्रर हैं, इन मुक़र्ररह हुकूक़ को दे चुकने के बाद जो बाक़ी बचता है वह दूसरे वारिसों को जो असबात में हैं बट जाता है और अगर कोई दूसरा वारिस न हो तो ज़विलफ़ुरूज़ मुक़र्ररह हिस्सा लेने के बाद बाक़ी तरका भी वही पाते हैं। इस तरह ज़विलफ़ुरूज़ की मौजूदगी में ज़विलअरहाम के हिस्सा

पाने का सवाल ही नहीं पैदा होता मगर 13 ज़विलफ़ुरूज़ में से सिर्फ़ दो वारिस ऐसे हैं कि अगर अकेले वही हों और कोई दूसरा असबात या ज़विलफ़ुरूज़ में से न हो तो ज़विलअरहाम को उन के साथ हिस्सा मिल सकता है। वे दो ज़विलफ़ुरूज़ पति और पत्नी हैं यानी अगर मर्द मय्यत ने अपने ज़विलफ़ुरूज़ में से सिर्फ़ पत्नी को या औरत मय्यत ने सिर्फ़ पति को छोड़ा तो उन को शरई हिस्सा देने के बाद बाक़ी ज़विलअरहाम को दिया जायेगा यह इस लिये कि पत्नी और पति को मुक़र्ररह फ़राइज़ से ज़्यादा नहीं मिलता है जबकि दूसरे ज़विलफ़ुरूज़ बाक़ी तरका भी पाते हैं अगर कोई दूसरा वारिस न हो।

ज़विलअरहाम की दर्जाबन्दी:- ज़विलअरहाम को चार क़िस्मों में बाँटा गया है, जब तक पहली क़िस्म के लोग मौजूद होंगे उस से नीचे दर्जे की क़िस्मों वालों को कुछ नहीं मिलेगा, हर एक क़िस्म के ज़विलअरहाम और उन्हें तरका मिलने का तनासुब (अनुपात) बयान किया जाता है ज़विलफ़ुरूज़ से सिर्फ़ ग्यारह वे लोग मुराद हैं जो ज़विलअरहाम का हिस्सा रोक सकते हैं (यानी पति और पत्नी के अलावा)

पहली क़िस्म के ज़विलअरहाम:- सब से पहले नवासे और नवासियाँ हैं जिन्हें अपने नाना का तरका उसी वक़्त मिलेगा जब उन के रिश्तेदारों (ज़विलफ़ुरूज़ व असबात) में से कोई ज़िन्दा न हो। अगर एक नवासा या एक ही नवासी होगी तो कुल माल उस को मिल जायेगा और अगर दोनों होंगे या कई होंगे तो नवासे को दो और नवासी को एक हिस्से के हिसाब से बाँट दिया जायेगा।

नवासे और नवासी न हों तो पोती की औलाद वारिस होगी और अगर वे भी न हों तो फिर नवासे और नवासी की औलाद को हिस्सा मिलेगा फिर अगर नवासे और नवासी की औलाद न हो तो पोते के नवासे नवासी, अगर वे भी न हों तो पोती के पोते पोतियाँ वारिस होंगे।

दूसरी क़िस्म के ज़विलअरहामः- ज़विलफ़ुरूज़ में दादा, दादी और नानी के मुक़र्ररह हिस्सों का ज़िक्र किया जा चुका है। वहाँ यह भी बताया गया था कि क़रीबी दादा, दादी और नानी की मौजूदगी में दूर के दादा, दादी और नानी को नहीं मिलेगा क्योंकि वे ज़विलअरहाम में गिने जाते हैं और नाना तो न ज़विलफ़ुरूज़ में है और न असबात में इस लिये वह स्थाई रूप से ज़विलअरहाम में ही गिना जाता है। नानां को मय्यत के तरके से कुछ नहीं मिलेगा अगर ज़विलफ़ुरूज़, असबात और ज़विलअरहाम की पहली क़िस्म में से कोई मौजूद होगा, जब उनमें से कोई न हो और नाना ज़िन्दा हो तो वह मय्यत के तरके का हक़दार होगा। दूसरी क़िस्म के ज़विलअरहाम के लोग सब महरूम होंगे, अगर मय्यत के नाना न हों तो फिर मय्यत के बाप के नाना अगर वह भी न हों तो माँ के दादा, उन के मौजूद न होने की सूरत में माँ के नाना और माँ की दादी तरके की हक़दार होंगी, फिर अगर उन में से भी कोई न रहा हो तो मय्यत के दादा के सिलसिले के ज़विलअरहाम को हिस्सा मिलेगा।

तीसरी क़िस्म के ज़विलअरहामः- इस क़िस्म में मय्यत की बहन की तमाम औलाद और भाई की ग़ैर असबा औलाद शामिल है। बहन की औलाद से मुराद मय्यत के हर तरह के भानजे और भानजियाँ हैं और भाई की वह औलाद जो असबा नहीं है उन से मुराद मय्यत की भतीजियाँ वग़ैरा हैं। इन की संख्या दस होती है। हक़ीक़ी बहन के लड़के लड़कियाँ, हक़ीक़ी भाई की लड़की, अल्लाती भाई की लड़की, अख़याफ़ी भाई के लड़के और लड़की इन में किसी को पहले और किसी को बाद में नहीं रखा जायेगा। अगर एक साथ सब मौजूद हैं तब भी सब को हिस्सा मिलेगा बस फ़र्क़ यह होगा कि मर्द को जितना मिलेगा औरत को उस का आधा मिलेगा और अगर सिर्फ़ एक ही हो और ऊपर के वुरसा में से कोई न हो तो पूरा तरका उस एक ही को मिल जायेगा। भानजे भानजियों और भतीजियों के न होने

की सूरत में उन की औलाद हिस्सा पायेगी।

अगर कोई भतीजा ज़िन्दा हो तो उस के सामने तमाम भानजियाँ और भतीजियाँ महरूम रहेंगी क्योंकि भतीजा असबा है और असबा की मौजूदगी में ज़विलअरहाम को कुछ नहीं मिलता।

भानजे भानजियों और भतीजियों में तरका बाँटने की एक सूरत ऊपर बयान हुई। दूसरी सूरत यह है कि उन्हें तरका उन के माँ बाप (यानी मय्यत के भाई और बहन) के लिहाज़ से मिले यानी जिस तरह भाई को बहन के मुक़ाबिले में दोगुना मिलता उसी तरह भतीजियों को वही दोगुना मिलेगा और बहन की औलाद को उस का आधा। हाँ भानजियों के साथ भानजे भी हों तो उन्हें भानजियों का दोहरा मिलेगा।

चौथी क़िस्म के ज़विलअरहामः- इस क़िस्म में मय्यत की फूफियाँ, ख़ालायें, मामू और अख़याफ़ी चचा हैं और जब ये न हों तो उन की औलाद और अगर वे भी न हों तो हक़ीक़ी और अल्लाती चचा की औलाद, फिर अगर ये भी न हों तो माँ या बाप की फूफियाँ, ख़ालायें और मामू वग़ैरा हक़दार होंगे।

ज़विलफ़ुरूज़ के हिस्सों का मुख़्तसर नक़शा

तमाम वारिसों के हिस्सों को विस्तार के साथ ऊपर बयान किया जा चुका है और यह भी कि ज़विलफ़ुरूज़ के हिस्से शरीअत ने मुक़र्रर कर दिये हैं मगर असबा और ज़विलअरहाम का कोई मुक़र्रर हिस्सा नहीं है बल्कि ज़विलफ़ुरूज़ को देने के बाद जो कुछ बाक़ी बचेगा वह असबा को दिया जायेगा लेकिन असबात में से कोई न हो तो फिर बाक़ी ज़विलअरहाम को दिया जाता है।

ज़विलफ़ुरूज़ के मुक़र्ररह हिस्सों का विवरण नीचे दिया जा रहा है-

1. आधा हिस्सा, पाँच वारिस मख़सूस हालतों में पायेंगे।

क. मय्यत का पति जब मय्यत की औलाद न हो।

ख. मय्यत की बेटी जब वही अकेली हो उस का भाई मौजूद न हो।

ग. मय्यत की पोती जब मय्यत का बेटा बेटी और पोती मौजूद न हो।

घ. मय्यत की बहन जब अकेली हो और मय्यत के बेटा बेटी या बाप मौजूद न हों।

न. मय्यत की अल्लाती बहन जब हक़ीक़ी बहन न हो और बेटा बेटी और बाप भी न हो।

2. दो तिहाई (2/3) हिस्सा, चार वारिसों को मख़सूस हालतों में मिलता है-

क. मय्यत की दो या दो से ज़्यादा लड़कियों को जब उस के कोई बेटा न हो।

ख. मय्यत की दो या दो से ज़्यादा पोतियों को जब बेटा, बेटी और पोता न हों

ग. मय्यत की दो या दो से ज़्यादा बहनों को जब बेटा, बेटी और पोता न हों।

घ. मय्यत की दो या ज़्यादा अल्लाती बहनों को जब हक़ीक़ी बहनें, बेटा बेटी और पोता पोती न हों।

3. एक तिहाई (1/3) हिस्सा, दो वारिसों को मख़सूस हालतों में मिलता है-

क. मय्यत की माँ को जब मय्यत की औलाद न हो और भाई बहन भी न हों।

ख. मय्यत के अख़याफ़ी भाई बहन को जब वे एक से ज़्यादा हों।

4. चौथाई (1/4) हिस्सा, दो वारिसों को मख़सूस हालतों में मिलता है-

क. मय्यत की पत्नी को जब उस के कोई औलाद न हो।

ख. मय्यत के पति को जब उस के औलाद हो।

5. छटा (1/6) हिस्सा, चार वारिसों को मख़सूस हालतों में मिलता है-

क. मय्यत के बाप को जब मय्यत की औलाद हो।

ख. मय्यत की माँ को जब मय्यत की औलाद हो या भाई बहन हों।

ग. अख़याफ़ी भाई को जब अकेला हो।

घ. अख़याफ़ी बहन को जब अकेली हो।

6. आठवाँ (1/8) हिस्सा, सिर्फ़ एक वारिस यानी पत्नी को मिलता है जब बेटा, बेटी या पोती भी हो, यानी ज़विलफ़ुरूज़ के हिस्सों की मात्रा छः तरह से अल्लाह तआला ने मुक़र्रर फ़रमाई हैं जिन का ज़िक्र ऊपर किया गया। तरके का पाँचवाँ, सातवाँ, नवाँ और दसवाँ हिस्सा कोई ज़विलफ़ुरूज़ नहीं पा सकता। हाँ यह होता है कि उन में से कुछ वारिस मौजूद नहीं होते तो उन का हिस्सा दूसरे ज़विलफ़ुरूज़ को असबा होने की हैसियत से मिल जाता है, इसी तरीक़े को शरीअत में रद (लौटाना) कहते हैं जिस का बयान आगे आ रहा है, इस तरह कुछ ज़विलफ़ुरूज़ असबा होने की वजह से कुछ ज़्यादा पा लेते हैं, मगर उस का हिस्सों के बाँटने पर कोई असर नहीं पड़ता यानी यह नहीं होता कि छटा हिस्सा पाने वाले को पाँचवाँ और चौथाई हिस्सा पाने वाले को तीसरा हिस्सा मिल जाये।

मीरास के हिस्से लगाने का तरीक़ा:- शरीअत ने हिस्सा बाँटने का ढंग इस तरह से मुक़र्रर किया है कि कोई हिस्सा टूटने न पाये यानी आधा पौन और पाव भी पूरे पूरे हिस्सों की शक्ल में हो। इस के लिये **औल** का तरीक़ा अपनाया है।

औल का अर्थः- लुग़त/डिक्श्नरी में औल का अर्थ सीधी चीज़ को एक तरफ़ झुकाने के भी हैं और बढ़ोतरी करने के भी, शरीअत की परिभाषा में औल उस बढ़ोतरी को कहते हैं जो तरके के बाँटने में अगर कमी महसूस हो तो उसे दूर करने के लिये किया जाये, दुर्रे मुख़तार में औल का परिचय इस तरह से कराया गया है-

هُوَ زِيَادَةُ السِّهَامِ اِذَا كَثُرَتِ الْفُرُوْضُ عَلٰى مَخْرَجِ الْفَرِيْضَةِ لِيَدْخُلَ النَّقْصُ عَلٰى كُلٍّ مِنْهُمْ بِقَدْرِ فَرِيْضَةٍ.

'हुवा ज़्यादतुस्सिहामि इज़ा कसुरतिल फ़ुरूज़ु अला मख़ारजिल फ़रीज़ति लियदख़ुलन्नक़्ज़ु अला कुल्लिम मिनहुम बिक़दरि फ़रीज़तिन।'

अनुवादः- अगर मख़रजे फ़र्ज़ (यानी वह संख्या जिस से वारिसों के हिस्से निकल रहे हैं) से हिस्सों की संख्या ज़्यादा हो जाये तो उस संख्या को बढ़ा लिया जाता है। उस का नतीजा यह होता है कि तमाम वारिसों के हिस्सों में उनके हुक़ूक़ के हिसाब से थोड़ी सी कमी हो जाती है इस को औल कहते हैं।

औल की ज़रूरतः- औल की उस वक़्त ज़रूरत पड़ती है जब हिस्से बाँटने में पूरे न आते हों यानी किसी का हिस्सा कम होता नज़र आता हो और हिस्सों को तोड़ना या उन की कस्र करना पड़ती हो तो मख़रजे फ़र्ज़ में बढ़ोतरी कर ली जाये ताकि हिस्सों में कस्र न करना पड़े और हिस्से में इस तरह जो कमी आये वह सब हिस्सों में बराबर से आ जाये। जैसे एक औरत ने मरने के बाद पति और दो हक़ीक़ी बहनों को वारिस छोड़ा। ज़विलफ़ुरूज़ में पति का हिस्सा आधा यानी 1/2 और बहनों का हिस्सा दो तिहाई यानी 2/3 है। तरके को बाँटने के लिये सब से छोटी संख्या 6 है यानी 2 और 3 से विभाजित (तक़सीम होने वाले) अंक अब अगर तरके के 6 हिस्से कर के तीन

हिस्से पति को दे दिये गये तो बाक़ी रहे तीन जबकि 6 का 2/3 चार होता है। ऐसे मौक़े पर औल करने की ज़रूरत होती है, बजाये 6 के 7 कर के 3 हिस्से पति को और चार हिस्से दोनों बहनों को दिये जायेंगे। एक की बढ़ोतरी करने से जो थोड़ी कमी हिस्सों में आई उस का असर सब हिस्सों पर बराबर पड़ गया और कस्र नहीं पड़ी। इस का तरीक़ा यह है कि वह छोटी संख्या जिस से शुरू में भाग किया था लिखा जाये फिर औल का निशान (ع) बना कर बढ़ी हुई संख्या लिख दी जाये, इस से यह मालूम होता रहे कि बढ़ोतरी औल की वजह से है।

औल का तरीक़ाः- ऊपर बयान की गई सूरत में औल का तरीक़ा इस मिसाल से समझ में आ जायेगा।

हिस्सा बनाने के लिए छोटी संख्या		औल के बाद
6	ع	7
पति को 3 हिस्से		हक़ीक़ी बहनों को 4 हिस्से

तरीक़ा यह है कि वह छोटी संख्या तलाश की जाये जिस से पहले वारिस (पति) को ठीक ठीक हिस्सा मिल जाये और फिर बाक़ी वारिसों को भी हिस्सा मिल सके तो यहाँ वह छोटी संख्या 6 है लेकिन जब 6 का आधा यानी 3 पति को दे दिया गया तो बाक़ी 3 बचे जो कुल (6) के 2/3 से कम रहे इस लिये औल करने की ज़रूरत पड़ी इस लिये 6 के बजाये 7 कर के 4 दूसरे वारिसों को दे दिये गये, मतलब यह हुआ कि पहले जो 6 हिस्से थे उन्हीं में थोड़ी कमी कर के उन को 7 बना लिया गया और तमाम वारिसों के हिस्से पूरे दे दिये गये। इस कमी का असर किसी एक वारिस पर नहीं पड़ा बल्कि सब के हिस्सों में बराबर कुछ कमी आ गई।

यहाँ यह सवाल पैदा हो सकता है कि शुरू ही से क्यों न कुल तरके के 7 हिस्से बना लिये गये? इस का जवाब यह है कि ऐसा इस लिये नहीं करते कि इस सूरत में हिस्सों की संख्या को तोड़ना पड़ेगा और फिर भी वारिसों का हिस्सा पूरा नहीं होगा। जैसे अगर कुल तरका 7 माना जाये तो आधा 3+1/2 पति को दे कर बहनों का हिस्सा (2/3) कैसे पूरा करेंगे। शरीअत का मक़सद तो यह है कि कोई हिस्सा टूटने न पाये यानी आधा-पौना न होने पाये। इसी लिये औल का तरीक़ा राइज किया गया, ऊपर ज़िक्र किये गये तरीक़े के मुताबिक़ हिस्से तो 6 किये गये बाद में उन्हें बढ़ा कर 7 कर दिया गया जिस से हिसाब ठीक हो गया और इस तरह करने से जो हिस्सों में कमी हुई वह बहुत थोड़ी सी हुई।

औल का नतीजा:- औल करने से हिस्सों की संख्या में जो बढ़ोतरी होती है उस बढ़ोतरी की वजह से तमाम वारिसों के हिस्सों में थोड़ी-थोड़ी कमी हो जाती है। ऊपर की मिसाल में पति को तीन दे दिये गये। उस के बाद बहनों को चार हिस्से दिये तो हिसाब में पति के हिस्से से 1/7 की कमी हो गई, इसी तरह बहनों के हिस्से से भी 1/7 की कमी हो गई। दोनों की कमियों की वजह से हिस्सों की बाँट आसानी से पूरी पूरी हो गई और कस्र नहीं करनी पड़ी। अगर ऐसा न किया जाता तो एक तो अपना पूरा हिस्सा पा लेता और दूसरा कम पाता या महरूम रह जाता। कमी तो ज़रूर हुई मगर बहुत कम और किसी को नुक़सान नहीं पहुंचा न किसी को हक़ से ज़्यादा मिला।

औल किस सूरत में नहीं होता:- यह बात याद रखने की है कि मय्यत के लड़के की मौजूदगी में औल की ज़रूरत कभी नहीं पड़ती

क्योंकि लड़के के साथ दूसरे वारिसों के हिस्से या तो कम कर दिये गये हैं या उन्हें महरूम कर दिया गया है।

रद्द का बयान:- रद्द का अर्थ है लौटा देना, शरीअत की परिभाषा में एक या कई ज़विलफुरूज़ विरासत का मुक़र्ररह हिस्सा देने के बाद जो बाक़ी बचे उसे फिर उन्हें लौटा देने को रद्द कहते हैं। यह उस वक़्त होता है जब कोई असबा मौजूद न हो। शरीअत ने ज़विलफुरूज़ के मुक़र्ररह हिस्सों को देने के बाद बाक़ी तरका असबात में बाँट देने का हुक्म दिया है लेकिन अगर इत्तिफ़ाक़ से कोई असबा न हो तो फिर बाक़ी तरका भी उन ज़विलफुरूज़ ही में बाँट दिया जायेगा और यही राय इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम अहमद बिन हम्बल (रह०) की है जब कि इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई (रह०) के नज़दीक असबात के मौजूद न होने की सूरत में मीरास का बाक़ी माल बैतुलमाल में दाख़िल कर देना चाहिये। हाँ अगर बैतुलमाल की व्यवस्था न हो तो फिर ज़विलफुरूज़ में बाँट दिया जायेगा।

जिस तरह औल का तरीक़ा हज़रत उमर (र०) ने सहाबा की राय से राइज फ़रमाया और तमाम सहाबा ने उस को माना जो उम्मत के फ़ुक़हा भी थे और किसी को इस में इख़्तिलाफ़ नहीं हुआ। इसी तरह रद्द का तरीक़ा हज़रत अली (र०) ने सहाबा की राय से लागू किया, मगर हज़रत ज़ैद बिन साबित (र०) ने हज़रत अली (र०) की राय से इख़्तिलाफ़ किया है और यही राय इमाम मालिक और इमाम शाफ़ई (रह०) की भी है। गोया इन बुज़ुर्गों (महापुरूषों) ने बहुत से लोगों के फ़ायदे को एक शख़्स के फ़ायदे पर महानता दी है, इसी लिये बैतुलमाल में मय्यत के बाक़ी माल को जमा कर देने को बेहतर माना है।

हज़रत इमाम अबू हनीफ़ा और इमाम हम्बल (रह०) हज़रत अली (र०) की राय को ठीक मानते हैं क्योंकि विरासत का संबंध रिश्ते और नसबी क़राबत से है जब तक यह संबंध मौजूद है उस को पहले रखना चाहिये। कुरआन में भी यही फ़रमान है-

وَاُولُوا الْاَرْحَامِ بَعْضُهُمْ اَوْلٰى بِبَعْضٍ فِیْ کِتٰبِ اللّٰهِ ؕ اِنَّ اللّٰهَ بِکُلِّ شَیْءٍ عَلِیْمٌ

(سورۂ انفال:۷۵)

"व उलुल अरहामि बअज़ुहुम औला बिबअज़िन फ़ी किताबिल्लाहि इन्नल्लाहा बिकुल्लि शैइन अलीम।" (सूरह अनफ़ाल,75)

अनुवाद:- अल्लाह की किताब में रिश्तेदारों को आपस में एक दूसरे का ज़्यादा हक़दार ठहराया गया है।

यह आयत सूरः अनफ़ाल की है और उन मुहाजिर मुसलमानों के बारे में उतरी जो बाद में इस्लाम लाये और फिर मदीने की तरफ़ हिजरत की। कुरआन में फ़रमाया गया है कि इस देरी की वजह से उन का वह हक़ ख़त्म नहीं हो गया जो रिश्ते की वजह से उन को पहुंचता है तो रिश्तेदार का हक़ ऊँचा है आम मुसलमानों के हक़ से।

वे ज़विलफ़ुरूज़ जिन पर रद्द नहीं हो सकता:-

अगर ज़विलफ़ुरूज़ वारिसों में सिर्फ़ पत्नी या पति हो तो उन दोनों को मीरास का वही हिस्सा मिलेगा जो मुक़र्रर है, उस से ज़्यादा नहीं मिलेगा। अगर असबा मौजूद हैं तो बाक़ी तरका वही पायेंगे वर्ना ज़विलअरहाम पायेंगे। पति और पत्नी के बीच नसबी और ख़ूनी रिश्ता नहीं होता इस लिये वह एक दूसरे के असबा नहीं होते। हाँ अगर कोई रिश्ता पहले से ऐसा हो जिस से तरका मिल सकता हो जैसे दोनों एक दादा के पोते और पोती या परपोती हों जिस से तरका मिल

सकता हो तो उस हैसियत से बक़िया मीरास से हिस्सा मिल सकता है, पति और पत्नी के रिश्ते की वजह से नहीं।

रद्द की सूरतः- रद्द में बाक़ी तरका उसी एतबार से दोबारा बाँटा जायेगा जिस एतबार से उन्होंने मुक़र्ररह हिस्सा पाया था यानी उसी तनासुब का लिहाज़ रखा जायेगा जिस को पहले ज़्यादा मिला था, रद की सूरत में भी ज़्यादा मिलेगा और जिस को पहले कम मिला था रद की सूरत में भी कम मिलेगा।